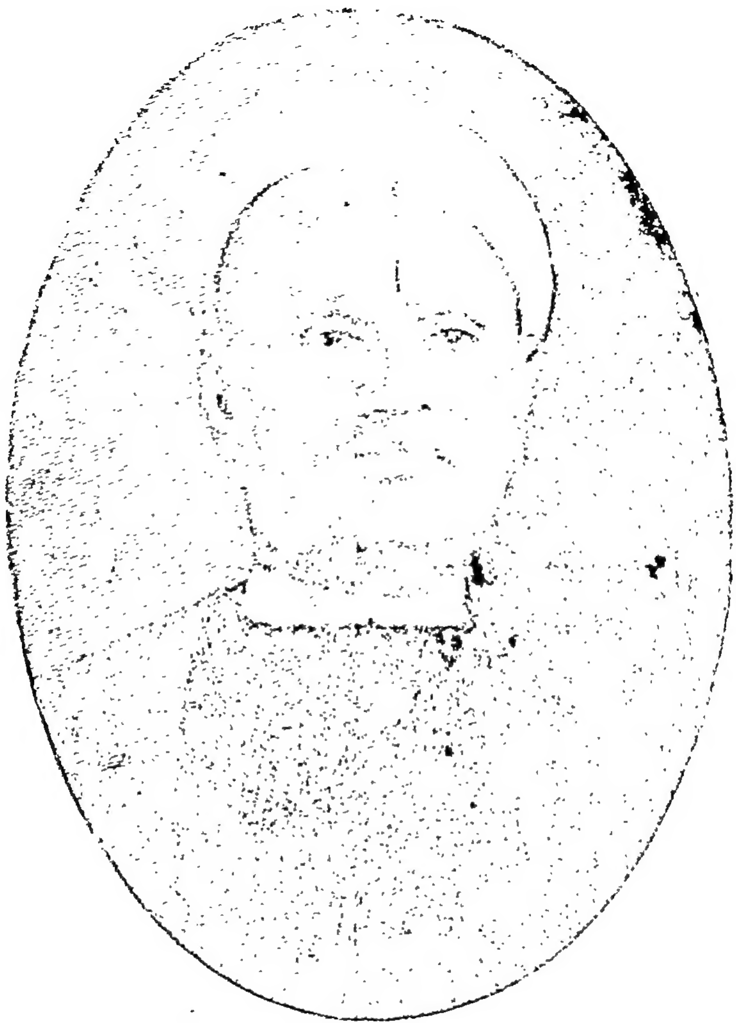
मुद्रक:—
भारत प्रेस, रामगञ्ज, अलवर।

एजेन्ट:—मैसर्स काशीप्रसाद एण्ड ब्रादर्स,
डीडवाना (राजस्थान)।

सम्पादक-मण्डल

रामेश्वर प्रसाद शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य
संपत्कुमार मिश्र, विद्याभूषण
रामदयाल एडवोकेट बी. ए., एल-एल. बी.
कुञ्जविहारी व्यास एम. ए. (फी.)

प्रकाशक:—
प्राणाचार्य श्री पं० गङ्गासहायजी शर्मा अभिनन्दन समिति,
डीडवाना (राजस्थान)



धर्मप्राण, स्वनामधन्य, वैकुण्ठवासी सेठजी श्री मगनीरामजी बांगड़
संस्थापक श्री वेंकटेश आयुर्वेद चिकित्सालय
डीडवाना (राजस्थान)

श्रीमान सेठ साहब महान शाखाओं और प्रशाखाओं वाले उस वृक्ष के समान थे जिसका आश्रय पाकर असंख्य प्राणी अपना जीवन यापन करते हैं। आपका प्रत्येक समय सार्थक होकर भजन, स्मरण और पर-हित के कार्यो में व्यतीत होता। आपके द्वारा अपार धनराशि व्यय की जाकर जन-कल्याण के लिए सम्पन्न हुए वह संख्यक ऐतिहासिक कार्य निश्चय ही शताब्दियों तक आपकी सुखद स्मृति को जागृत करते रहेंगे।



धर्मभूषण, धर्मप्राण सेठजी श्री रामकुमारजी बाँगड़

सांसारिक विभीषिकाओं से संतप्त अगणित मानवों को आश्रय देने वाले, धनिकजनों में अग्रणी, श्री बाँगड़ परिवार के सम्माननीय अधिष्ठाता। आपके द्वारा सम्पन्न हुए जन-कल्याणकारी महान कार्यों के लिए जनता चिरकाल तक ऋणी रहेगी।

सम्पादकीय निवेदन

राज्य-सम्मानित प्राणाचार्य पीयूषपाणि श्री पं० गंगासहायजी शास्त्री का यह अभिनन्दन ग्रंथ राजस्थान की जनता के द्वारा पूज्य पंडितजी के कर कमलों में सादर समर्पित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। पूज्य पंडितजी की इस पुनीत अमर यशोगाथा के साथ हम लोगों के नाम का सम्पर्क होना हमारे लिए सौभाग्य की बात है।

पूज्य वैद्यजी के इस अभिनन्दन के लिए बनाई गई समिति ने हमें जो यह सौभाग्य प्रदान किया है, उसके लिए हम उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं और राजस्थान की उस जनता के प्रति भी, जिसने इस महान् गौरवमय प्रसंग को उपस्थित किया है। हम सब पर और सर्व साधारण जनता पर श्रद्धेय वैद्यजी के इतने उपकार हैं कि हम उनसे कभी उऋण नहीं हो सकते।

गुरु-भक्ति की भावना से श्रद्धा-भक्ति प्रकट करना हमारी भारतीय संस्कृति का अंग रहा है और इस गुरु-भक्ति से प्रादूर्भूत गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से ही हम अपनी आदर्श संस्कृति, वैदिक साहित्य, आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान तथा प्राचीन इतिहास को इतनी भयानक उथल-पुथल और भीषण संघर्षों के बाद भी सुरक्षित रख सके हैं। यह अभिनन्दन-ग्रन्थ उसी परम्परा का एक उदाहरण है और हमारी अभिनन्दन-ग्रंथ की यह भेंट कितनी भी साधारण क्यों न हो, परन्तु वह राजस्थान की जनता की पूज्य पंडितजी के प्रति अपार श्रद्धा की प्रतीक अवश्य है। इसलिए हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि गुरु-कल्प वयोज्ञान वरिष्ठ पूज्य पंडितजी इस स्नेहभरी श्रद्धामयी भेंट को अवश्य ही स्वीकार करेंगे।

इस ग्रंथ के सम्पादन का दायित्व जब हमें सौंपा गया, तब हमने इसे बड़े ही संकोच से स्वीकार किया क्योंकि हमें इस कार्य की गुरुता और अपनी अल्प शक्ति का पूरा आभास था। हम यह अनुभव कर रहे थे कि हम इस कार्य को जैसा चाहिए, वैसा सम्पादन नहीं कर सकेंगे। "निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्"—इस कृष्णादेश से हमें इतना ही संतोष है कि हम जनता-जनार्दन के इस महान कार्य के सम्पादन करने में निमित्त बन गए और उसके आदेश का हमने यथा मति पालन कर दिया। पूज्य वैद्यजी

के महान् व्यक्तित्व, अगाध पांडित्य, अपूर्व योग्यता, असीम यश और एकान्त साधना का ही परिणाम है कि इस अभिनन्दन-ग्रंथ को ऐसा रूप प्राप्त हो सका है। हमें यह कहने में भी कुछ संकोच नहीं है कि यह ग्रंथ पूज्य पंडितजी की सेवाओं के अनुरूप नहीं बन सका है। हम भी अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप इसको नहीं बना सके हैं। समय की कमी, कार्य की गुरुता और साधनों की परिमितता के कारण भी इसको जैसा चाहिए वैसा रूप नहीं दिया जा सका है। मुद्रण की शीघ्रता के कारण उसमें त्रुटियाँ एवं अशुद्धियाँ रह गई हैं। इस ग्रंथ की कमियों के लिए पूज्य पंडितजी तथा जनता से हम क्षमा प्रार्थी हैं।

बाँगड़ परिवार सदा से ही गुणीजनों का सम्मान करने में आदर्श रहा है। दानवीर वैकुंठवासी सेठजी श्री मगनीरामजी बाँगड इसके अनुपम निदर्शन थे। उनका अनुसरण करते हुए उनके अनुज धर्म-भूषण सेठजी श्रीरामकुमारजी बाँगड़ एवं पुत्र श्री गोविन्दलालजी, श्री गोकुलचन्दजी प्रभृति तथा अपनी लोक-सेवाओं के कारण अत्यंत ही लोक-प्रिय श्रीमान् रघुनाथदासजी बाँगड (स्वागताध्यक्ष) तथा उनके अनुज श्री रतनलालजी बाँगड ने इस कार्य और समारोह में आरम्भ से ही जो अभिरुचि प्रकट की है वह उनके साहित्य-प्रेम और गुण-ग्राहकता की सूचक है। बाँगड़ परिवार की प्रेरणा, उत्साह और लगन का ही यह परिणाम है कि यह अभिनन्दन-ग्रंथ इस रूप में सम्पन्न हो सका है। इसके लिए बाँगड़ परिवार के सारे ही सदस्यों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है उन्होंने तन, मन और धन से पूर्ण सहयोग देकर अपनी लोक-सेवा की परम्परा के गौरवशाली इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ दिया है।

इस ग्रंथ को सर्वांगीण बनाने में हमें आयुर्वेद के विशेषज्ञ विद्वानों का पूर्ण सहयोग मिला है जिन्होंने अपने जीवन के अमूल्य अनुभव हमारी प्रार्थना पर भेजकर हमें और जन-जीवन को अनुप्राणित किया है। पूज्य वैद्यजी के प्रति गणमान्य महात्माओं, नेताओं, मंत्रियों, लोक सभा एवं विधान सभा के सदस्यों, विद्वानों तथा पदाधिकारियों ने अपने साधुवाद, आशीर्वाद और संदेश प्रेषित किए हैं। हम उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। इन सबने मिलकर ही इस ग्रंथ को इस रूप में उपस्थित करने का सौभाग्य प्रदान किया है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि जहाँ इसमें भारत के

प्रख्यात आयुर्वेद विद्वानों के अनुभव आपको पढ़ने को मिलेंगे वहाँ पूज्य वैद्यजी की लेखनी द्वारा निसृत उनके अमूल्य चिकित्सा अनुभव का अधिक भाग पढ़ने और जानने का विशेष लाभ भी होगा।

समय का अभाव और कार्य की शीघ्रता के कारण हम सारे ही प्राप्त लेखों को इस ग्रंथ में स्थान नहीं दे सके हैं। जिन विद्वानों के लेख इस ग्रंथ में प्रकाशित नहीं किए जा सके हैं उनके प्रति भी हम अपना आभार प्रदर्शन करते हुए क्षमा याचना करते हैं।

यहाँ हम उन सब महानुभावों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिनके कृपापूर्ण तथा उदार सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। यह उल्लेख करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि इस कार्य में माननीय श्री गजाधरजी सोमाणी एम० पी० तथा श्री लाला बलदेवस्वरूपजी भटनागर, मंत्री, राजस्थान विकास मंडल ने हमें अपूर्व सहयोग दिया है, जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार, श्री रतनलालजी मित्तल तथा श्री रामजीवनजी गोरवान, मैनेजर भारत प्रेस, अलवर को भी हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिनका सक्रिय सहयोग इस कार्य में मिलता रहा है।

एक बार पूज्य प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहायजी शर्मा शास्त्री के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अन्त में केवल इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये।

रामेश्वरप्रशाद शास्त्री
सम्पत्कुमार मिश्र
रामदयाल वकील
कुञ्जबिहारी व्यास



स्वागताध्यक्ष श्री रघुनाथदासजी बाँगड

आप सम्भ्रान्त बाँगड़ परिवार के प्रतिभाशाली युवक रत्न हैं, जो बाल्यावस्था से ही अपने सद्गुणों एवम् सार्वजनिक कार्यों के द्वारा जनता के हृदय को आकर्षित करते रहे हैं। आपके द्वारा अनेकों जनहित कार्यों का संचालन हो रहा है, जिससे राजा और प्रजा दोनों ही से यथेष्ट मान पाया। श्रीमरुधराधीश ने आपको सोना-पालकी से सम्मानित किया और प्रजा ने अनेकों अभिनन्दनों द्वारा।

प्राणाचार्य श्री पं० गङ्गासहायजी शर्मा, आयुर्वेद शास्त्री,

प्रधान चिकित्सक, श्री वैंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय,

डीडवाना (राजस्थान)

को

राजस्थान की जनता की ओर से

अभिनन्दन ग्रंथ भेंट समारोह

के

अवसर पर

श्री रघुनाथदास बाँगड़

का

स्वागत अभिभाषण

डीडवाना (राजस्थान)

दिनाङ्क २३-८-५३

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय सभापतिजी, मान० श्री पंड्याजी, समागत विशिष्ट व्यक्तियो, राजस्थान के नागरिको तथा महिलाओ,

राजस्थान के ऐतिहासिक नगर डीडवाने में सुदूरागत विद्वानों, प्रशासकों, श्रेष्ठिवर्ग तथा राजस्थान के नागरिकों का हार्दिक स्वागत करने का मुझे जो सुअवसर प्राप्त हुआ है उसके लिए मैं अपने को गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहायजी अभिनन्दन समारोह समिति की विनम्र प्रार्थना पर आप महानुभावों ने ऐसे ऋतु में अपने-अपने आवश्यक कार्य को स्थगित कर यहाँ पधारने का कष्ट उठाया है उसके लिए मैं तथा स्वागत-समिति के अन्य सदस्य आपके अत्यन्त आभारी हैं। ऐसे समारोहों में पूर्ण प्रयत्न करने पर भी व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की त्रुटियाँ रह जाना असम्भव नहीं है। मुझे विश्वास है कि शिव समान संकल्प वाले आप महानुभावों का ध्यान उधर से विरत रहा होगा।

सज्जनो, हमारे इस प्राचीन नगर डीडवाने की अनेक विशेषताएं हैं। यह ऐतिहासिक नगरी डीडूशाह के नाते डीडू माहेश्वरियों का उद्गम स्थान है। नगर के मध्य तथा दक्षिण दिशा में स्थापित श्रीमाताजी के पुनीत स्थान जहाँ इस नगरी का सांस्कृतिक महत्व बता रहे हैं वहाँ उनकी स्थापत्य-कला इस नगर की सुरुचिपूर्ण प्राचीनता का उद्घोषण कर रही है। गत सहस्राब्दी में साहित्य, ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की जन्म-भूमि होने का भी इस नगर को सौभाग्य प्राप्त रहा है। अभी तक भी देवभाषा के क्षेत्र में यह उप-काशी के रूप में दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। यह नगर उत्तरी भारत में श्रीरामानुज सम्प्रदाय के प्रसार तथा प्रचार में सदा ही अपना विशेष स्थान रखता आया है। निरंजनी सम्प्रदाय का यह मुख्य स्थान है तथा दादूपंथ और गोरखपंथ की भी यह नगरी लीला-स्थली रही है। प्रसिद्ध योगी दयाल महाराज ने अनेक वर्षों तक अपनी तपस्या और साधना से इसको पवित्र किया है और उनका महाप्रयाण भी इसी नगर के अनतिदूर स्थान—तीखली डूंगरी—पर हुआ

था। उनके स्मृति-चिह्न आज भी यहाँ सुरक्षित हैं। मध्य-कालीन युग की अस्थिर राजनीति के झंझावत का यहाँ काफी प्रभाव रहा है। इसने अपने वक्ष में अनेक प्रशासनिक इकाईयों को उठते-मिटते देखा है। कई राजवंशों के उत्थान-पतन को चंचलता के सूत्रों में आबद्ध नृत्य करते पाया है। आज भी हमारे इस प्राचीन नगर के यशः शरीर पर ऐतिहासिक समरों के क्षत-विक्षत होने के अमर-चिह्न मूकलिपि में अंकित हैं। स्थान की जनसंख्या, उसके गिरते हुए व्यापार, उसकी आय-स्रोत के सीमित साधन होते हुए भी इसका वर्त्तमान अनाकर्षक नहीं है। श्री जगदम्बा के पवित्र स्थान, सुप्रसिद्ध झालरिया पीठ, नागौरियों का दिव्यदेश, महात्मा दयालजी का स्थान, श्री रामानुज संस्कृत महाविद्यालय, श्री बाँगड़ महाविद्यालय, अन्तिम किन्तु अधिक महत्वपूर्ण श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय आदि यहां के प्रसिद्ध एवं दर्शनीय स्थान हैं। कई प्रकार की वनौषधियाँ जो अन्यत्र दुर्लभ हैं वे इस क्षेत्र में बहुतायत से प्राप्त होती हैं जैसे प्रसारिणी (खींप) अर्क (आकड़ा) बला (खरेंटी) गोक्षुरु (गोखरु), कंटकारि, शतावरी आदि। इस नगर की गौरवमयी पृष्ठभूमि में आप जैसे सुविज्ञ विद्वानों तथा आदरणीय सज्जनों का अकिंचन आतिथ्य करने का सुवर्ण अवसर पा सकना इस नगर के निवासियों के लिए महान् प्रसन्नता का विषय है।

चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेद प्रणाली अत्यन्त ही प्राचीन है। सृष्टि के विकास के साथ-साथ आयुर्वेद-इतिहास के आदि प्रसारक ब्रह्मा ने श्रीनारायणोपदिष्ट "त्रिसूत्रायुर्वेद" का परिष्कृत रूप में संकलन कर आयुर्वेद का सर्व प्रथम उपदेश प्रजापति को दिया। उसी निगूढ तत्त्व का क्रमशः अनुशीलन अश्विनीकुमार ने प्राप्त किया। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ताओं ने सिद्ध किया है कि जिस समय विश्व के अन्य खण्ड-उपखण्ड चिकित्सा-शास्त्र का क ख ग भी नहीं जान पाए थे, उस समय भारत में आए हुए आर्यों की आर्वेयुदिक प्रतिभा अपनी चरम सीमा पर थी। ग्रीस, रोम तथा चीन पर तो इस आयुर्वेदिक-पद्धति का अतिशय प्रभाव पड़ा। डॉक्टर वाइज, डॉक्टर रायले, डॉक्टर एलेनबेल ने समस्त चिकित्सा-प्रणालियों का मूल भारतीय आयुर्वेद को ही माना है। सुविख्यात हकीम जालीनूस ने अपने ग्रन्थ में यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि मिश्र देश के निवासियों ने आयुर्वेद की विद्या हिन्दुस्तान से प्राप्त की तथा कालान्तर में मिश्र का अनुकरण कर यूनान और अरब देशों ने भी इसे अंगीकार किया। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि ग्रीस वाले भी वात, पित्त, कफ तथा रक्त को शरीर-व्याधि का मूल कारण मानते हैं। चीन देश के इत्सिंग यात्री ने भी स्पष्टतः स्वीकार किया है कि चीन

की चिकित्सा-प्रणाली में शरीर-मूलक वात, पित्त कफ तथा शोणित का सिद्धान्त सर्वमान्य है। जैकोलियर महोदय ने तो भारत को चिकित्सा-पद्धति में एशिया तथा यूरोप का अग्रगण्य माना है। लंका-द्वीप, वहाँ के नागरिक तथा वहाँ की सरकार आज भी आयुर्वेदिक विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। लंका-सरकार कोलम्बो कॉलेज ऑफ् इण्डिजेनस मेडीसन को सुसंगठित कर रही है और जाफना में उसने एक सिद्ध-कॉलेज स्थापित किया है। लाल चीन की वर्त्तमान सरकार ने भी शंघाई, कैण्टन, नानकिंग और चुंगकिंग में पुरातन आयुर्वेदिक पद्धति को प्रोत्साहन देने के लिए कई अस्पताल खोले हैं। पेकिंग के बहुत से अस्पतालों में वैद्यक—विद्या के विशेषज्ञों को रखकर उनसे परामर्श लिए गए हैं।

अमेरिका के डॉ० अलेक्जेण्डर मार्की ने खुले शब्दों में यह घोषित किया है कि "मैं जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ ही आयुर्वेद की उत्कृष्टता की बात करता हूँ। एलोपैथिक चिकित्सा से एक रोग आराम होकर नया रोग उत्पन्न हो जाता है। पश्चात्य चिकित्सक एलोपैथी के भयंकर, विषैले, कीटाणु नाशक द्रव्यों के दुष्परिणाम को न जानकर अपने रोगियों का जीवन-खतरे में डाला करते हैं।" जनश्रुति है कि सिकन्दर महान् जब भारत आया था तब यहाँ के वैद्यों विशेषतः सर्पदंश के चिकित्सकों से प्रभावित हो कर उन्हें अपने साथ ले गया था।

चरक- सुश्रुत, वाग्भट्ट, धन्वन्तरि आदि आयुर्वेद के प्रवर्त्तकों द्वारा पल्लवित, पुष्पित यह आयुर्वेदिक-पद्धति नाड़ीज्ञान का भी सम्यक् बोध कराती है जो अन्यत्र अप्राप्य है। नाड़ी की गति से आयुर्वेद में सब रोगों की अलग-अलग जानकारी उपलब्ध हो सकती है फलतः रोग के निदान में असाधरण सहायता मिलती है। सुश्रुत संहिता में संपूर्ण शरीर-विज्ञान वर्णन विशदरूप में दिग्दर्शित है। इस पद्धति की सफलता से प्रभावित होकर अनेक भारतीय राजनैतिक कर्णधारों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है जिसके कुछ उदाहरण उद्धृत कर देना अप्रासंगिक न होगा।

"मैं यह मानता हूँ कि आयुर्वेद में बड़ी शक्ति है। उसके पास ऐसी औषधियाँ हैं जिनका लोग अभी मुकाबला नहीं कर सकते। मेरा विश्वास है शीघ्र ही समय आएगा जब लोग आयुर्वेद को अपनाएँगे।"

—राजेन्द्रप्रसाद (राष्ट्रपति)

"आयुर्वेद को अवैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति कहना घोर मूर्खता है।"

—जवाहरलाल नेहरू (प्रधानमंत्री)

"आयुर्वेदिक चिकित्सा, देशवासियों की प्रकृति और रहन-सहन के अनुकूल है। इसकी औषधि व्यवस्था के लिए हमें किसी का मोहताज नहीं बनना पड़ता और औषधियों के निर्माण, उनकी योजना तथा रोग-परीक्षा के लिए भी उसमें उतनी ही स्वतंत्रता है। हमारा कर्त्तव्य है कि इस आयुर्वेद-विज्ञान को अग्रसर करते हुए जनता की स्वास्थ्य-रक्षा में अपने ज्ञान और अनुभव का उपयोग करें।" —रविशंकर शुक्ल (मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश)

"भारत में आयुर्वेदिक पद्धति अपना उचित स्थान प्राप्त करके ही रहेगी। देश का विशाल बहुमत आयुर्वेद की उपयोगिता को स्वीकार कर चुका है और यदि इस पद्धति को उचित संरक्षण देकर आवश्यक प्रगति एवं वैज्ञानिक गवेषणा का मार्ग प्रशस्त किया जाए तो यह पद्धति देश की साधारण जनता के रोगों का निवारण करने में पूर्णरूप से सफल होगी।"

—नित्यानंद कानूनगो (केन्द्रीय उद्योग मंत्री)

"मैं आयुर्वेद को पूर्णतया वैज्ञानिक शास्त्र मानता हूँ।"

—सम्पूर्णानन्द (मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश)

"सभी चिकित्सा-प्रणालियों पर विचार करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हमारे देश में किसी अन्य चिकित्सा-प्रणाली की अपेक्षा आयुर्वेद जनता की अधिक अच्छी और अधिक प्रभावशाली सेवा कर सकता है।"

— मोरारजी देसाई, (मुख्य-मंत्री, बम्बई राज्य)

"आयुर्वेद हमेशा के लिए सच्ची चीज है और इसका विस्तार देश के लिए आवश्यक है। आयुर्वेद की महत्ता स्वीकार करने के लिए मेरा अपना निज का अनुभव तो उसके अनुकूल है ही, देश-भर में घूमते हुए लोगों से पूछने पर भी मेरा मत बना है कि आयुर्वेद में सबसे बड़ा आकर्षण है।" —गुलजारीलाल नन्दा, (केन्द्रीय योजना-मंत्री)

सज्जनवृन्द, यह सब होते हुए भी, आयुर्वेदिक जगत् को वर्तमान-विचार-धारा तथा प्रगति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना होगा, यह ध्रुव सत्य है। ऐसा अनुभव होता है जैसे आयुर्वेद-जगत् में आज गत्यवरोध उत्पन्न हो गया हो। यदि इस गतिहीनता को गतिशीलता की ओर उन्मुख न किया गया तो हमें भय है कि आयुर्वेद-गगन के भविष्य पर घटाटोप छा जाए। ऐसे में अपेक्षा है स्थिति स्थापकता की, कालक्रम के अनुसार कुछ स्फुट परिवर्तन एवं परिवर्द्धन की।

समय की माँग है वैद्य जगत् को आज भी आयुर्वेद का विशाल अध्ययन जारी रखना

चाहिए और उसमें नितनूतन शोध के अवसर खोजते रहने चाहिएँ। वैद्यों की निरन्तर खोज-पूर्ण प्रवृत्ति ही वैद्यक के अनुशीलन में सहायक हो सकेगी। यदि लुप्त प्राय शल्य-चिकित्सा का आयुर्वेद में पुनरुज्जीवन कर लिया जाए, तो समीचीन होगा, यद्यपि अंधानुकरण की आवश्यकता नहीं। वैद्यों को चाहिए कि वे औषधि-निर्माण की कला से अवगत हों तथा स्वयं औषधि निर्माण करें। इससे उनकी औषधियाँ अधिक विश्वस्त एवं अधिक प्रभावोत्पादक होंगी। वैद्यों के लिए यह भी उचित है कि वे अपने आयुर्वेदिक विशाल अनुभव से दूसरों को भी लाभ उठाने दें तथा उन्हें भी आयुर्वेदिक-पद्धति अपनाने के लिए प्रोत्साहित करें। वैद्य लोग यथा-संभव ऐसी एलोपैथिक दवाएँ उपयोग में न लें, जहां आयुर्वेदिक औषधियाँ अपना प्रभाव सफलतापूर्वक दिखा सकती हैं। वैद्यों द्वारा एलोपैथिक दवाएँ काम में लेने से जनता-जनार्दन का विश्वास आयुर्वेद पर कम हो जाता है। भारत में अधिकाधिक आयुर्वेदिक औषधालयों का पर्याप्त संख्या में खोला जाना तो समुचित है ही आयुर्वेदिक-पद्धति जिसमें शल्य-चिकित्सा भी सम्मिलित हो, के शिक्षण-शिविरों का स्थापित किया जाना भी उपादेय होगा। हमें आशा है हमारे इन विनम्र सुझावों पर वैद्य-जगत् विचार करने एवं पालन करने की उदारता प्रदर्शित करेगा।

भारतवर्ष में राज्य सरकारों द्वारा तो प्रोत्साहन आयुर्वेद को मिल भी रहा है, किन्तु इस क्षेत्र में केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय का दृष्टिकोण आसानी से समझ में नहीं आ रहा है। केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रिणी श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर को संभवतः सबसे अधिक मोह एलोपैथी प्रणाली से है और वे एलोपैथिक अस्पतालों पर जितना ध्यान दे रही हैं और अधिक व्यय कर रही हैं, उसका आधा भी अन्य चिकित्सा-पद्धतियों पर नहीं। यह वस्तुतः आश्चर्य का विषय है कि आयुर्वेद जैसी लोकप्रिय देशी चिकित्सा-प्रणाली के साथ उसके उद्गम स्थान भारत में ही सौतेला व्यवहार किया जा रहा है। क्या केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय इधर ध्यान देगा और एलोपैथी के अतिरिक्त अन्य पद्धतियों— विशेषतया आयुर्वेद—को भी भविष्य में निरन्तर पनपने देने के सुयोग प्रदान करने की कृपा करेगा ? यदि केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय इधर ध्यान न देगा, तो यह तो कुछ ऐसे ही होगा, जैसे कि गृहस्वामिनी को अपने ही घर में उचित आसन ग्रहण करने से वंचित किया जा रहा हो।

इस विषय में यह निवेदन करते हुए हमें परम प्रसन्नता होती है कि हमारे राजस्थान की लोकप्रिय सरकार आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति को उसके उचित शीर्षासन पर विराजमान करने के लिए

पर्याप्ततया जागरूक हैं। आर्थिक प्रतिबंधों के होते हुए भी हमारी यह प्राचीन चिकित्सा-पद्धति पर्याप्त संपोषण प्राप्त कर रही है। आयुर्वेद की उन्नति की योजना बनाने में तथा उसको कार्यान्वित करने के लिए राजस्थान आयुर्वेद बोर्ड की स्थापना की जा चुकी है। बड़े-बड़े नगरों में लगभग ५०० आयुर्वेदिक औषधालय खोले जा चुके हैं। अनेक छोटे-छोटे नगरों तथा ग्रामों में आयुर्वेद-एड-पोस्ट भी स्थापित होते जा रहे हैं। औषधि-निर्माण का काम भी बड़ी सुदक्षता तथा तत्परता से प्रारम्भ किया जा चुका है। इस विभाग के निर्देशन के लिए सुयोग्य तथा सुविज्ञ अधिकारियों की सेवाएँ भी यथा समय प्राप्त की जाती रही हैं। आशा है राजस्थान आयुर्वेद विभाग इस क्षेत्र की स्वस्थ परम्पराओं में उचित प्रगति करता रहेगा और अन्य प्रान्तीय सरकारें भी आयुर्वेद के विकास के हेतु यथा संभव प्रयत्न करेंगी। वस्तुतः उसी चिकित्सा-प्रणाली को हम पूर्णतया सफल मानना चाहेंगे जो क्रमशः जन-सेवा करती हुई जन-मानस की पूर्ण आरोग्यता में अन्तर्निहित होजाए। यह विश्वास करने का भी पर्याप्त आधार है कि इस विभाग के वर्त्तमान डायरेक्टर महोदय की देख-रेख में यह विभाग सर्वांगीण विकास की तरफ सुदृढ़ कदम उठाते हुए स्तुत्य कार्य कर सकेगा।

एक वैद्य में सामान्यतः तीन गुणों का होना अनिवार्य है—(१) नम्रता (२) सहानुभूति तथा (३) चिकित्सा-प्रणाली में दक्षता। वही चिकित्सक जन-समुदाय की सेवा कर सकता और ख्याति अर्जन कर सकता है, जो चिकित्सा-विज्ञान का ज्ञाता होने के साथ-साथ मिलनसार प्रवृत्ति का हो। कहना न होगा कि पीयूषपाणि पण्डित गंगासहायजी में ये तीनों ही गुण विद्यमान् हैं। ऐसे गुणत्रय युक्त चिकित्सक का निर्वाचन मेरे पूज्य पितृव्य श्री मगनीरामजी रामकुमारजी बाँगड़ की दूरदर्शितापूर्ण मानव-स्वभाव-परीक्षण की प्रतिभा का ही परिचायक है। श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय, डीडवाना के प्रधान चिकित्सक पद पर सुशोभित होकर, जन-समूह की निरन्तर लगभग चालीस वर्षों से सेवा कर आपने जहाँ आयुर्वेदिक-जगत् की श्रीवृद्धि की है, वहाँ श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय, डीडवाना की गौरव-गाथा आस-पास के रोगियों में ही प्रसिद्ध नहीं की अपितु उत्तर प्रदेश, पंजाब, सिन्ध, बंगाल, आसाम आदि सुदूर प्रान्तों से आए हुए रोगियों ने भी इसकी अमूल्य चिकित्सा से लाभ उठाया है। इस चिकित्सालय में रोगियों के रहने के लिए स्थानादि की सुन्दर व्यवस्था है और लगभग ५०० रोगी प्रतिदिन आकर लाभ उठाते हैं। वैद्यराज श्री गंगासहायजी का उचित व्यवहार एवं चिकित्सा निपुणता ही रोगियों के आकर्षण के प्रमुख कारण हैं। वे एक अत्यंत कोमल स्वभाव के आर्त्तजन-सेवा-

परायण सफल चिकित्सक हैं। यह सत्य है कि चिकित्सालय के संस्थापकों द्वारा प्रस्तुत साधन-सामग्रियों का महत्त्व होते हुए भी वैद्यजी की क्रिया-कुशलता एवं अथक परिश्रम ही चिकित्सालय की इस सफलता का प्रतीक है और इसका श्रेय पर्याप्त मात्रा में पण्डितजी को ही है।

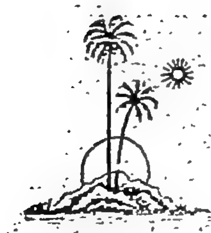
कुछ समय से हम भारतवासियों ने अपने देश के जन-सेवियों का सम्मान करना सीख लिया है, जो देश के सर्वतोमुखी विकास के लिए आवश्यक एवं उत्साहवर्द्धक लक्षण है। इसी भावना से अनुप्राणित होकर राजस्थान की जनता के द्वारा वैद्यराज श्री गंगासहायजी का सार्वजनिक सम्मान के रूप में अभिनन्दन किया जा रहा है। वैद्यजी का जितना भी सम्मान किया जाए थोड़ा ही है परन्तु जिस रूप में यह अभिनन्दन समारोह मनाया जा रहा है इसके लिए राजस्थान की जनता प्रशंसा की पात्र है। ईश्वर करे, प्राणाचार्य पण्डित गंगासहायजी चिरायु हों, शतायु हों, वे जनता की अधिकाधिक सेवा करें, जन-स्वास्थ्य का मार्ग अधिकाधिक प्रशस्त बनाएँ, आयुर्वेद-संसार का अधिकाधिक मस्तक ऊँचा करें। आइए, उनके अभिनन्दन-समारोह के इस शुभवसर पर हम श्रद्धा और विनम्रता पूर्वक उनको श्रद्धांजलि अर्पित करें।

हम सब के लिए यह परम हर्ष और गौरव का विषय है कि उल्लास और आल्हाद की इस मंगलमय-वेला में हमें माननीय श्री भोगीलालजी पंड्या जैसे लोकप्रिय मंत्री, श्रीमान किशनपुरीजी, मुख्य सचिव, राजस्थान सरकार जैसे सफल प्रशासक, श्री मथुरादासजी माथुर एम० एल० ए० के समान राजस्थान की राजनीति के कर्णधार, श्री प्रेमशंकरजी, डायरेक्टर आयुर्वेद विभाग, श्री हरिगोपालजी दुबे, डायरेक्टर औषधि विभाग जैसे आयुर्वेद के विशेषज्ञ, अन्य प्रसिद्ध विद्वान्, इस प्रदेश ने धनीमानी व्यक्ति तथा अन्य महानुभाव हमारा पथ-प्रदर्शन तथा प्रोत्साहन के निमित्त हमारे मध्य उपस्थित हैं। हम उनके यहाँ पधारने पर अत्यन्त आभार अनुभव करते हैं। हमें भय है कि उनके अनुरूप सुख-सुविधा का आयोजन संभवतः स्वागत समिति से न बन पड़ा होगा किन्तु अपनों की भूल पर उदाराशय महानुभाव ध्यान नहीं दिया करते, यह आशा ही हमारे संतोष का आधार है। मैं उन सब महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित किए बिना नहीं रह सकता जिन्होंने विभिन्न पदों को सुशोभित कर अथवा अपने अमूल्य सुझाव तथा अन्य प्रकार का सहयोग देकर इस उत्सव को सफल बनाने में अपना सहज योगदान दिया है। विशेषतया हम श्री स्वामीजी महाराज के अत्यन्त कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपना वरद हस्त इस आयोजन पर रख इसको सफल बनाने की महती कृपा की है।

संसद् सदस्य श्री गजाधरजी सोमाणी तथा श्री लाला बलदेव स्वरूपजी को भी मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनका सक्रिय सहयोग हमें प्राप्त रहा है। स्वागत समिति तथा सम्पादक मण्डल के सदस्यों को भी धन्यवाद देना मैं अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ, जिनके हार्दिक सहयोग और लगन से ही यह आयोजन सफल हो सका है।

महानुभावो, इन उद्गारों के साथ मैं माननीय श्री भोगीलालजी पंड्या, उद्योग तथा व्यापार मंत्री, राजस्थान राज्य से प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहायजी अभिनंदन समिति के इस महान् आयोजन का उद्घाटन संपन्न करने की विनम्र प्रार्थना करता हूँ।

जय भारत।



स्वागत-समिति



बाँईं ओर से बैठे हुए—सर्वश्री मिलापचन्दजी माथुर, भँवरलालजी कूंपावत, अब्दुलगनीजी वकील, ईसरदासजी घोड़ावत, गोपालदासजी सिंगी, रघुनाथदासजी बाँगड (स्वागताध्यक्ष), जयसिंहजी मुणोत जनार्दनदासजी बाँगड़, रामेश्वरप्रसादजी शास्त्री, ब्रजनारायणजी बाँगड़, मदनलालजी भूत।

पीछे खड़े हुए— सर्वश्री माणकचन्दजी नागौरी, कुञ्जविहारीजी व्यास, शिवनारायणजी शास्त्री।

[स्वागत समिति के समस्त सदस्यों की नामावली अगले पृष्ठ पर देखिए]

स्वागत समिति

श्री रघुनाथदासजी बाँगड	स्वागताध्यक्ष
श्री जयसिंहजी मुणोत	उपाध्यक्ष
श्री रामदयालजी वकील	प्रधान मंत्री
श्री मिलापचंदजी माथुर	संयुक्त मंत्री
श्री श्रीरामजी पसारी	"
श्री मदनलालजी धूत	कोषाध्यक्ष
श्री गजाधरजी सोमाणी	सदस्य
श्री शाह गोवर्द्धनलालजी काबरा	"
श्री रणजीतमलजी बैंगाणी	"
श्री जीवनमलजी तापड़िया	"
श्री डालमचंदजी सेठिया	"
श्री भीमसिंहजी दूधेड़िया	"
श्री टीकमचंदजी डागा	"
श्री भूरामलजी वैद्य	"
श्री गोपालदासजी सिंगी	"
श्री जैसराजजी घोड़ावत	"
श्री अब्दुलगनीजी वकील	"
श्री तुलसीरामजी मूँदड़ा	"
श्री पं० रामेश्वर प्रसादजी शास्त्री	"
श्री पं० शठकोपाचार्य्यजी	"
श्री पं० विद्यानंदजी शर्मा	"
श्री कन्हैयालालजी डागा	"
श्री जनार्दनदासजी बाँगड	"
श्री लक्ष्मीनारायणजी मूँदड़ा	"
श्री भँवरलालजी कूँपावत	"
श्री ब्रजनारायणजी बाँगड़	"
श्री पं० कुञ्जविहारीजी व्यास	"
श्री पं० शिवनारायणजी शास्त्री	"
श्री पं० अम्बादत्तजी वैद्य	"
श्री पं० श्यामसुन्दरजी वैद्य	"
श्री पं० भूरमलजी भाभड़ा	"
श्री माणकचन्दजी नागौरी	"



विषय सूची

पृष्ठ

श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय का संक्षिप्त विवरण और निरीक्षण सम्मतियाँ

शुभाशीर्वाद, शुभ संदेश और शुभकामनाएँ

आयुर्वेदज्ञ विद्वानों के उपयोगी लेख

---

*इस लेख पर लेखक का नाम अंकित नहीं है।

सामान्य परिवारिक चिकित्सा



❀ प्रयोग-सूची ❀

अवलेह (शार्कर)



प्रधान चिकित्सक

प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहायजी शर्मा शास्त्री

डीडवाना (राजस्थान)



धैर्य पदो धैर्यधर सुशील,

आचार्य भक्तो निजधर्म रक्त ।

सत्य प्रिय सत्य विचार युक्त.

॥ श्री हरिः शरणम् ॥

मङ्गलाचरणम्

गोपालादलसी प्रसून सदृश श्यामात्त्रिवक्त्रात् प्रियात् ।
कस्तूरीतिलकादनन्तसुषमा धाम्नो गले कौस्तुभात् ॥
विम्वोष्ठाद्दरवेत्र पाणिजलजात् कौशेय पीताम्वरात् ।
स्मेरास्याद्वनमालिनो मुकुटिनस्तत्वं न जाने परम् ॥१॥

उद्गीर्णधर्म जल विन्दु लसल्ललाट
लोलद् घनालक निषङ्ग तुरङ्ग रेणुः ॥
पायात्सुयोधन पलायन मान भङ्ग-
मन्दस्मितं वदनमर्जुन नारथे नः ॥२॥

न त्वं विना योगिजना जनार्दनम्
जनेर्मृतेश्च प्रभवं भवं ध्रुवम् ॥
तरन्ति तं त्वै निजकान्तया तया
युतं जगन्मोहन-विग्रहं नुमः ॥३॥

भद्रं विधत्तां भववन्ध कर्तनो
रामो रमेशो रमणीय विग्रहः ॥
यश्चिन्त्यमानोऽपि हृदा दुरात्मभि-
र्मोक्षप्रदो मोहविनाशनो हरिः ॥४॥



प्राक्कथन

जो व्यक्ति अपना जीवन जन-सेवा में अर्पण कर देते हैं, जिनका प्रत्येक पल दुःखित और पीड़ित जनता के हितसाधन में संलग्न रहता है और जिनकी अन्तरात्मा से सदा यही आवाज मुखरित होती है:—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

ऐसे सेवा भावी व्यक्तियों को संसार हमेशा श्रद्धा और सम्मान से याद करता आया है—विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है। ऐसे ही आदरणीय और अभिनन्दनीय पुरुषों की श्रेणी में हमारे परम श्रद्धेय प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहाय जी शर्मा, आयुर्वेद शास्त्री का अग्र स्थान है।

यह जान कर हमें प्रसन्नता होती है कि आपकी स्मरणीय सेवाओं से मुग्ध और आपकी कठोर कर्त्तव्यनिष्ठा से प्रमुदित होकर, मारवाड़ महाप्रदेश की गुणज्ञ और कृतज्ञ जनता द्वारा कृतज्ञता स्वरूप आपको "अभिनन्दन-ग्रन्थ" भेंट किया जारहा है। उक्त ग्रन्थ सन ५४ में ही माननीय वैद्यजी महाराज को भेंट किया जाने वाला था। किन्तु 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' की उक्ति के अनुसार इस कार्य में अनेक बाधायें आई पर अभिनन्दन समिति की कर्तव्य निष्ठा और गुणी के गुण का सम्मान करने की प्रबल भावना ने उन बाधाओं को पार किया।

आज वह स्वर्णिम घड़ी उपस्थित है, जिसमें बड़े हर्ष-उल्लास के साथ अभिनन्दन समिति कृत-कार्य होकर वैद्यजी महाराज का चिरकांक्षित अभिनन्दन कर रही है। गुणग्राही आयोजक सचमुच बधाई के पात्र हैं। ऐसे अवसर पर पाठक आपके परिचय के लिये अवश्य उत्सुक एवं अधीर होंगे। अस्तु, श्री वैद्यजी का सामान्य जीवन चित्र इस ग्रन्थ में प्रस्तुत कर देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा।

निवेदकः—

अभिनन्दन समिति

* वंश-परिचय *

प्रख्याते भुवि गौड़ वाडव कुले श्री दाल्भ्य गोत्रे शुभे ।
सञ्जातो निजधर्मकर्म निरतो धीरोऽमरोहापुरे ॥
आयुर्वेदविदां सदस्यभिमतः सम्माननीयो नृणाम् ।
सौम्यः कारुणिकः सदा सुहृदयो रामस्वरूपो भिषक् ॥४॥
सुतावुभौ तस्य चिकित्सकस्य, जातौ गुणाढ्यौ सुखदौ शुभाख्यौ ॥
गङ्गासहायः प्रथमः सुपुत्रः परश्च गङ्गाशरणः सुयोग्यः ॥६॥
द्वाभ्यामधीता महता श्रमेण विद्या गुरूणां सविधे सुभक्त्या ॥
गङ्गासहायस्त्वभवत् कुशाग्र बुद्धि प्रभावेण सुवैद्यवर्यः ॥७॥
चरक सुश्रुत वाग्भट संहिताः सुपठिता बहुशः सुविचारिता ॥
तदनुकूल परम्परया कृताः सकल भेषजनिर्मित सत्क्रियाः ॥८॥
अष्टाङ्गायुर्वेदे—
प्रगतिर्यस्यास्ति सर्वं तन्त्रेषु—
तं कारुणिकं वैद्यं—कुर्याच्चिर जीवितं रमाकान्तः ॥९॥
आयुर्वेदविदां मध्ये लब्धकीर्तिश्च निःस्पृहः ॥
सिद्धहस्तः क्रियादक्षो दयालुर्वैद्य उच्यते ॥१०॥
गतः प्रसिद्धिं स्वपुरे पुनश्च ।
मरुप्रदेशेऽलभत प्रतिष्ठाम् ॥
श्री श्रेष्ठिना मगनीराम नाम्ना ।
सम्मानितः स्वपुरे स्थापितश्च ॥११॥
राजस्थाने सुप्रसिद्धे डीडवाना पुरे शुभे ।
वैश्य वंशावतंसश्च जातः परम धार्मिकः ॥१२॥
श्रेष्ठी श्री मगनीरामो वदान्यो धनदोपमः ।
देशे प्रतिष्ठां सम्प्राप्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥१३॥
श्री वेंकटे शाङ्घ्रि सरोज सेवी भक्तानुरागी सततं दयालुः ।
श्री वेंकटेशाख्य कृतेचिकित्सालयं शुभं स्थापितवान परार्थे ॥१४॥

गंगासहायः खलु राजमान्यो
जीवेच्छतं शरदः सौख्यमाप्तः ॥१५॥

न केवलं यस्य चिकित्सयाऽभवन्
स्वस्था नृपस्थान निवासिनो नराः।
प्रान्तान्तरस्था अपि लाभमाप्नुवन्
वदन्ति चैतन्मरुदेश-वासिनः ॥१६॥

चत्वारिंशत् समा यावत् कृता सेवा निरन्तरम्।
तदाकृष्टा जनाः सर्वे कुर्वन्त्यस्य महोत्सवम् ॥१७॥

जयन्ती राजतीं कर्तु—मुद्यता निखिला जनाः।
श्लाध्यस्तेषां विचारोऽयं पूर्णः स्यात्कृपया हरेः ॥१८॥

नृपस्थानीयानां परमसुखदात्री मतिमतां
कृतज्ञानां नृणां स्मृतिपथ विधात्री मतिमताम्
गुणज्ञानां कीर्तिप्रसरणकरी. मोद जननी
जयन्तीयं भूयादखिलभिषजां सम्मदकरी ॥१९॥

सेयं जयन्ती परितापहन्त्री सुहृज्जनानां हृदयस्य तन्त्री।
आरोग्य कर्त्री जनरोगहर्त्री भवेत्सदा भावुक भाव भर्त्री ॥२०॥

पद्मा पद्मालया गेहे वसतात्ते सुनिश्चला
वागीशा वदने तेऽस्तु हृदये च सदा हरिः ॥२१॥

पूज्यामतिर्गुरु जनेषु सदैव तेस्यात्
पाल्या मतिः परिजनेषु च सत्सु सख्यम्।
धर्मेरतिर्हरिजनेषु च भक्तिभावो
दीने जने कुरु दयां करुणा परत्वम् ॥२२॥

पतिव्रता धर्म परायणा च सदानुकूला तव धर्म पत्नी
स्वपुत्र पौत्रादि सुखेन युक्ता भवेच्च सौभाग्यवती सतीव ॥२३॥

पुत्रस्त्वदीयः पितृमातृभक्तो गुणान्वितो धर्म परायणश्च ॥
प्रेमाभिधानः प्रियतां दधानः शतं समा जीवतु सावधानः ॥२४॥

गुरुभक्तस्य शिष्यस्य विनम्रस्य विवेकिनः ॥

तस्मिंश्चिकित्सालय एव नूनं
प्रधानवैद्योऽस्ति प्रसिद्धिमाप्तः
प्राणाचार्योपाधिकस्य प्रशस्ती रचिता मया ॥२५॥
त्रिवेदी भगवद्दत्तो धीरः शाण्डिल्य गोत्रजः ॥
पद्यान्येतान्यरचय—दाशीर्वादात्मकानि च ॥२६॥
स्वल्पेनानेन लेखेन पद्यरूपेण शोभिना ॥
तुष्यत्वदभ्र करुणो भवानीवल्लभः शिवः ॥२७॥

—भगवद्दत्तस्त्रिवेदः साहित्याचार्यः विद्याभूषणः

प्राणाचार्य श्री पं० गङ्गासहाय जी शर्मा, शास्त्री का जीवन-परिचय

जन्म और बाल्यकाल

आपका जन्म सन १९४९ में उत्तर-प्रदेश के अन्तर्गत जिला मुरादाबाद प्रान्त के अमरोहा नामक नगर में हुआ, और गौड़ जाति के प्रतिष्ठित इस पूठिया कुल को सुशोभित किया। आपके पिताजी का नाम श्री पं० रामस्वरूप जी शर्मा था। वे बड़े सौम्य, सरल और कर्त्तव्य शील व्यक्ति थे। पू० पिताजी ने आरम्भ में व्याकरणादि तदनन्तर आठ वर्ष तक आयुर्वेद का मनन पूर्वक अध्ययन एवं अनुशीलन किया। वे अपने समय के एक प्रतिभाशाली वैद्य और कुशल चिकित्सक थे।

पू० पिताजी के रस सम्बन्धी सूक्ष्म ज्ञान और औषध प्रक्रिया की विलक्षण प्रतिभा का इससे स्पष्ट परिचय मिलता है कि वे उड़नशील द्रव्य हरताल आदि और रुपयों की श्वेतभस्म, जिनपर अक्षर बने रहें, बनाने में बड़े सिद्धहस्त थे।

पिताजी के समान आपकी पू० माताजी भी दया, ममता और सहृदयता की प्रतिमूर्ति थीं। उनकी कुक्षी को दो पुत्र और दो पुत्रियों को जन्म देने का सौभाग्य मिला। पुत्रों में बड़े श्री गङ्गासहाय जी और छोटे श्री गङ्गाशरण जी। पिताजी का अल्पावस्था में देहान्त हो जाने से, आपका शैशव नानाजी की स्नेहमयी गोद में बीता।

शिक्षा और आयुर्वेद का अभ्यास

पू० पिताजी के असामयिक निधन से मोताजी के सामने बच्चों के पालन पोषण और पढ़ाने लिखाने का कठिन प्रश्न था, तथा अन्य समस्यायें भी थीं। वह इनसे किंचित् भी नहीं घबराईं। वीरांगना की तरह विपत्तियों का धैर्य और साहस से सामना किया। बालकों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया।

आयुर्वेद महाविद्यालय, मेरठ और ललितहरी-संस्कृत कॉलेज, पीलीभींत, आपके शिक्षास्थल रहे। सर्वप्रथम व्याकरण मध्यमा करने के पश्चात् आयुर्वेद का अध्ययन आरम्भ किया। आप अपने अथक अध्यवसाय और लगन से चार ही वर्षों में महाराजा कालेज, जयपुर की "उपाध्याय" और "शास्त्री" की परीक्षाओं में सफलता पूर्वक उत्तीर्ण हुए।

पुस्तकीय शिक्षा को सिद्धान्त के आवर्त से निकाल कर क्रियात्मक रूप देने के लिये आपने वैद्य श्री दुर्गादत्त जी पन्त के सान्निध्य में यथोचित अभ्यास किया, और अपने कार्य में श्लाघनीय दक्षता प्राप्त की।

एक विशेष बात। माता की गोद प्राकृतिक पाठशाला है। इसी शाला में जो शिक्षा प्राप्त होती है वह अन्यत्र साधारण स्कूलों या कालेजों में शायद ही मिल सके। आपने भी कष्ट सहिष्णुता, परिश्रम, शीलता, और मनुष्यता के प्रति सहज मानवीय संवेदन शीलता के पाठ, रासायनिक क्रिया तथा अनेक गुप्त योग अपनी ममतामयी माता की गोद में सीखे जो आगे चल कर आपके जीवन को नया मोड़ देने में सहायक हुए।

योग्य पिता के योग्य पुत्र

पू० पिताजी की ख्याति उनके द्वारा छोड़े हुए ग्रन्थ और विविध प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियाँ इनको अपने पूज्य पिताजी के पद चिन्हों पर चलने के लिये प्रेरित कर रहे थे। इनके हृदय की बलवती इच्छा, जीवन की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा यही थी कि ये भी अपने पिताजी की भाँति एक महान् वैद्य और कुशल चिकित्सक बनें।

वस्तुतः तो मनुष्य की दृढ़ इच्छा शक्ति ही उसका पथ प्रशस्त करती जाती है, शेष सब तो निमित्त मात्र हैं - आपने अपने मधुर स्वप्नों को साकार रूप देने के लिये "अष्टाङ्ग आयुर्वेदिक चिकित्सालय" की स्थापना की और अपनी प्राचीन परम्परा को कायम रक्खा। आप अपनी कार्य

कुशलता, बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता से अति अल्प समय में वहाँ की जनता के आदर और विश्वास के पात्र बन गये। योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र कहलाने के अधिकारी हुए।

मारवाड़ में मलेरिया और आपका डीडवाना आगमन

विधि का विधान विचित्र होता है। वि० सं० १६७४ की बात है। मारवाड़ में सर्वत्र अत्यधिक वर्षा हुई। घर घर, गाँव गाँव और नगर नगर में भयंकर मलेरिया ज्वर का प्रकोप हुआ। डीडवाणा भी अछूता कैसे रहता। चारों ओर हाहाकार मच गया। जनता त्राहि त्राहि करने लगी। सेठ साहब श्री मगनीरामजी रामकुमार जी बाँगड़ का दयालु हृदय इस आर्त पुकार को सुनकर द्रवित हो गया। ग्राम-वासियों की सहायतार्थ उन्होंने जगाधरी निवासी वैद्य श्री सन्तलालजी को वहाँ बुलाया। परन्तु वह अधिक दिन नहीं ठहरे और १५ दिनों में ही वापिस चले गये।

उस ओर जो सुगन्ध की लहर की तरह आपके (वैद्य श्रीगंगासहायजी के) औषधोपचार एवं कार्य कौशल की कीर्ति धीरे धीरे चारों ओर फैल रही थी। कारण रूप होकर वैद्य श्री सन्तलालजी के विशेष आग्रह पर आपने डीडवाना आना स्वीकार किया। और उस विषम समय के संकट के काले बादलों में आपका आगमन एक प्रकाशमान प्रदीप की भाँति हुआ।

अनुकरणीय साहस और सेवा-मय जीवन

संक्रामक मलेरिया के साथ आस पास के गाँवों और नगरों में कहीं कहीं लोग प्लेग के शिकार भी हो रहे थे। धर्मशाला का (वह स्थान जहाँ औषधालय का श्री गणेश किया गया था) उस समय प्लेग से भयभीत और त्रासित प्राणियों की अभय-स्थली बनी हुई थी और प्राण बचा कर भागे हुए नर नारियों से भरी थी।

श्री गंगासहाय जी को रहने के लिये इसी धर्मशाला में स्थान मिला। दो कोठ-रियाँ जो वैद्य श्री सन्तलाल जी द्वारा जाते समय कुछ काष्ठौषधियाँ रख कर बन्द की हुई थीं, आपको मिलीं। दरवाजे खोले, सफाई करवाई पर यह क्या? कूड़े के साथ बहुत से मरे हुए चूहे! स्थिति समझने में देर न लगी, पर वहाँ की दयनीय परिस्थिति भी नजरों के सामने थी। आप विचलित नहीं हुए। दृढ़ता के साथ निश्चय करके कि "जावो [illegible] मरना, मगर [illegible] नहीं

कोय" आपने उन्हीं कोठरियों में अपने आसन जमा दिये।

आपके आने की सूचना पहले से ही सबको मिल चुकी थी। जनता बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रही थी—अपनी व्यथा-कथा सुनाने और मलेरिया से मुक्ति पाने के लिये। आपके आते ही लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। आपने सभी को शान्ति पूर्वक देखना और साथ में लाई हुई औषधियों में से औषधि देना शुरू किया। आपके सान्त्वनापूर्ण संभाषण और मृदुल व्यवहार से सभी को सन्तोष हुआ।

आपका अदम्य उत्साह और कठिन श्रम तो उस समय देखते ही बनता था जिस समय आप गाँव में किसी एक को देखने जाते पर १००-५० को देखने पर भी पीछा न छूटता। औषधि देने बैठते तो लेने वालों का अन्त आना ही मुश्किल हो जाता। इधर रोगियों की बाढ़ सी आती और उधर आपकी नशों में स्फूर्ति की बाढ़ आ जाती। आप अपनी सुख सुविधा, खाना, पीना, सोना, जागना भूल कर आपत्ग्रस्त प्राणियों की सेवा में रात दिन एक कर देते। इस प्रकार आपके २-२॥ मास के अभूतपूर्व परिश्रम और उद्योग से साल भर से सन्तप्त करने वाला मलेरिया शान्त हुआ। लोगों ने सुख की साँस ली।

मलेरिया को मरे अभी पूरा एक महिना भी नहीं हुआ था कि प्लेग ने जन्म ले लिया। यत्र तत्र सर्वत्र प्लेग की दुर्घटनायें होने लगीं। गाँव का वातावरण क्षुब्ध हो गया और १०-१५ दिनों में ही यहाँ जो दारुण दृश्य उपस्थित हुआ उसकी कल्पना करके आज भी हृदय कम्पायमान हो जाता है। काल का विकराल ताण्डव होने लगा। भाई भाई का और पिता पुत्र का साथ छोड़ कर भागने लगे। गाँव सूने होने लगे। ऐसी विकट अवस्था में भी हमारे वैद्यजी ने अपने कर्त्तव्य को मुख्य समझा और अपनी सुरक्षा का ध्यान छोड़ कर आक्रान्त रोगियों के उपयुक्त उपचार और सेवा शुश्रूषा में मनोनिवेश पूर्वक लग गये। आपके सत्प्रयत्नों से कई व्यक्तियों को जीवन दान मिला। परन्तु विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उस समय के सरकारी डाक्टर नगीनदास जी ने प्लेग ग्रस्त जितने रोगियों को शहर में से निकाला उन सब को आपने धर्मशाला में शरण दी और वे प्रायः सभी यहाँ अच्छे हुए। उनमें से कई व्यक्ति आज भी मौजूद हैं। जो उस घटना को अभी भूले नहीं हैं।

प्लेग का आक्रमण दिनों दिन बढ़ता ही गया अशान्त और अधीर मनों को समझना मुश्किल हो गया। अधिकांश आदमी गाँव छोड़ कर चले गये। घर के घर खाली हो गये। रोगियों का आना कम और शनैः शनैः बन्द हुआ तो हमारे वैद्यजी को भी अपने घर (अमरोहा) जाने का अवकाश मिला।

कई महिनों बाद जब प्लेग का प्रभाव और आतङ्क मिट गया तब बाहर गये हुए गृहस्थ पुनः आने और बसने लगे। उस समय ग्राम वासियों को श्री वैद्यजी की अनुपस्थिति अखरने लगी और इनकी निःस्वार्थ सेवायें याद आने लगीं। वैद्यजी को बुलाने के लिये श्री सेठ साहब बाँगड़ जी से निवेदन किया गया। सेठ साहब के अनुरोध पर आप पुनः डीडवाना आये और औषधालय का कार्य संभाला।

दैव दुर्विपाक से वि० सं० १९७५ भी सं० १९७४ से कम न निकला। इस वर्ष श्लेष्मक ज्वर का प्रचण्ड कोप रहा और २-२॥ मास में यह भी शान्त हुआ।

इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं, तीन तीन कसौटियों (मलेरिया, प्लेग, श्लेष्मक ज्वर) पर कसे जाने और खरे उतरने पर आपकी चिकित्सा योग्यता, निदान चातुरी और उपचार विधि की उत्कृष्टता की चर्चा जन जन के मानस तक पहुँच गई। दूर दूर के ग्रामों और नगरों के छोटे, बड़े धनी, निर्धन सभी यहाँ की चिकित्सा से लाभ उठाने लगे।

प्रगति के पथ पर

'श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय' और श्री पं० गंगासहाय शर्मा दोनों एक दूसरे के जीवन में ऐसे ओतप्रोत और व्याप्त हैं दोनो का ऐसा अटूट सम्बन्ध है कि इनको अलग समझना कठिन सा है। डीडवाना का दवाखाना और डीडवाना वाले वैद्यजी जनसाधारण के लिये एकार्थ-वाची शब्द हैं। यह इसकी सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक दूसरे की प्रगति परस्पर सन्निहित है।

इनके विकास का क्रम उस सरिता के समान है जो अपने उद्गम स्थान से छोटे से रूप में प्रगट होकर निरन्तर बढ़ती और फैलती जाती है।

स्थानः—चिकित्सालय का सूत्रपात धर्म-शाला के साधारण मकान में हुआ जो आज रु० ५००००) की लागत के भव्य नवीन भवन में शोभायमान हो रहा है।

कर्मचारीः—कार्य कर्त्ताओं की संख्या २२ तक पहुँच गई है।

रोगी संख्याः—यहाँ से लाभान्वित होने वाले रोगियों की वार्षिक संख्या १॥ लाख तक जाती है।

इनकी सर्वाङ्गीण उन्नति और उत्तरोतर लोकप्रियता का परिचय देने के लिये उपर्युक्त तथ्य पर्याप्त होंगे।

औषधालय की सुन्दर व्यवस्था आयुर्वेद सम्मत वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली और इसके प्रत्येक विभाग की आदर्श स्वच्छता जन साधारण से लेकर बड़े बड़े राज्याधिकारियों एवं राजा महाराजाओं के आकर्षण का केन्द्र रही हैं। सभी ने एक स्वर से इसकी उपयोगिता और श्रेष्ठता की प्रशंसा की है। राजस्थान के अतिरिक्त, आसाम, बंगाल, सिन्ध, पञ्जाब, यू० पी० आदि दूरस्थ देशों से अनेक निराश और कष्टसाध्य रोगी यहाँ आते हैं और आरोग्यता प्राप्त कर अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं।

गर्व का विषय है कि आज राजस्थान में इसकी समानता का दूसरा औषधालय मिलना कठिन सा है। आयुर्वेद प्रेमियों ने तो इसकी मुक्त कण्ठ से सराहना की ही है; परन्तु विरोधियों ने भी इसकी महत्ता को स्वीकार किया है।

सामन्तशाही का जमाना था सन् १९३४ में जोधपुर राज्य के पी० एम० ओ० (प्रधान चिकित्सा अधिकारी मि० ई० हैवर्ट एक अँग्रेज महाशय थे। उनके दिल में देशी चिकित्सा प्रणाली के प्रति उपेक्षा वृत्ति स्वाभाविक थी। परन्तु अपने मित्रों और उच्च अधिकारी वर्ग से इनकी प्रशंसा सुनकर औषधालय में आये। औषधालय तथा उसी प्रत्येक गति विधि का अच्छी तरह निरीक्षण करके वे सर्वथा सन्तुष्ट हुए और अपना इस प्रकार का लिखित अभिमत प्रगट किया जिसके कारण उनको सदा के लिये देशी चिकित्सा के विरुद्ध बोलने का अवसर ही न रहा।

सफलता का रहस्य

श्री पं० गंगासहाय शर्मा के सम्पर्क और सहवास में जो भी व्यक्ति आते हैं वे आपकी परिश्रम शीलता, अनुशासन प्रियता और परदुःख कातरता से आकृष्ट, मुग्ध और प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

दुबला पतला शरीर, गौर वर्ण, हँसमुख चेहरा, तेज चाल, मन्द मुस्कान, सादा वेष, सरल भाषा, मधुर प्रकृति और शान्त स्वभाव सभी मिलकर मिलने जुलने वालों पर एक विशेष प्रभाव डालते हैं।

दुःखी व्यक्तियों के हृदय तक पहुँचने की शक्ति आपकी एक अन्य विशेषता है।

पीड़ितों, अभावग्रस्तों दुःखियों और रोगियों से मिलते और बातचीत करते समय वैद्य जी में कृपालुता या अनुग्रह की भावना उतनी नहीं होती; जितनी निष्कपट आत्मीयता होती है।

"प्रसन्न रहो और प्रसन्न रक्खो" का आदर्श वाक्य चौबीसों घण्टे आपकी आँखों के सामने रहता है। बीमारों की आधी बीमारी तो आप इसी नुस्खे से ठीक कर देते हैं। प्रसन्न मुद्रा में सान्त्वना पूर्ण वार्तालाप विदीर्ण रोगी हृदय के लिये मरहम का काम करता है।

आपके आकर्षक व्यक्तित्व, नवनीत समान स्निग्ध कोमलता और निर्दोष विनोद-वृत्ति में आपकी सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

आदर सत्कार

सच्चाई और ईमानदारी से की गई जनता जनार्दन की सेवा कभी निष्फल नहीं जाती, उसका प्रतिफल अवश्य मिलता है। आपकी सेवाओं का सच्चा सत्कार तो उन हजारों और लाखों स्त्री पुरुषों की सद्भावनायें हैं, जिन्होंने आपके द्वारा नीरोगता प्राप्त की है और जो रात दिन आपकी हितकामना करते रहते हैं।

राज्य सरकार और अन्य संस्थाओं ने भी आपको समुचित सम्मान दिया है:—

१. जोधपुर राज्य के आयुर्वेद बोर्ड का सुचारू रूप से संचालन करने के लिये आपको उस समय स्टेट कौंसिल द्वारा सेकिण्ड क्लास आफिसर टी० ए० दिया गया।

२. जोधपुर राज्य ने आपको स्वेच्छा से प्रमाणपत्र आदि देने की सुविधायें दीं।

३. आपकी सार्वजनिक सेवाओं से प्रसन्न होकर श्रीमान् जोधपुर नरेश ने आपको "सोना पालकी" से सम्मानित किया।

४. निखिल भारत वर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन के जोधपुर के अधिवेशन में आपको "प्राणाचार्य" की उपाधि और स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

विज्ञान के क्षेत्र में

पूर्वजों के पुण्य प्रताप और गुरुजनों के आशीर्वाद से आपने आर्य संस्कृति और भारतीय औषध विज्ञान-आयुर्वेद की जो अमूल्य निधि और अनुपम सम्पत्ति है— उसके प्रति आपके हृदय में असीम श्रद्धा तथा उस हेतु सर्वस्व अर्पण करने की भावना होने के कारण आपने प्रत्येक के हृदय में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

आयुर्वेद की गरिमा को केवल चिकित्सा द्वारा अखण्डित ही नहीं बनाये रक्खा है, प्रत्युत अपने अन्वेषणों और अनुसंधानों द्वारा इसे परिष्कृत करने में भी आपने अकथनीय श्रम किया है। फार्मेसी और लेबोरेटरी इसका जीता जागता उदाहरण है, जहाँ नवीनतम वैज्ञानिक ढंग से प्रभावोत्पादक आयुर्वेदिक औषधियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। हम आपके इस अभिनव प्रयास की हृदय से सफलता चाहते हैं।

सेठ साहब की उदारता

स्वनामधन्य श्रीमान् सेठ सा० श्री मगनीरामजी रामकुमारजी बाँगड़ ने इस जन हितकारी औषधालय की स्थापना और व्यवस्था में सम्पूर्ण आर्थिक योग देकर जिस उदारता का परिचय दिया है, वह अनुकरणीय है। यह बड़े सन्तोष की बात है कि उन्होंने इसके संचालन का भार गङ्गासहाय जी जैसे उपयुक्त व्यक्ति के हाथों में पूरे विश्वास के साथ सौंप दिया—वैद्य जी को अपने एक आत्मीय की तरह उन्होंने अपनाया और वैद्यजी ने भी अपने उत्तरदायित्व का सम्पूर्ण शक्ति के साथ पालन कर औषधालय और बाँगड़ बन्धुओं की यश वृद्धि में चार चाँद लगाने में योग दिया।

अनुज श्री गंगाशरणजी

अँग्रेज के अनुरूप आपके लघु भ्राता श्री पं० गङ्गाशरणजी शर्मा भी कोमल हृदय, करुणाशील और परोपकारी सज्जन हैं। आप लाडनूँ (राजस्थान) में स्वतन्त्र रूप से अपना चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। आप अपने मधुर व्यक्तित्व, सरस व्यवहार और सुन्दर कर्म कौशल से आम जनता का स्नेह और विश्वास सम्पादन करने में सफल हुए हैं—लोकप्रिय बने हुए हैं।

हमारी कामना

सर्व शक्तिमान् परमेश्वर से विनीत प्रार्थना है कि वह हमारे इस सुयोग्य वैद्य, सेवा भावी चिकित्सक और कर्त्तव्य परायण कार्य कर्त्ता को सुख, समृद्धि, और दीर्घायु प्रदान करे। आपके जीवन से शत शत प्राणियों को नवस्फूर्ति और सत्प्रेरणा मिलती रहे—इन्हीं शुभ कामनाओं और सदाशाओं के साथ हम अपनी लेखनी को विश्राम देते हैं।

चैत्र शुक्ला रामनवमी
सं० २०१३

प्रशस्ति पत्रम्

योऽपास्य भेदं धनिकाधनानां रात्रिन्दिवं चाविगणय्य प्रेम्णा।
असाध्यरुग्णान्निरुजो विधत्ते, गंगासहायः स विभाति वैद्यः॥ १॥

यः क्षीणो वपुषा स्वयं प्रकुरुते क्षीणा-स्त्वर्थविप्रान् जनान्।
यः पाश्चात्यचिकित्सकैर्गतदयैस्त्यक्तान् गदा वाविनान्॥
दिव्यैरौषधसञ्चयैर्मृदुपदोपन्यासतः सान्त्वयन्।
प्रोल्लासान् विदधात्यसौ विजयते "गंगासहायः" सुधीः॥ २॥

विलोक्य यस्याशु निदान लाघवं।
तथा चिकित्सां गदिनां गदापहाम्॥
सुविस्मिता डाक्तर वर्ग शोभनाः।
मुखे करं द्राक विनियोज्य चासते॥ ३॥

क्वाथस्य निर्माण विधौ समीक्ष्य।
संत्रस्यमाणान् गदिनो दयालुः।
आदाय सारं प्रगुणं नवीनं।
रूपं विधायाश्वहरत् सुकष्टम्॥ ४॥

यः साम्येन हि वीक्षते शिशु युवा वृद्धाञ्जनानातुरान्।
वित्तोन्मादभृतो धनेन रहितान् हिन्दून् तथा यावनान्॥
यत्पार्श्वे न हि विद्यते न हि रवः कस्याप्युपस्थायिनः।
प्रेमोक्ति प्रवणः परं विजयते गंगासहायः सुधीः॥ ५॥

यमार्त्त संरक्षण दत्त जीवनं।
विलोक्य धन्वन्तरि रेति नेत्रयोः॥
पुरः स्फुरद्वैध गुणैर्मनोरमं।
गंगासहायं श्रयतां कुतो गदाः॥ ६॥

विचक्षणस्यास्य समेक्षणाद् ध्रुवम्।
सदातुराणामुपयान्ति निर्वृतीं॥

क्षणे क्षणे यो हि विलक्षणौषधं ।
गंगासहायो रचयन्विराजते ॥ ७ ॥

निर्माता—
साहित्यायुर्वेदाचार्यो रामेश्वरप्रसाद शास्त्रि
प्राप्त स्वर्ण पदकः
प्रधानाचार्यः—श्री रामानुज संस्कृत महाविद्यालय
डीडवाना (राजस्थान)

× × × ×

श्री युर्वॉगड़ वंशधन्यमगनीरामाख्य गुप्तेन च ।
श्री मद्रामकुमार गुप्त धनिना श्रेष्ठश्चिकित्सालयः ॥
प्रीत्यै श्रीयुत वेंकटेश्वर विभोर्यो ह्यत्र संस्थापितः ।
शास्त्री तस्य भिषङ्मणिर्विजयते गंगासहायः सुधीः ॥ १ ॥

यद्वासो डीडवानाभिद्य नगरवरे धन्वदेश प्रधाने ।
यत्ख्यातिर्लोकमध्ये दिशि विदिशि जने सद्गुणैः सर्वमान्या ॥
प्राणाचार्य्यो गरीयाञ्जगदुपकृतिकृद्यश्च पीयूषपाणिः ।
शास्त्री गंगासहायो भुवि सितित यथा राजतां राजभूमौ ॥ २ ॥

योऽसौ व्याप्तः समन्तादविकल निगमैर्वर्णितोऽव्यक्तरूपो ।
व्यख्यातश्चेश्वरो यो ह्यगुणगुण युतः सर्व शक्तित्व शाली ॥
भक्तानामुद्दिधीपुर्हृदयगत इति प्रार्थये तं महेशं ।
शास्त्री गंगासहायः सकल सुखवृतो नन्दताद्दीर्घदिष्टम ॥ ३ ॥

शिवकुमार शास्त्री
अध्यक्ष—सुदर्शन संस्कृत कालेज, कामठी
Kamthee, C. P.

× × × ×

पं० श्री गंगासहायजी शर्मा



आयुर्वेदिक औषधियों को नवीन रूप देने के लिये सफल परिश्रम में संलग्न।

पं० श्री गङ्गासहायजी शर्मा



औषधि चयन करते हुए।

अशेष जन्तु जात सन्ताप ज्वरातिसार ग्रहण्यर्शो मन्दाग्नि राजयक्ष्मादि निखिलामयमहामत्तेभ विदारणैक केशरिणाम्, सकलभिषङ्-मण्डल मौलिमाला समभ्यर्चित चरणकमल श्री प्रभासित सित यशोमनो-हराणाम्, रुग्जालजीर्ण कलेवर मानव महाव्याधि विमोचन दिव्य रसौषध सम्पादन धन्वन्तरीणाम्, डीडवानास्थ श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय प्रधान चिकित्सकानाम्, पीयूषपाणिनाम्, श्रीमतां श्री "गंगासहाय जी" वैद्य प्रवराणाम्।

उद्यन्मानव देह गेह रसिकान् धर्मार्थ कामद्विषो।
दैन्याक्रन्दन नन्दना न सुभुजो रोगान शेषानिह॥
यो धन्वन्तरिवत् क्षणेन हरते सिद्धौषधैः स्वार्जितैः।
सोऽयं वैद्य शिरोमणिर्विजयते गंगासहायः सुधीः॥ १॥
प्रान्ते योधपुरे पुराण नगरे श्री डीडवाना स्थिते।
आयुर्वेद महौषधालयवरे श्री वेंकटेशाभिधे॥
प्राधान्येन चिकित्सितं रचयतां लोकेऽधुना श्रीमतां।
दिव्या कीर्ति तरङ्गिणी जनमनस्तापं समाकर्षति॥ २॥
कामं सन्ति चिकित्सकाः क्षितितलेऽलंकार भूताः सताम्।
ते सर्वे भवतां न यान्ति समतामस्मिंश्चिकित्सा विधौ॥
यस्मादद्य भवन्त एवमहितायुर्वेद शैल्या सह।
पाश्चात्यामथ यावनीमपिचिकित्सारुत्सुरातन्वते॥ ३॥
कठिनरोग महाग्रह पीड़िता, इतर वैद्य जनैर्विमुखी कृताः।
उपगताः शरणं व्यथिताः सता, सभविता भवता भुवनेऽमिताः॥ ४॥
रससिद्धभिषग् धुर्या? माधुर्य भरिताशया?
प्रशस्ति पत्रं भवताम् प्रेमतो निर्मितं मया॥ ५॥

समर्पयिताः—
पं० विश्वनाथ जोशी साहित्यायुर्वेद
व्याकरणाचार्य साहित्यरत्नम्
लक्ष्मणदुर्गस्थ—श्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम
संस्कृत महाविद्यालये—साहित्यायुर्वेदाध्यापकः।

श्री सरस्वती माया शारदा, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सूर्य चन्द्र पवन अगिन व चित्रगुप्त गणेश ॥ १ ॥
　　शुभकारी सब देवता, आनन्द देय हमेश।
　　सद्गुण पंडित गंग के प्रकट करे अंवेश ॥ २ ॥

यथा नाम तथा गुण, है गुण गंग समान।
पंडित गंगासहाय को, जानत राजस्थान ॥ ३ ॥
　　अवतारी थो देवता, धनवंत वेद बखान।
　　दूजो राय सुखेन थो, तीजो थो लुकमान ॥ ४ ॥

चौथो प्रगट हो गयो, प्रतच्छ लेवो देख।
वेदों में सरताज है, गंगासहाय है एक ॥ ५ ॥
　　स्वारथ के सभी सगे, बिन स्वारथ कुँ देख।
　　प्रतच्छ देखो आँख सुँ गंगासहाय है नेक ॥ ६ ॥

पर उपकारी गंगासहाय, पड़त पराई पीड़।
पैदल जावे देखवा तुरन्त होय हमगीर ॥ ७ ॥
　　गरूर घमण्ड है नहीं, उम्र वर्ष में साठ।
　　चाले चाल उतावली टावर दोड़े नाट ॥ ८ ॥

फेरि फिरत है शहर में, सुबे साम हर रोज।
बिना फीस करे चाकरी, मानिन्द राजा भोज ॥ ९ ॥
　　देखत नाड़ ताड़ ले, फौरन काडे सार।
　　दवा देवत असर करे, जूँ बिजली को तार ॥१०॥

तबीयत नेक तबीब है गंगानीर प्रवान।
आया को आदर करे, बोले नेक जबान ॥११॥
　　सद्गुण सब एकट किया, पढ़ कर वेद पुरान।
　　हाफिज आयुर्वेद को जाने सकल जहाँन ॥१२॥

लोभ लालच रखे नहीं धर्म थको लेवार।
सेवा करत है देश की करे कार उपकार ॥१३॥

रोगी आवे रोवता मुलक मुलक से रोज।
वापिस जावे खेलता आनन्द मंगल मोज ॥१४॥

ओदायत जोधांणा रे जब होवे कमजोर।
ताकत चावे ताजगी आवे फौरन दौड़ ॥१५॥

देसी दवाई अंत घणी भरा कुंभ कोठार।
खरचो मासिक एक को मुवलिग पाँच हजार ॥१६॥

दवाई ताकत कीमती सोना चाँदी खाक।
वकत जरूरत देत है आब हयात जुलाब ॥१७॥

गुड़ लगे ना फिटकड़ी कोडी लागे न दाम।
विन पैसे देसी दवा लेवे देश तमाम ॥१८॥

दान पुण्य मगनेस को चलू रहत दिन रात।
दवादान सब के सिरे लेय छतीसूँ जात ॥१९॥

बाँगड भंडार कुंभसो रहत दवा भरपूर।
धर्मध्वजा बनी रहे बुलन्द सितारा नूर ॥२०॥

चशम दीख सब बात है नजरां लीनी देख।
जी चाहो सो परखलो इसमें मीन न मेख ॥ २१॥

माथुर अलसीसोल्या मना जीत कुल जान।
आनन्द सुन अम्बेश है वतन शहर जोधान ॥२२॥

पैरोकार मुकद्दमात देत काम इनजाम।
अष्ट साल डिडवाण में कियो कोर्ट में काम ॥२३॥

शुभचिन्तकः–
माथुर अम्बादास राय



श्री वैंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय का संक्षिप्त विवरण और निरीक्षण सम्मतियाँ





प्रमुख औद्योगिक संस्थाओं के संस्थापक, धर्मप्रेमी, दानवीर
आदरणीय श्रीमान् बाबू गोविन्दलालजी बांगड़

धर्मप्राण सेठ श्री मगनीरामजी रामकुमारजी बाँगड़ द्वारा स्थापित श्री वैंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय डीडवाना का संक्षिप्त परिचय

उक्त चिकित्सालय सम्वत् १९७४ के कार्तिक मास में स्थानीय-एवम् प्रान्तीय आवश्यकता तथा प्राचीनतम आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से डीडवाना निवासी माहेश्वरी कुल भूषण श्रीमान सेठ श्री मगनीरामजी रामकुमारजी बांगड़ द्वारा अति संक्षिप्त रूप में स्थापित किया गया था।

औषधालय का उद्घाटन जगाधरी निवासी श्रद्धेय वैं० रा० श्री पं० सन्तलालजी द्वारा किया गया।

औषधालय का कार्यभार इन्हीं वै० रा० श्री पं० गंगासहायजी शर्मा शास्त्री के अधिकार में दिया गया।

फलतः श्री सेठ साहब की दानशीलता और वैद्य श्री गंगासहाय जी की सफल चिकित्सा और तत्परता ने मिल कर सोना और सुगन्ध की कहावत को चरितार्थ किया।

गत ३९-४० वर्ष के समय में इस औषधालय ने उत्तरोत्तर जो उन्नति और जनता जनार्दन की सेवा की—वह वास्तव में गर्व का विषय है।

राजपूताना और इसके अतिरिक्त आसाम, बंगाल, बिहार, सिन्ध, यू० पी० आदि दूरस्थ स्थानों से आये हुवे कष्ट साध्य रोगी अधिक संख्या में आते और आरोग्यता प्राप्त कर सुखी हो जाते हैं।

औषधालय का निजी विशाल भवन, और रुग्ण जनों की अत्यधिक संख्या इसकी सफलता को सूचित करने के लिये पर्याप्त है।

औषधालय प्रतिदिन प्रातः ४ घण्टा सायम् ३ घण्टा नियमित खुला रहता है, इसके अतिरिक्त समय के लिये १ वैद्य और कम्पौण्डर की व्यवस्था की हुई है। निम्नलिखित २१ कार्य कर्ता हैं—

१	प्रधान चिकित्सक	४	उपवैद्य कम्पोण्डर	६	औषधि निर्माण में
१	सहायक वैद्य	१	व्रणोपचारक	१	द्वारपाल
१	औषधि निर्माता वैद्य	१	स्त्री निरीक्षिका	३	अन्यान्य कार्यों पर
१	प्रबन्ध कर्त्ता	१	भस्म निर्माता		

कार्यकर्त्ता

१. प्रधान चिकित्सक— प्राणाचार्य श्री गङ्गासहाय जी शर्मा शास्त्री।
२. द्वीतीय चिकित्सक—वैद्य श्यामसुन्दर शर्मा आयुर्वेदाचार्य।
३. परीक्षक— वैद्य ब्रह्मेन्द्र कुमार शर्मा आयुर्वेदाचार्य वेचलर ओफ मेडिसन एण्ड सर्जरी।
४. स्त्री निरीक्षिका— वैद्या तारावती गौड़ आयुर्वेद भिषक्।
५. औषध निर्माण— वैद्य रामेश्वर प्रसाद शर्मा आयुर्वेदाचार्य।
६. प्रधान कम्पाउन्डर—वैद्य राधावल्लभ शर्मा वैद्य विशारद।
७. वितरण शाला— वैद्य रामजीवन शर्मा भिषक्।
८. कम्पाउन्डर— वैद्य वजरङ्गसिंह वैद्य विशारद।
९. व्रणोपचारालय— वैद्य वन्शीलाल वैद्य विशारद।
१०. स्टोर कीपर— वैद्य मांगीलाल शर्मा विशारद।
११. अन्य कार्य— सत्यनारायण शर्मा शास्त्री।
१२. रसायन शाला— मांगीलाल पन्डा।
१३. कार्यकर्त्ता— वन्शीलाल गौड़।
१४. ,, प्रभुलाल शर्मा।
१५. ,, पूषाराम जाट।
१६. ,, माणकचन्द साहू।
१७. ,, धन्नराज सेवक।
१८. ,, सुखा गूजर।
१९. ,, नरसिंहलाल
२०. द्वारपाल— उम्मेदसिंह।
२१. भँवरलाल खटका।





देश की अनेक औद्योगिक संस्थाओं के निर्माता एवं संचालक
तथा बांगड परिवार के प्रकाशमान रत्न आदरणीय
श्रीमान् राय गोकुलचन्दजी बांगड



बहुसंख्यक और औद्योगिक संस्थाओं के संचालक एवं उन्नत विचार
तथा विशाल हृदय वाले श्रीयुत् बाबू नरसिंहदासजी बांगड़

श्री वैङ्कटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय का विवरण

विविध प्रकार के परीक्षण यन्त्रों के साथ १ योग्य परीक्षक और स्त्रियों की विशेष सुविधा के लिये सुयोग्य महिला की व्यवस्था की हुई है।

औषधालय का निजी विशाल भवन ७० हजार से ऊपर की लागत से बना है और उसको १२ भागों में विभक्त किया हुआ है।

१	व्यवस्थालय	७	सिद्धौषधशाला	आरोग्यशाला में आवश्यक साधनों
२	निरीक्षणालय	८	रसायनशाला	के साथ २४ बिस्तरों की व्यवस्था
३	गुह्यनिरीक्षणालय	९	आरोग्यशाला	है इसके सिवाय २५ रोगियों के
४	व्रणोपचारालय	१०	पाकशाला	लिये दूसरा स्थान भी नियत किया
५	वनौषधशाला	११	संग्रहालय	हुआ है जो सदा ही दूर २ से आये
६	औषध वितरणशाला	१२	अनुसन्धानशाला	परिवारों से भरा रहता है।

औषधालय के प्रत्येक विभाग की आदर्श स्वच्छता को देख कर प्रत्येक दर्शकों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

औषधालय की सुचारुता व्यवस्था तथा विज्ञान व प्रशस्त चिकित्सा प्रणाली की प्रशंसा न केवल जनसाधारण अपितु ऊँचे से ऊँचे पदाधिकारियों एवं राजा महाराजाओं ने भी ऊँचे शब्दों में लिखित रूप से की है।

सर्वत्र इसकी ख्याति है मान है और आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

सन् १९३४ से सन् १९५४ तक की वार्षिक रुग्ण संख्या

सन् १९३४ में	६६६६३	सन् १९४१ में	१९०७३६	सन् १९४८ में	१८०२[illegible]
३५ ,,	६६३३९	४२ ,,	१२७५५७	४९ ,,	१४४७०१
३६ ,,	७१४३२	४३ ,,	१२८३५०	५० ,,	१०२४६०
३७ ,,	८६७५२	४४ ,,	१३५५५३	५१ ,,	११०३६०
३८ ,,	७७०४७	४५ ,,	१२२६७१	५२ ,,	११२१८८
३९ ,,	७९३५२	४६ ,,	१२१०११	५३ ,,	१४०२८०
४० ,,	९८९२०	४७ ,,	११६५७६	५४ ,,	१४४२[illegible]

नोटः—आरोग्य शाला में प्रविष्ट हुवे रुग्णजनों (इन डोर) की संख्या इससे पृथक है।

इस औषधालय की संरक्षता में एक निःशुल्क शिक्षा विभाग भी अपनी सेवायें सर्व साधारण के लिये प्रस्तुत कर रहा है।

उक्त विभाग से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर तथा विविध प्रकार से क्रियात्मक अनुभव प्राप्त कर अनेक छात्र विभिन्न स्थानों में पूर्ण सफलता के साथ चिकित्सा कार्य कर रहे हैं।

श्री वैङ्कटेश औषधालय के लिए उच्चाधिकारीवर्ग की सम्मतियाँ

I visited the Ayurvedic dispensary on the invitation of its Pandit Ganga Sahai Sharma. No praise would be too high for the condition in which it is kept and on which records of patients are entered the dispensary was spotless and the registeres most complete.

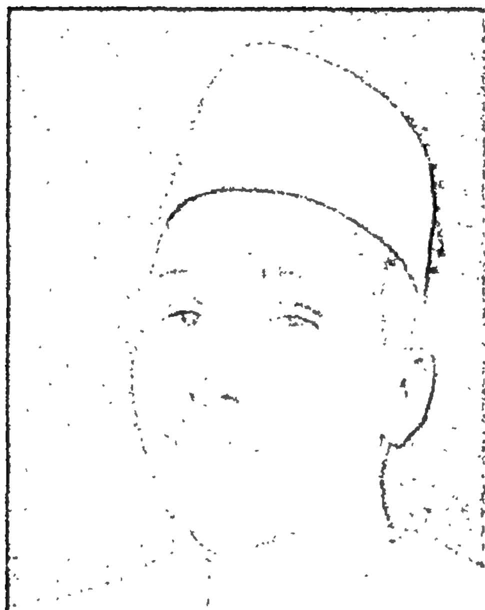
It afforded me much pleasure to consult with the Pandit over several of his cases, and I was greatly impressed by the breadth of his outlook and his successful treatment of his cases. The medicines are dispensed free and are seen in larger number alround the dispensary.

I find compelled to add that I think it would be a great benefit to the State if a Hakeem of this type could be officially recognised. as I am convinced that he does send surgical cases which he cannot treat to the State dispensary for treatment there.

Sd/-

Dated 1-1-1930 Principal Medical Officer
Jodhpur State.

× × × ×



श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदासजी बांगड़

आप दानमूर्त्ति, उदारमना वैकुण्ठवासी श्री नारायणदास जी बांगड़ के सुयोग्य पुत्र एवं एक कर्त्तव्यशील, सुशील और उन्नत विचारवाले युवक रत्न हैं।

I am very pleased to see that Seth Magni Ramji Bangar has established this Ayurvedic Dispensary in his native place From accounts I have had I find that the Vaidya is popular, energetic and keen. The Aushadhalaya fulfills a great need and is specially welcome to the poor people. I am struck by the cleanliness and orderliness of the place.

Sd/- H. Singh
Dated 10-2-1930 Revenue Member
State Council.

× × × ×

I have again visited this Ayurvedic dispensary and besides the Hakeem had the pleasure of meeting Seth Magni Ram Ram Kunwar the very munificient source of the Aushadhalaya for running the whole show-in patients and out-patients. As regards the dispensary I could only repeat what I wrote a year ago, and will merely state that the standard is still as good as it was.

Dated 29-12-1930 Sd - P. M O. Jodhpur State

× × × ×

A charitable institution established by a charitably dispensed & generous Seth (Magni Ramji) and run by a kind hearted Vaidya Pandit Ganga Sahaiji, where the whole work is so nobly carried on.

Dated 1-5-1931 Sd/-Onkar Singh Rao Bahadur
Civil Surgeon Jodhpur

× × × ×

The Judicial Member and I visited the interesting institution this morning. Nearly 100 patients have been treated today upto 4 P. M. The dispensary is evidently good work for

which the Sethji and Vaidya Ganga Sahai are to be congratulated. I understand that the annual expenditure is about 8000.

Dated 27-9-1931 Sd/- Maharaj Singi F.P.

× × × ×

On another visit to Didwana, I was as usual met with Panditji which afforded me the usual great pleasure. I need only say that he keeps his standard up and is still working in well over surgical cases with my department. It is always a pleasure to see him and his contented patients. While his is here a large number of patients are always certain to come here in prefrence to the official state dispensary and I feel that they will always receive very complete attention and treatment.

Sd/- EW. Hayward.
Dated 16-12-1931 Principal Medical Officer.
Jodhpur State

× × × ×

I had great pleasure in meeting Pandit Ganga Sahai Vaid here this morning.

The present Hakeem, Mr. Kishan Puri, speaks very highly of his good & efficient work. Free treatment is dispensed to about 100 out-door patients daily on average.

I regret owing to want of time I could not visit his dispensary. But from what I have seen and heard of the Panditji I feel convinced that is rendeing a great medical aid not only to the people of this place, but of the adjoining and distant places.

Panditji & Seth Magni Ramji who finances the dispensary both deserve to be congratulated for the noble work that is being done in the dispensary.

वनौषध सदन स्थित कतिपय सहायक वैद्य



बाँई ओर से:—वैद्य श्यामसुन्दर शर्मा भिषगाचार्य, वैद्य कृष्णदत्त शर्मा भिषगाचार्य, वैद्य रामेश्वर शर्मा भिषगाचार्य व अन्य शिक्षार्थी।



श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय भवन [illegible] (राजस्थान)

I agree with Dr. Hayward P. M. O. Raj. Marwar that an able kind like Panditji fully deserves official recognition.

Sd/- Topan Ram.
Chief Judge.
Jodhpur.

Didwana.
28-12-1932

× × × ×

I visited the Ayurvedic Aushadhalaya, maintained by Seth Magni Ram ji Bangur, this evening and was shown round by its able Vaidya Pt. Ganga Sahai. The bullding in which the institution is housed, has cost a lot and the arrangements for supply of medicines are excellent. Aushadhalaya is deservedly very popular and has actually thrown the state dispensary into the shade —Luckily, there is no unhealthy competion between the two institutions. Pt, Gangasahai possess public confidence in ample measure and his reputation is an eminent and sound practitioner of the indigenous system induces people from all parts of Marwar and even from Gujerat and other places to come to Didwana for treatment. Both the Seth Sahib and the Vaidya deserve the warmest thanks of the State and the public I wish philanthropic gentlemen in other towns of Marwar may emulate the example of Seth Magni Ram ji in this respect

Camp-Didwana.
26-7-1933.

H. Sing

× × × ×

I paid a visit to Seth Magniramji's Ayurvedic Dispensary today at 12-30 P. M. The building is a commodious one and has provision for indoor patients, pharmacy, store for medicines and dispensary rooms. The average attendence of out-door patients is about 200 patients. Today's attendence being [illegible]

At present there are some 23 indoor patients, all of them come from distant places which shows the popularity and the ability of Pandit Ganga Sahai who serves the dispensary. The public has great confidence in the Vaidya and his treatment. Seth Magni Ramji has done a great public service in providing such good building for the dispensary and financing it adequetly.

Sd/- Topan Ram
Chief Judge
Jodhpur State.

Camp-Didwana
29-12-1933

× × × ×

I paid a visit to Seth Magniram's hospital and found the place very clean and arrangements perfect. This institution is seen by a kind hearted Vaidya Pandit Ganga Sahaiji who is responsible for its well popularity all over Northern India. I was greatly impressed by the progress made by certain patients under his treatment when they had been given up as hopeless cases by some best known physicians of Calcutta and Bombay.

Sd/- Baijnath
A. D. Officer, N. W. Rly.

Dated23-1-1934

× × × ×

It gave me great pleasure to visit this Aushdhalaya founded and maintained by Seth Magniramji of Didwana. I think I am not wrong in saying that it is the best Ayurvedic institution throughout the State in all respects viz (1) the large number of people who receive medicines free (2) the ability and popularity of Pt. Ganga Sahaiji, the gentleman in charge of the institution whose experience and skilful treatment attract patients from far off places (3) the large stock of medicines kept (4) the spirit of benavolence of the founder and the manager

which pervades this institution. (5) The various facilities given to indoor patients.

I heartily congratulate Sethji and Pt. Ganga Sahaiji on the very good work which this institution is doing and wish it a long career of usefulness.

Sd-
Judge Chief Court
Jodhpur.

Camp-Didwana
19-8-1935

× × × ×

I endorse the views of the above-mentioned gentleman after a personal observation of the working of the Chikitsalaya during my week's stay at Didwana. I heartily congratulate Pt. Sahib Ganga Sahaiji and his patron Seth Magniramji Bangar.

M. L. Mathur
Jodhpur

× × × ×

Before leaving Didwana after inspecting the Court of the Hakeem, I have been very pleased to visit the Vedic hospital and dispensary. I have seen a similar institution at Lahore and am therefore well able to say that this dispensary is run on very good lines and is a boon to the people of this place. It also reflects great credit upon Seth Magni Ram, to whose munificience it owes its existence. The entire place is kept very clean and I am thorougly satisfied with all that I said. The management is in the hands of Pandit Ganga Sahai who is reputed to be a very learned Vaid.

Sd/- Nawal Kishore
Chief Judge.

9-12-1936

× × × ×

मैंने आज डीडवाना में श्री वेंकटेश चिकित्सालय का निरीक्षण किया और उसके तमाम विभाग याने रसायनशाला, धनौषधसदन, सिद्धौषधशाला इत्यादि का भी निरीक्षण किया। मुझे बहुत संतोष है कि मारवाड़ में एक सुव्यवस्थित इस तरह का औषधालय है जिसमें न केवल हर प्रकार के रोगियों के इलाज ही सुचारु रूप से होते हैं बल्कि दवाइयें यहीं पर खुद पंडितजी की देख रेख में तैयार भी होती हैं ऐसे औषधालय की मारवाड़ के हर इलाके में ही नहीं बल्कि राजस्थान के हर प्रान्त में अत्यन्त आवश्यकता है, मैं चाहता हूँ कि हमारे यहां के वैद्य पंडितजी की भांति काबिल व सुयोग्य बनें और उनसे सीख कर उनके पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए दुखी रोगियों की सेवा करने में काबलियत हासिल करें। हर इन्सान का यह फर्ज है कि वह ऐसे चिकित्सालय की पूरी पूरी मदद करें।

द्वारकादास
अर्थ मन्त्री

२-८-१९४८

× × × ×

I visited the Shree Venkatesh Ayurvedic Hospital Didwana, founded and financed by Didwana's noble son Seth Sahib Magniramji Bangar, & run by Vaidya Pt. Gangasahaiji Sharma to whom goes the credit of its popularity. There is still a large majority of outdoor people among the Brahmin and the Vaishya communities, specially in this province, whose religious seruples dont allow them to use unfamiliar medicines. For such, specially, a well organised indigenous system of the treatment of disease is a blank, which is filled in, meets a real necessity, This is a exactly what the philanthropic Seth Sahib had in view when he founded this useful institution, for which he deserves every credit & all possible gratitude from the suffering public. There is ample justification for the expenditure the place is well kept and there is evidence of system in its various departments. As usual, there is always

औषधि वितरण स्थान

रसायन शाला

room for improvement, and in accordance with this some suggestions have been made.

Sd/- Jwala Prasad
B. A. M. B.
Resident Medical Officer.
Mayo Hospital. Jaipur.

Didwana,
21-1-37.

× × × ×

I paid a visit to Seth Magniram's Ayurvedic hospital today. I was much impressed, firstly by the generosity of this institution's public spirited founder and maintaincs. secondly by the apparent cleanliness and efficiency of the arrangements and thirdly. by the great popularity of the hospital

I am ignorent in such matters, but it is evident that here. as in other places in Rajputana. the Ayurvedic system of medicine has many votaries. It would seem to be deserving therefore of some support from the State Government. I have suggested therefore that this should be applied for through our P. M. O. who has paid more than one tribute of generious praise in the preceding pages of this book.

D. M. Field
Chief Minister- Jodhpur State

Didwana,
12th August, 1937

× × × ×

I paid a flying visit to Seth Maganiramji's Ayurvedic Hospital this evening. I wish I had more time to go into further details of this institution. In the foregoing pages it has been sufficiently praised and calls for no further repitition. It is however a clear proof, if such were needed, that the Ayurvedic treatment can more than hold its own against any other system and that the people prefer it to other treatment as the figures

clearly show. This is as much due to the system as to the personality wisdom and knowledge of Pt. Ganga Sahai Sharma who rans it. All concerned owe a debt of gratitude to him and to the benificient owner without whose philanthropy this wonderful attempt to revive a past dying system of medicine would never have materialised.

Sd/- Madhosingh
Didwana, 11th Jan. 1935. Home Minister, Jodhpur.

× × × ×

I visited the Venktesh Aushdhalaya this morning and was shown round the place by the Vaidraj Ganga Sahai. The equipment of the manner in which this dispensary is run, are most praiseworthy. Praise is also due to the querosity of Seth Magniramji who is solely running the great institution for the good of humanity.

Sd/- Ajitsing Maharaj
Councillor to H.H, the Maharaja Sahib
Bahadur

× × × ×

I visited the Venkatesh Ayurvedic Chikitsalaya on the 18th Sept., 1948 during my inspection tour to Didwana and Ladnun etc. I was taken round the hospital ahd shown its working. I was much impressed with the huge amount of medicines and other costly 'Bhasmies' available in the hospital for free distribution to the patients. The credit for all this goes to Seth Magni Ramji Bangar who has been maintainingth is Aushadhalaya since its inception. Dut to the good medicines available here and the quick and satisfactory treatment given by the Aushadhalaya, it has earned a name of its own and has attracted

patients 'both poor and rich' from all parts of Marwar for treatment. I wish this Aushadhalaya will make further progress in its field and enhance the reputation of the Ayurvedic system of treatment in the country. It is the neglect on the part of the people of India that this system of medicine has suffered a lot so far, but the cooperation of this philanthropisits like Shri Bangar are available to government in going further deep into this branch of medicine, I do not understand why it should not have an equal place with the Western system of treatment in the world. Due to the cheapness of its treatment and quick relief given to the patients, I have every hope that in the very near future, this system will carve out its own destiny and raise its head over others and enjoy an eviable position in the medical world.

Sd/- Mathuradass
Shiksha Mantiri, Government
of Jodhpur.

Didwana.
18-9-1948.

× × × ×

I visited Vanktesh Aushdhalaya of Seth Magni Ram Ram Kumar Bangar in the course of my tour. It was shown round to me by Pt. Ganga Sahaiji who is a founder Vaidya of this Aushdhalaya. He comes from U. P. from Amroha, which is a famous place for Vaidyas. Pt. Ganga Sahaiji has organised this hospital on modern lines and deserves recognision from the Government.

I have visited practically the whole of Rajasthan and can authoritatively say that this is one of the best hospitals of Ayurveda.

Patients treated during the year 1949 is 105579. This is the record number of patients. I have come accross in any

Ayurvedic hospital I congratulate Panditji for his marvallous success.

He has also started a pharmacy by the name of Upper India Chemical Pharmacy which is doing excellent work. I have seen more than half a dozen samples of various medicinal preparations and have found the packing and get up very neat and fine. Prescriptions of these medicines are excellent. some of the potent prescriptions compare very favourably wirh the most of the foreign pharmeceautical preparations. I would recommend to the public and the profession to utilize that preparations and take the advantage of Panditji's ripe knowledge.

I wish Panditji every success in his future career.

Sd/- V. Pratap
Director, Ayurvedic Department,
United State of Rajasthan,
Udaipur

× × × ×

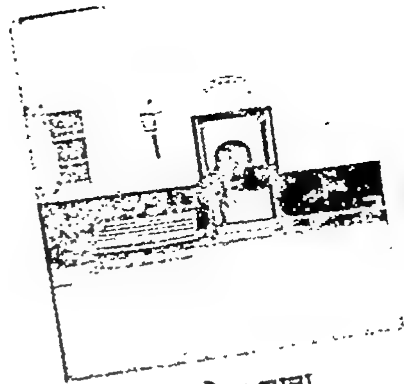
I visited Shri Venkatesh Ayurvedic Chikitsalaya today. I was very much impressed by the way it is rendering unique service to the people of the area. It is one of the faremost dispansaries I have come across in Rajasthan. Various kinds of Bhasmas, Asavas, Sailas, Rasas etc. are prepared here in the scientific manner. The number af patients doing attending the dispensary is very large. The Pharmacy is also very well maintained, This in my opinion deserves recognition as an institution for the training of Ayurvedic Acharya students. The Vaidyas in charge and the partons of this Dispensary are to be congratulated.

Sd/- K Madhava Kishnasingh,
Inspecter of Schools, (Sanskrit Pathshalas)
Rajasthan, Jaipur.





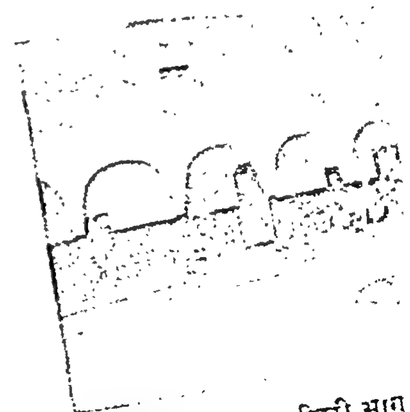
चिकित्सालय का औषधि वितरण स्थान।



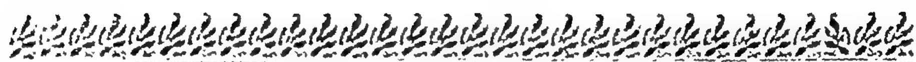
आरोग्य शाला



श्रीमती तारावती गौड़ भिषक, औषधालय की महिला निरीक्षिका।



आरोग्य शाला का भीतरी भाग



शुभाशीर्वाद, शुभ संदेश और शुभ कामनायें





सर्वतन्त्र स्वतन्त्र उत्तरअहोविल झालरिया मठाधीश पूज्य
स्वामीजी श्री १००८ श्री वीरराघवाचार्यजी महाराज
डीडवाना (राजस्थान)

उत्तर अहोबिल भालरिया पीठाधीश्वर जगद्गुरु १००८ श्री वीर राघवाचार्यजी महाराज का शुभाशीर्वाद

ये तु शास्त्रविदो दक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः ।
जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥

आयुर्वेद के महा विद्वान् भगवान् आत्रेय ने वैद्यों के दो स्वरूप अपने शिष्य अग्निवेश से कहे:—

द्विविधास्तु खलु भिषजो भवन्त्यग्निवेश
प्राणानामेकेऽभिसरा हन्तारो रोगाणाम् ॥
रोगाणामेकेऽभिसरा हन्तारः प्राणानामिति ॥

अर्थात्:—रोग दूर करते हुए जीवन शक्ति को बढ़ाने वाले वास्तविक वैद्य होते हैं और रोगों को बढ़ाते हुए जीवन शक्ति का ह्रास करने वाले "नीम हकीम खतरे जान" तो वैद्य के रूप में मृत्यु दूत ही होते हैं। सच्चे वैद्य का जो स्वभाव, योग्यता, स्वरूप होने चाहिये वे चरक संहिता के उपरिनिर्दिष्ट श्लोक में कहे गये हैं। हमारे वैद्य श्री गङ्गासहाय जी को जनता ने उसी रूप में पाया है। श्री वैद्य राज जी एक यशस्वी, परम उदार एवं पूर्ण अनुभवी चिकित्सक हैं। सब से बड़ी विशेषता तो आप में यह है कि कैसा भी दुःखी रोगी क्यों न हो—उसको बहुत कुछ शान्ति तो श्री वैद्यराज जी की मधुर वाणी एवं व्यवहार से ही प्राप्त हो जाती है। अन्य गुणों के साथ साथ जो अवश्य अपेक्षित गुण है वह यही है और यह आपमें प्रचुर मात्रा में है। राजस्थान एवं बाहर की भी हजारों जनता आपकी चिकित्सा से पूरा लाभ उठा रही है।

भगवान श्री जानकीवल्लभ जी से श्री वैद्यराज जी के चिरजीवन की कामना करते हुए हमारे राम उनके अभिनन्दन महोत्सव की पूर्ण सफलता चाहते हैं।

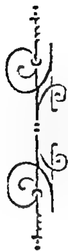
× × × ×

पूज्य योगि-राज वेद वाचस्पति म० म० महर्षि स्वामी माधवानन्द जी महाराज का शुभाशीर्वाद

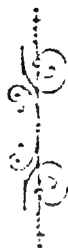


भारतीय वैद्यक विद्या, ऋषियों की परोपकार मूलक प्रवृति में इस देश में प्रसारित हुई। महर्षि चरक आदि जितने आयुर्वेद के प्रणेता इस देश में हुए, वे प्रायः सभी योगी थे। योगी की सिद्धियों में परकाय प्रवेश भी एक सिद्धि है जिसे आवश्यकता होने पर कार्यान्वित किया जाता है। जगद्गुरु आद्यशंकर चार्य का अमरुक राजा के शरीर में प्रवेश कर ज्ञातव्य प्रकरण जानकर मंडन मिश्र की स्त्री के साथ शास्त्रार्थ करना प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार परहित व्रती महर्षि चरक का अजा के शरीर में प्रवेश कर औषधियों के गुणावगुण जानकर पुनः स्वशरीर में आकर चरक आदि संहिता बनाना प्रसिद्ध है। इसका आशय यह हुआ कि वैद्यक विद्या परोपकार मूलक है। इसे पाकर जो लोग अपने जीवन में उसकी परोपकार मूलकता का विचार रखकर आचरण करते हैं, वे सफल होते हैं और जो आयुर्वेद की इस विशेषता से अनभिज्ञ रह कर केवल स्वार्थ साधन के विचार से इसमें प्रवृत्त होते हैं वे वैद्य इसमें कभी कृत कार्य नहीं हो सकते।

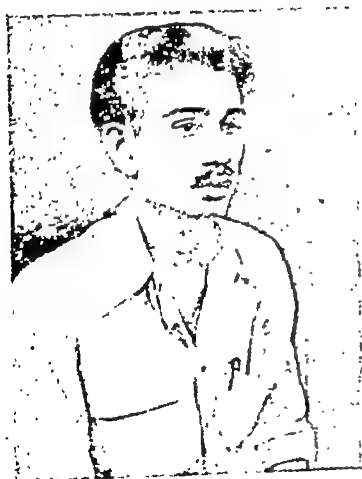
प्रसन्नता की बात है कि श्रीवेंकटेश आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय डीडवाना के प्राणाचार्य वैद्यराज श्री गंगासहायजी आयुर्वेद शास्त्री उपर्युक्त ऋषि प्रणीत आयुर्वेद के जनोपकार मूलक उद्देश्य को ध्यान में रखकर चिकित्सा क्षेत्र में कार्य करते रहे हैं। यही कारण है कि आज वे जनता द्वारा अभिनन्दित हो रहे हैं। मैं वैद्यजी को २० साल से जानता हूं। उन्होंने अपने निर्माण कौशल से आयुर्वेद के प्रति लोगों की श्रद्धा को, जब



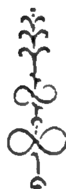


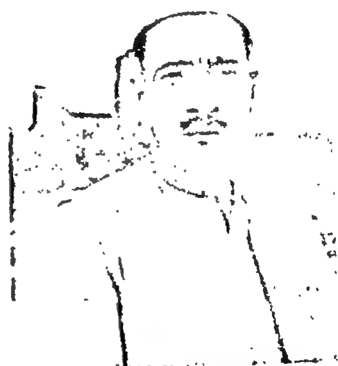


नागौरिया पीठाधिपति
पूज्य श्री १००८ श्री स्वामी बालमुकन्दाचार्यजी
महाराज, डीडवाना।



श्री प्रेमकुमार शर्मा आ. विशारद
मैनेजर
इण्डियन ड्रग लेबोरेटरी लिमिटेड
डीडवाना
सुपुत्र श्री पं० गंगासहायजी





श्री श्यामसुन्दर शर्मा आयुर्वेदाचार्य
सहायक चि० श्री वेंकटेश औषधालय
डीडवाना

कि लोग एलोपैथी की ओर देखते थे, बढ़ाया है। औषधनिर्माण में वैज्ञानिकता को स्थान देकर अव्यर्थ औषधियों की रचना द्वारा आयुर्वेद के विशाल भंडार को अधिक विशाल बनाया है।

उनके द्वारा अनेकों मानवों को स्वास्थ्य लाभ मिला है, इसलिए कृतज्ञता ज्ञापन की पवित्र भावना से उनका ससमारोह अभिनन्दन उचित ही है। यह सम्मान उनके निमित्त से आयुर्वेद का ही है।

मैं उन्हें इस शुभावसर पर हार्दिक आशीर्वाद प्रदान करता हूं, और जगन्नियन्ता जगदीश्वर से प्रार्थी हूँ कि वह उन्हें प्रेय तथा श्रेय दोनों का पात्र बनायें।

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तुनिरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत

× × × ×

नागोरिया पीठाधीश १००८ स्वामी श्री बालमुकुन्दाचार्यजी महाराज डीडवाना का शुभाशीर्वाद

न हि जीवित दानाद्धि दान मन्यद्विशिष्यते ॥

इस सूक्ति के अनुसार श्री गङ्गासहाय जी वैद्यराज को मैंने इस प्रान्त में कई असाध्य रोगियों को जीवन दान करते हुए पाया है, आप एक निःस्वार्थ सेवक, चरकोक्त "प्राणाभिसर" वैद्य के समस्त लक्षणों से युक्त, गरीब और अमीर के भेद से विमुक्त सर्वप्रिय चिकित्सक हैं। मुझे और मेरे सहयोगियों को इनकी चिकित्सा में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, कष्ट साध्य रोगों में भी आपकी चिकित्सा सफल हुई है। आपका वाङ्माधुर्य मुमूर्षु को भी जीवन-दान देने में सफल होता रहा है, यह प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु है। धन्वन्तरि कल्प वैद्य जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने में भेंट करने वाले और स्वयं ग्रन्थ की भी शोभा बढ़ जायेगी ऐसा मेरा विश्वास है।

श्री जानकीनाथ जी से इनके चिरजीवन की प्रार्थना करता हुआ मैं इनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

परम माननीय श्री अनन्तशयनम् आयंगर

[अध्यक्ष भारतीय लोक सभा (पार्लियामेन्ट) न्यूदेहली]

हम आयुर्वेद की शिफारिश इस लिये नहीं करते कि वह हमारा अपना है। आयुर्वेद की पूजा-प्रतिष्ठा का कारण उसका अपनी विशेषता-पूर्ण गौरव है। भारत के लोग सदा से गुण-पूजक रहे हैं, फिर चाहे गुण-पात्र कोई भी क्यों न हो।

इस देश के आयुर्वेदिक विद्वानों ने यह खयाल कभी न रखा कि उन्हें पैसा प्राप्त हो। उनका लक्ष्य जन सेवा ही रहा। इससे आयुर्वेद फला फूला। उसमें से जब त्याग की भावना निकल गई, वह गिरने लगा।

वैद्यों को चाहिये कि वे आयुर्वेद के उक्त आदर्श को कायम रखते हुए जनता की सेवा करें। ऐसा करके वे भौतिकता के इस जमाने में आयुर्वेद की ज्यादा सेवा कर सकेंगे।

मैं श्री गंगासहायजी वैद्य शास्त्री डीडवाना के अभिनन्दन समारोह की, जो मारवाड़ की जनता द्वारा डीडवाना में किया जा रहा है, सफलता चाहता हूं।

× × × ×

माननीय श्री राज बहादुर महोदय

[मिनिस्टर—भारतीय डाक और तार विभाग]

जिन वैद्यों ने भारत वर्ष की पुरातन तम आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को अन्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रखने का यश व पुण्य प्राप्त किया है, वे जनता द्वारा अभिनन्दन पाने के अधिकारी हैं। वैद्य गंगासहाय जी शास्त्री ऐसे ही वैद्यों में से एक हैं।

आयुर्वेद को पाँचवा वेद कहा गया है, उसकी रक्षा करना वैसा ही आवश्यक है, जैसा कि वेदों की रक्षा करना जरूरी समझा गया है। मुसलमानों ने भी आयुर्वेद को ही 'यूनानी चिकित्सा' नाम देकर देशी चिकित्सा पद्धति की ही रक्षा की।

देश के स्वतन्त्र होने के बाद आयुर्वेद के क्षेत्र में आने वाली बाधाओं को अब अवश्य ही दूर होना चाहिए, भारत के आत्मा-स्वरूप गाँवों की जनता अब भी इसी चिकित्सा पद्धति को अपना कर सुन्दर स्वास्थ्य की शिक्षा देती है। हमें भी आयुर्वेद की रक्षा वृद्धि और समृद्धि का प्रयत्न पहिले से भी अधिक उत्साह से व्यापक रूप में करना चाहिए। आयुर्वेदिक क्षेत्र के विशेषज्ञ विद्वान इस प्रयत्न में संलग्न हैं। उनके प्रयत्नों की विशेष सराहना की जानी चाहिए।

मुझे प्रसन्नता है कि मारवाड़ की जनता प्राणाचार्य वैद्य श्री गंगासहाय जी आयुर्वेद शास्त्री का डीडवाना में सम्मिलित होकर सार्वजनिक स्वागत व अभिनन्दन करने जारही है। मैं इस समारोह की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय श्री सत्यनारायण सिनहा
(मिनिस्टर फार पार्लियामेन्टरी अफेयर्स न्यू देहली)

हर्ष का विषय है कि भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद देश वासियों ने अपनी देशी चिकित्सा पद्धति की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। हमारी सरकारें भी देश वासियों की रुचि से अपरिचित नहीं हैं। कौन नहीं जानता कि प्रान्तीय सरकारों ने अपने जन स्वास्थ्य सम्वर्द्धन कार्यों में आयुर्वेद का प्रवेश, जो विदेशी सरकार की अभारतीय नीति के कारण बन्द हो गया था, खुला कर दिया है। भले ही उसकी गति धीमी हो, पर शासन का दृष्टिकोण आयुर्वेद के प्रति अवश्य बदल गया है, इसमें सन्देह नहीं।

जनता का कर्तव्य है कि वह उन वैद्यों के सम्मान व प्रतिष्ठा वर्द्धन के सत्कार्यों में सोत्साह भाग ले, जिनके द्वारा आयुर्वेद की विशेषता का परिचय मिलता है।

मुझे बताया गया है कि डीडवाना (राजस्थान) के प्राणाचार्य वैद्य गंगासहायजी शास्त्री ऐसे ही विशेषज्ञ वैद्य हैं, जिनके द्वारा आयुर्वेद की विशेषता स्थापित होती है। अतः उनका अभिनन्दन आयुर्वेद शास्त्र का ही सम्मान है। मैं इस मंगलमय उत्सव की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय श्री मेहरचन्द खन्ना

(रि-हेवलीटेशन मिनिस्टर)

आयुर्वेद के संस्थापक महर्षि चरक और सुश्रुत आदि ने आयुर्वेद को प्रसारित करने से पूर्व स्वयं अपने योग-बल से बकरियाँ आदि पशु बन कर औषधियों के गुणावगुणों को अनुभूत किया। उसके बाद जगत के उपकार के वास्ते उन औषधियों के बारे में लिखा। इसलिये आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति पूर्णतः परीक्षित, अनुभूत एवं वैज्ञानिक है। उसे जो लोग बिना समझे अनुपयोगी कहते हैं वे समझते नहीं हैं।

आज भारत में जनता की अपनी सरकार है, अतः देशी चिकित्सा-पद्धति को, फिर चाहे, वह आयुर्वेदिक हो, या युनानी, प्रोत्साहन देना चाहिये।

मैं प्राणाचार्य वैद्य गङ्गासहायजी के अभिनन्दन समारोह की, जो मारवाड़ की जनता द्वारा डीडवाना में समवेत होकर किया जाने वाला है, पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय श्री एच० वि० पाटसकर

(मिनिस्टर ऑफ लीगल अफेयर्स न्यू देहली)

भारतीय ऋषियों ने जितना ध्यान पारलौकिक उन्नति की ओर दिया, उतनाही बल्कि उससे भी अधिक इहलौकिक कल्याण की ओर दिया है। इहलौकिक उन्नति का मूल है—मानव शरीर। वह किन नियमों के साथ चलने से स्वस्थ रहे और यदि अस्वस्थ हो जावे तो कौन से औषधोपचारों से पुनः स्वस्थ हो, इत्यादि बातों के विचार विनिमय का नाम आयुर्वेद है, जिसकी खोज परोपकार व्रती भारतीय ऋषियों ने की थी। समय क्रम से आयुर्वेद की विशेषताओं को अपने क्रिया-कौशल से प्रकट करने वाले गवेषक विद्वानों का अभाव हो जाने से पिछले समय में उसकी प्रकाशक किरणें कुछ कुछ मन्द हो गई थीं किन्तु अब पुनः देश की स्वतंत्रता के साथ आयुर्वेदज्ञों में भी नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ है और नवप्रबुद्ध भारत के लोग यह समझने लगे हैं कि हमारी स्वल्प-व्यय-साध्य चिकित्सा प्रणाली ही भारतवर्ष के लिये सुलभ बन सकती है।

हर्ष का विषय है कि भारतीय और विशेषतः प्रान्तीय सरकारें इस दिशा में जागरूक बनकर कार्य करने की ओर प्रवृत्त हो रही हैं। ऐसे समय में आयुर्वेद की विशेषता को अपने क्रिया कौशल से प्रकट करने वाले विद्वानों का जनता द्वारा सम्मान होना भी आयुर्वेद के प्रचार में सहायक बन सकेगा।

मुझे हर्ष है कि मारवाड़ की जनता श्री गङ्गासहाय जी वैद्य शास्त्री का उनकी आयुर्वेदिक सेवाओं के उपलक्ष में अभिनन्दन कर रही हैं। मैं इस समारोह की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय श्री सी० सी० विश्वास

[मिनिस्टर औफ ला, भू० पू० प्रेसिडेन्ट स्टेट आयुर्वेदिक फेकेल्टी और कौंसिल बेंगाल]

राष्ट्रीय वस्तु वही हो सकती है, जिसे राष्ट्र के ज्यादा से ज्यादा लोग, मान्यता दें। इस दृष्टि से भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति कही जा सकती है। क्योंकि यही एक चिकित्सा पद्धति है, जो विदेशियों से प्रताड़ित, प्रपीड़ित होकर भी भारतीय जन-जीवन के क्षेत्र में अचल-अटल होकर खड़ी है।

प्रसन्नता की बात है कि प्रान्तीय सरकारें आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की विशेषता को अनुभूत करने लगी हैं, जिसके फल स्वरूप गांवों में यत्र तत्र सर्वत्र देशी दवाखाने खोले जा रहे हैं।

जिन वैद्यों में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की विज्ञान पूर्ण विशेषता दीख पड़े आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के लिये उन वैद्यों का सम्मान होना आवश्यक है। मैं मानता हूं कि मारवाड़ की जनता डीडवाना के विशिष्ट वैद्य गंगासहाय जी का अभिनन्दन कर उनके निमित से आयुर्वेद की अभिवृद्धि करने जा रही है। मैं इस समारोह की सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय श्री एन० वि० गाडगिल

[भूत पूर्व मिनिस्टर वर्कस हाउसिंह एण्ड सप्लाई]

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में वे सब विशेषतायें हैं, जो विज्ञान-सम्मत हैं, चतुर और विशेषज्ञ वैद्य उन उन विशेषताओं को प्रकट कर सकते हैं, अल्पज्ञ नहीं। वैद्य गंगासहाय जी शर्मा प्राणाचार्य डीडवाना (मारवाड़) में ऐसे ही वैद्यों में से एक हैं, जिन्होंने आयुर्वेद को नये ही तोर-तरीकों से जनता के सम्मुख रख कर उसे अपनी ओर आकर्षित किया है। गुण ग्राही मारवाड़ की जनता द्वारा पंडितजी का सार्व जनिक अभिनन्दन यही बताता है। यह समारोह, वैद्य जी के गुणों की पूजा है। इससे दूसरे योग्य वैद्यों को भी प्रोत्साहन मिलेगा। मैं इस अभिनन्दन समारोह की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय श्री जगजीवनराम

[मिनिस्टर ऑफ कम्युनिकेशन्स]

भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के वाद नव-निर्माण अथवा पुनः संस्थापन के जो कार्य हो रहे हैं उनमें आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रसार को भी यत्र तत्र स्थान दिया जा रहा है। किन्तु यह कार्य वैद्यों के-उन वैद्यों के जो इस क्षेत्र में चोटी के हैं, प्रयत्न की अपेक्षा रखता है।

आयुर्वेदिक विद्वानों को चाहिये कि उपयोगी साहित्य द्वारा जनता एवं अधिकारियों का ध्यान आयुर्वेद की व्यापकता, उपादेयता की ओर आकर्षित करे। जिस वस्तु में विशेषता है, वह यदि योग्य व्यक्ति के द्वारा प्रकट की जावे तो उसके सब लोग कायल होंगे, इसमें सन्देह नहीं। श्री गंगासहाय जी वैद्य शास्त्री एक विशेषज्ञ आयुर्वेदिक विद्वान हैं जिनका अभिनन्दन मारवाड़ की जनता डीडवाना में कर रही है। मैं उक्त समारोह की सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय श्री सी० निजलिंगप्पा

[भू० पू० अध्यक्ष कर्नाटक और मैसूर कांग्रेस कमेटी]

हमारा असली भारत गांवों में आबाद है और गाँवों की चिकित्सा में आयुर्वेद का बड़ा भाग है। इस दृष्टि से आयुर्वेदिक चिकित्सा राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली है। पाश्चात्य देश जिस चिकित्सा प्रणाली को अर्थ-साध्य बनाये हुए हैं, उसे भारतीय वैद्यों ने बहुत सस्ती और गुण में वैसी ही बल्कि उससे अधिक लाभकारी सिद्ध किया है। यही कारण है कि एलोपैथी के मुकाबले में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति अब तक टिकी हुई है।

मारवाड़ में वैद्य गंगासहाय जी ने जो आयुर्वेदिक सेवायें की हैं, उनके सम्मानार्थ वहां की जनता जो अभिनन्दन-समारोह मनाने जा रही है, मैं उसकी हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय सेठ गोविन्ददास

(सदस्य लोकसभा और प्रेसिडेन्ट महाकौशल कांग्रेस कमेटी)

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति हमारी अपनी चिकित्सा प्रणाली है, इसलिये हम उसका प्रसार चाहते हैं, यह बात नहीं है। उसके प्रसार में हमारा लक्ष उसके गुणों की पूजा से है। उसमें जो गुण तथा विशेषतायें हैं, उन्हीं के कारण वह भारतवर्ष में अब तक टिकी हुई है, वर्ना अँग्रेजों के शासन में कभी की समाप्त हो जाती।

भारतीय वैद्यों का साम्प्रतिक कर्तव्य यह है कि वे आयुर्वेद के परगामी पंडित बनकर उसकी वैज्ञानिकता को आधुनिक समाज के आगे पुरस्कृत करें। जिन प्राणाचार्य वैद्य गङ्गासहाय जी शर्मा शास्त्री का मारवाड़ की जनता डीडवाना में अभिनन्दन कर रही है, उन्हें चाहिये कि वे जिन आयुर्वेदिक खूबीयों से इतने आगे आये हैं, उन्हें अन्य वैद्यों के लिये प्रकट करें, जिससे कि दूसरे लोग भी लाभ उठा सकें। मैं वैद्यजी के अभिनन्दन-समारोह की सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

श्रीमान् आचार्य जे० बी० कृपलानी सदस्य लोकसभा

(संस्थापक प्रजा समाजवादी पार्टी)

आयुर्वेद की महत्ता इसी एक बात से प्रकट है कि उसे प्रकट करने के लिये जगदीश्वर को स्वयं अवतरित होना पड़ा। श्रीमद् भागवत के अष्टम स्कन्द के अनुसार आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि का अवतार २४ अवतारों में से एक है। उन्होंने ही प्रथम आयुर्वेद को अमृत कलश द्वारा प्रकट किया, जिसे भारतीय ऋषियों ने जनहित की पवित्र भावना में स्वयं धारण कर पुनः प्रसारित किया।

बहु काल तक जीने की इच्छा प्रत्येक मानव को होना स्वाभाविक है। पर जिन नियमों के पालन से मनुष्य शतजीवी बन सकता है, वे नियम आयुर्वेद में बताये गये हैं। इस लिये यह आयु यानी उम्र को बढ़ाने वाला वेद कहलाता है। किन्तु इसमें जो विशेषतायें अन्तर्निहित हैं, उन्हें प्रकट करने वाले विद्वान वैद्यों की आज बड़ी कमी है। जब तक यह पूरी न की जावेगी, तब तक आयुर्वेद की वांछित उन्नति कठिन है।

प्रसन्नता की बात है कि प्राणाचार्य वैद्य गङ्गासहायजी शर्मा वैद्य शास्त्री डीडवाना को उनकी आयुर्वेदिक सेवाओं के उपलक्ष में जनता द्वारा अभिनन्दित किया जा रहा है। यह आयुर्वेद का ही सम्मान है, मैं इस समारोह की हार्दिक सफलता चाहता हूं।

× × × ×

माननीय श्री शिवदत्त उपाध्याय एम. पी.

(भू० पू० प० सेक्रेटरी माननीय श्री नेहरूजी)

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति हमारे देश की वह प्रणाली है, जिसे ६० प्रसिशत भारतीय अपनाये हुए हैं अंग्रेजों की शासन सत्ता पाकर भी इस देश में विलायती चिकित्सा परम्परा इस लिए न फैल सकी कि वह भारतवर्ष के उतनी अनुकूल नहीं पड़ती, जितनी कि आयुर्वेदिक प्रणाली।

भारतीय चिकित्सा, इंजेक्शन की तरह भले ही शीघ्रता से लाभ न पहुँचाती हो,

पर धीरे २ वह रोगी को स्थायी लाभ देती है और रोग की जड़ को मूल से उखाड़ फेंकने का सामर्थ्य रखती है।

आयुर्वेद के पंडितों को चाहिये कि वे आयुर्वेद की विशेषता, वैज्ञानिकता को जनता पर प्रकट करने के निमित्त, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को भी समझें और दोनों में समन्वय स्थापना का संभव प्रयत्न करें।

पंडित गंगासहायजी वैद्य शास्त्री ने जो सेवा आयुर्वेद के द्वारा मारवाड़ की हैं उसका आदर कर वैद्यजी को सम्मानित करना आयुर्वेद की ही सम्वर्द्धना है। मैं इस अभिनन्दन समारोह की सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

माननीय चौधरी श्री महम्मदसफी जम्बु काश्मीर

(सदस्य लोक सभा न्यू देहली)

भारतीय लोक जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने के लिये जो चिकित्सा पद्धति इस देश में प्रचलित हुई, उसे हिन्दुओं ने आयुर्वेदिक चिकित्सा के नाम से और मुसलमानों ने युनानी चिकित्सा प्रणाली के नाम से सम्बोधित किया। दोनों में नाम भेद होते हुए भी कार्य भेद नहीं रहा आयुर्वेदिज्ञ वैद्य नाम से तथा युनानी चिकित्सक हकीम नामसे विख्यात हुए।

अँग्रेजी शासन ने दोनों को उखाड़कर उनके स्थान पर एलोपैथी को कायम करना चाहा पर ऐसा न हो सका। एक तो एलोपैथी बहु-व्यय-साध्य थी। दूसरे वह इस देशकी जल-वायु के अनुकूल भी नहीं थी। यही कारण है कि स्वतन्त्र होनें के बाद हमारे देश ने अपनी पुरानी देशी चिकित्सा पद्धति को पुनः संस्थापित करने की सराहनीय प्रवृत्ति प्रदर्शित की है जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय शासनों की ओर से आयुर्वेदिक तथा युनानी चिकित्सा को प्रोत्साहन मिलने लगा है, यह इन दोनों चिकित्सा पद्धतियों के भावी अभ्युदय का परिचायक हैं।

प्रसन्नता की बात है कि मारवाड़ की जनता द्वारा आयुर्वेद के प्रसिद्ध सेवक

प्राणाचार्य पं० गङ्गासहायजी वैद्य शास्त्री का बड़े समारोह के साथ अभिनन्दन हो रहा है। इससे आयुर्वेद को प्रोत्साहन और सेवा करने वाले वैद्यजी को जन-सेवा की अधिक प्रेरणा मिलेगी।

× × × ×

माननीय पन्नालाल बारूपाल

(सदस्य-लोकसभा न्यू देहली)

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति भले ही अँग्रेजों के द्वारा उनके अपने देश की न होने से प्रताड़ित की गई हो, पर उसमें जो विशेषतापूर्ण वैज्ञानिकता है, उसे वे मिटा न सके। बड़े शहरों से, जहाँ से शासन शकट चलता था, आयुर्वेदिक पद्धति को अवश्य खदेड़ा गया, पर वह भारत के आत्म स्वरूप गाँवों में जाकर निवास करने लगी।

आज तो देश वासियों की अपनी सरकार है, इसलिये स्वभावत: देशी चिकित्सा पद्धति की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हो तो यह अवश्यंभावी बात है। प्रान्तीय सरकारें इस दिशा में सक्रिय प्रतीत होती हैं। उनके अनुसार केन्द्रीय सरकार भी जनता की आयुर्वेदिक श्रद्धा के अनुरूप आयुर्वेद को प्रोत्साहन दे तो यह जनमानस की भावना का ही आदर होगा।

मुझे प्रसन्नता है कि आयुर्वेद के विशेषज्ञ विद्वान् प्राणाचार्य पं० गङ्गासहायजी की आयुर्वेदिक सेवाओं का मारवाड़ की जनता द्वारा डीडवाना में सार्वजनिक अभिनन्दन होने जा रहा है। मैं इस समारोह की हार्दिक सफलता चाहता हूं।

× × × ×

माननीय श्री जसवन्तराज मेहता जोधपुर

(सदस्य-राज्यसभा न्यू देहली)

ऋषि प्रणीत भारतीय चिकित्सा पद्धति में आयुर्वेद विद्या का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतवर्ष में अनादि-काल से ऋषि-मुनियों ने अपनी योग-विद्या से जो

अनुभूत प्रयोग गद-ग्रस्त मानवों की उपकार-भावना से आविर्भूत किये, वे आज भी लोक-जीवन में विश्वास पाये हुए हैं। पिछले विदेशी शासन में राज्याश्रय न मिलने पर भी आयुर्वेद विद्या अपनी लोक प्रियता व परोपकार-मूलकता के कारण टिकी हुई है।

हर्ष की बात है कि प्रान्तीय सरकारें आयुर्वेदिक तथ्यों की ओर आकृष्ट हुई प्रतीत होती हैं। ऐसे समय में भारतवर्ष की आयुर्वेद प्रेमी जनता का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सरकारों द्वारा होने वाली प्रगति में सहयोग कर उसे बढ़ावें और आयुर्वेद के विशिष्ट विद्वानों का—जैसे कि डीडवाना (मारवाड़) की जनता वहाँ के लोकप्रिय वैद्य गङ्गासहायजी का करने जा रही है, सम्मान कर योग्य आयुर्वेदज्ञों को आगे आने को प्रोत्साहित करें।

मैं वैद्यजी महाराज के इस अभिनन्दन-समारोह की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

श्री कुंवर विजयसिंह जी सिरियारी

[सदस्य राज्य सभा न्यू देहली]

जिन वैद्यों ने भारतवर्ष की पुरातनतम आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली को अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रखने का यश व पुण्य प्राप्त किया है, वे आयुर्वेद प्रेमी जनता द्वारा अभिनन्दित होने के पूर्ण अधिकारी हैं। डीडवाना के प्राणाचार्य वैद्य गंगासहाय जी वैद्य शास्त्री जिन्हें मारवाड़ की जनता अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा सम्मानित करने जा रही है, ऐसे ही यशस्वी वैद्यों में से एक हैं।

आयुर्वेद को ५ वां वेद कहा गया है। इस लिए उसकी रक्षा करना उतना ही आवश्यक है जितना कि वेदों की रक्षा करना जरूरी है। प्राचीन काल के तपः पूत ऋषियों और राजर्षियों के द्वारा अनुभव के बाद जनहित के लिए प्रसारित आयुर्वेदिक प्रणाली उतनी ही वैज्ञानिक है, जितनी कि दूसरी चिकित्सा प्रणालियां।

मैं वैद्यजी के अभिनन्दन समारोह की पूर्ण सफलता चाहता हूं।

श्रीमान् माननीय बाबू गजाधर जी सोमानी

[सदस्य भारतीय लोक सभा, न्यू देहली]

सुप्रसिद्ध बांगड़ परिवार के द्वारा संचालित श्री वेंकटेश चिकित्सालय के प्रधान श्रद्धेय पं० गंगासहाय जी शर्मा लगातार ४० वर्षों से इसका संचालन कर रहे हैं। श्रद्धेय पंडित जी केवल आस पास के स्थानों में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में अपनी अनुभवशील चिकित्सा के लिये महान ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। आये दिन कई रोगों से ग्रस्त दूर दूर के लोग आपके द्वारा चिकित्सा कराने की लालसा से आपकी सेवा में आते हैं। ऐसे सैकड़ों नहीं, हजारों की संख्या में रोगियों को आपने अपनी विलक्षण अनुभवपूर्ण चिकित्सा के द्वारा आरोग्य एवं निरोग बना दिया है। आपकी सादगी एवं मिलन सरिता वास्तव में बहुत ही प्रशंसनीय है। प्रसिद्ध एवं प्रख्यात चिकित्सक होते हुए भी आपको अभिमान छू तक नहीं गया है। एवं जन साधारण की सेवा करने में सदा प्रसन्नता के साथ तत्पर रहते हैं। अनेकों गरीब एवं निःसहाय रोगियों ने आपके द्वारा जीवन लाभ प्राप्त किया है।

स्वयं जीर्ण एवं दुर्बल होते हुए भी आपका अनुभव एवं आरोग्य शास्त्र का ज्ञान इतना प्रगाढ़ है कि कठिन से कठिन रोगी का जल्दी से जल्दी इलाज कर देना आपके बायें हाथ का खेल है, वास्तव में ऐसे महान् अनुभवी एवं ज्ञान सम्पन्न चिकित्सक के द्वारा भारतीय जनता को बहुत लाभ हो रहा है।

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि श्रीमान बांगड़ जी के द्वारा संस्थापित श्री वेंकटेश्वर चिकित्सालय की निरन्तर ४० वर्ष की सेवा करने के उपलक्ष्य में आपको एक अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण करने का आयोजन किया गया है। मैं इस शुभ योजना का हृदय से स्वागत करता हूं। ऐसे यशस्वी एवं अनुभवी वैद्य जी का जितना भी सम्मान किया जाय थोड़ा है। हमारे परिवार के लोगों को भी समय २ पर वैद्य जी के द्वारा इलाज कराने का लाभ प्राप्त हुआ है और ऐसी महान् विभूति के प्रति मुझे अपनी श्रद्धाञ्जली समर्पित करते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है। मैं उस परम पिता जगदीश्वर से विनीत प्रार्थना करता हूं कि-हमारे लोक प्रिय वैद्यजी दीर्घायु होकर अधिक से अधिक लोक-सेवा करते रहें।

श्रीमान माननीय पं० नरोत्तमलालजी जोशी

(अध्यक्ष राजस्थान विधान सभा)

का

शुभ कामना-सन्देश



भारतीय चिकित्सा पद्धति में आयुर्वेद विद्या का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। भारत वर्ष में अनादि काल से ऋषि मुनियों ने अपनी योग विद्या से जो अनुभूति, प्रयोग रोग ग्रस्त मानव के लिये आविर्भूत किये, वे अब भी भारतीय लोक जीवन में समादृत और अटूट विश्वास के कारण बने हुए हैं। शताब्दियों से राज्याश्रय न होने पर भी आयुर्वेद विद्या लोक प्रियता और उपयोगिता के कारण ही टिकी हुई है।

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि डीडवाना निवासी वैद्य पंडित गंगासहायजी ऐसे ही पियूषपाणि गतस्पृह, धैर्यवान् दयालु वैद्य हैं, जिन्होंने न केवल आर्त मानव को सुख और शान्ति दी है किन्तु इस आयुर्वेद विद्या का मान भी बढ़ाया है। ऐसे यशस्वी विद्वान् और प्रजा-वैद्य का अभिनन्दन वास्तव में आयुर्वेद विद्या का ही गुण-गान है। मुझे विश्वास है कि शास्त्रीजी की जीवन प्रवृत्तियों से स्वतंत्र भारत के उदीयमान वैद्य प्रेरणा प्राप्त करेंगे। मैं इस मंगलमय प्रयास में सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

श्रीमान माननीय ठा० लालसिंहजी सक्तावत

(उपाध्यक्ष राजस्थान विधान सभा)

आयुर्वेद चिकित्सा भारत की अति-प्राचीन परम्परा है। यह इस देश के जल-वायु के अनुकूल होने से भारतीयों के जीवन के साथ ओतप्रोत हो गई है। अतः भारतीय जीवन से इसका विच्छेद कठिन है।

मैं प्राणाचार्य वैद्य गंगासहायजी के सामूहिक अभिनन्दन की सफलता चाहता हूँ।

श्रीमान माननीय श्री सोहनलाल जी सुखाड़िया

(मुख्य मन्त्री राजस्थान)

का

शुभ कामना-सन्देश



मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पं० गंगासहायजी शर्मा शास्त्री के अनवरत जन सेवा के उपलक्ष में एक ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है।

मुझे मालूम है कि पण्डित जी की प्रशस्त चिकित्सा-प्रणाली ने आयुर्वेद जगत के लिये एक महान पथ प्रदर्शन का कार्य किया है।

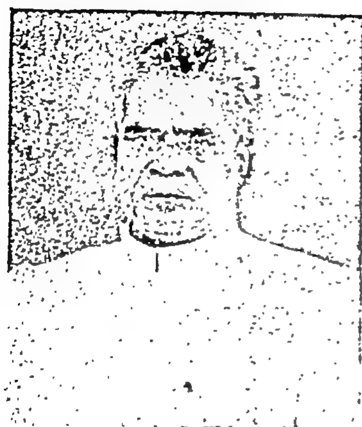
मुझे पूर्ण विश्वास है कि पण्डित जी अपनी सेवाओं से राजस्थान ही नहीं अपितु भारत वर्ष के आयुर्वेद जगत के लिये महान उपयोगी साबित होंगे।

मेरी शुभ कामना उनके साथ हैं।

× × × ×

श्रद्धेय श्री पं० जयनारायण जी व्यास

[भूतपूर्व प्रधान मन्त्री राजस्थान]



पं० गंगासहायजी आयुर्वेदाचार्य ने पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) में शिक्षा लेकर भी जयपुर की आचार्य परीक्षा दी और उसमें उत्तीर्ण हुए। ४० वर्ष में आपने राजस्थान में अपनी सेवाओं के द्वारा जो ख्याति प्राप्त की है, वह किसी से छिपी नहीं है। आज वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय साधारण चिकित्सालय नहीं है, बल्कि एक आदर्श संस्था है। मैंने उनके पास ऐसे रोगियों को जाते और स्वस्थ होते पाया है, जिसका इलाज विद्वान डाक्टरों से नहीं हुआ, बल्कि डाक्टरों तक को उनसे सलाह करते और इलाज करवाते पाया है।

पंडितजी की इस योग्यता और सेवा परायणता से राजस्थान और देश को चिरकाल तक लाभ मिले और ये चिरायु हों मेरी यही कामना है।

× × × ×

श्री जुगलकिशोर जी चतुर्वेदी

[मन्त्री:—राजस्थान विधान सभा, मन्त्री:—भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास, राजस्थान राज्य शाखा]

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि हींडवाना स्थित "श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय के प्रधान चिकित्सक आचार्य श्री गंगासहायजी शर्मा शास्त्री के उक्त संस्था की पूरे ४० वर्ष तक अनवरत सेवा के उपलक्ष रूप आपके मित्र हितैषी तथा प्रशंसक आपको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर रहे हैं। उक्त श्री शर्मा जी जैसे निःस्वार्थ जन सेवक का इस प्रकार सम्मान किया जाना सर्वथा स्वाभाविक ही है। क्यों कि एक पीयूष-पाणि सद्वैद्य की भांति आपके द्वारा अनेकानेक असाध्य और दुःसाध्य रोगियों का

सदैव सफल उपचार होता रहा है। गत सन् ५१ में एक स्थानीय कालेज का शिला न्यास करने के अवसर पर डीडवाना जाने पर मुझे भी आपके द्वारा संचालित औषधालय और आतुरालय देखने एवं आपके निकट संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं उसी समय आपके अनुपम प्रेम शिष्टाचार तथा आकर्षक व्यक्तित्व से पूर्णतः प्रभावित हुआ था। उस समय मैंने उक्त औषधालय से सम्बन्धित अनेक विभागों का निरीक्षण किया था और उनको भी मैंने सब प्रकार से सर्वोत्कृष्ट ही पाया था। अब इस अवसर पर। (जब कि आपके द्वारा पूरे ४० वर्ष तक सफल सेवा किये जाने के अनन्तर ...... आप अवकाश ग्रहण कर रहे हैं)। आपके अन्य श्रद्धालु साथी और शुभचिन्तकों की भांति मैं भी आपको अपने श्रद्धा सुमन तथा अभिनन्दन अर्पित करता हूँ।

× × × ×

श्री मथुरादास जी माथुर

[प्रधान मन्त्री:—राजस्थान प्रदेश कांग्रेस कमेटी]



प्रिय बन्धु,

आपका २०-३-५६ का पत्र मिला, मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आप वैद्य-राज श्री गंगासहायजी को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का विचार कर रहे हैं।

वैद्यराज एक सिद्ध-हस्त चिकित्सक और सेवा परायण व्यक्ति हैं, उनकी चिकित्सा से न केवल राजस्थान के असहाय रोगियों को लाभ पहुंचा है किन्तु अन्य प्रान्तों के भी बहुत से रोगी यहां से रोग मुक्त होकर गये हैं।

वे दीन हीन कठिन रोगियों के लिये आश्रयस्थल माने जाते रहे हैं। उनकी चिकित्सा पद्धति को बड़े बड़े चिकित्सा शास्त्रियों और राज्याधिकारियों तथा राजा महाराजों ने प्रशंसा की है।

श्रीमान् माननीय किशनपुरी साहिब

[चीफ सैक्रेट्री राजस्थान सरकार का शुभ-सन्देश]



मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि पंडित गंगासहायजी शर्मा वैद्य शास्त्री को श्री वेंकटेश औषधालय के प्रधान चिकित्सक के रूप में ४० वर्ष की सेवाओं के उपलक्ष में अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया जा रहा है। मैं पंडितजी से पिछले ३० वर्षों से परिचित हूँ और उनकी आयुर्वैदिक योग्यता एवं उनके मानवीय गुणों के लिए बहुत सम्मान रखता हूं। भूतपूर्व जोधपुर राज्य में चिकित्सा (मैडिकल) विभाग के सचिव के नाते मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पंडितजी के आयुर्वेद बोर्ड की स्थापना में मुझे बड़ी सहायता मिली। तत्कालीन जोधपुर मेडिकल विभाग के संचालक Dr. E. W. Hayward, F.R.C.S. जो आयुर्वैदिक पद्धति के कतई पक्षपाती नहीं थे, उन्होंने एक अवसर पर स्वयं यह उल्लेख किया था कि डीडवाने की मेडिकल डिसपेन्सरी, आयुर्वैदिक चिकित्सक के रूप में पंडित गंगासहायजी की लोकप्रियता के कारण प्रायः परित्यक्त सी मालूम देती है। जोधपुर के उस समय के मुख्य मंत्री राजा सर महाराजसिंह व जोधपुर के कई मंत्रियों ने समय २ पर श्री गंगासहायजी की सेवाओं की प्रशंसा की।

श्री वेंकटेश्वर आयुर्वेदिक औषधालय जो कि सुविख्यात बांगड़ परिवार की उदारता की देन है, उसमें पंडितजी की उच्चस्तरीय सेवाओं ने एक प्रकार से सोने में सुगन्ध ला दी है। अंग्रेजी भाषा में डाक्टरों के लिए, उच्च आदर्श निम्नलिखित शब्दों में मिलता है:—

"A doctor worthy of the noble profession to which he belongs cares more for his patient and less for his Purse".

पंडित गंगासहायजी ने इस ऊँचे आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ किया है। उनके हृदय में मानवीय दया का एक बड़ा स्रोत है और उनका दुर्बल शरीर व वृद्ध अवस्था होने पर भी वह अपना सारा समय रोगियों के उपचार में व्यतीत करते हैं।

मैं सर्व शक्तिमान परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनको चिरायु करें।

× × × ×

श्री राधाकृष्णजी मारू

[एम. एल. ए. राजस्थान]



मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि प्राणाचार्य पं० श्री गंगासहाय जी शर्मा शास्त्री की पुनीत सेवा में एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। ऐसा किया जाना सर्वथा उचित है, क्योंकि आप अपनी सफल चिकित्सा द्वारा राजस्थान प्रान्त की जनता की विशेष रूप से और देश के अन्य प्रान्तों की जनता की आमतौर से पिछले ४० वर्षों से निरन्तर महान् सेवा करते आ रहे हैं। आप वास्तव में राजस्थान आयुर्वेद गगन के एक उदीयमान नक्षत्र हैं। आपका सेवाभाव अनुकरणीय है—आप स्वभावतः सरल मिलनसार एवं मृदुभाषी हैं। यह अभिनन्दन ग्रन्थ आपकी प्रोज्वल प्रभा को देश के कोने २ में प्रसारित करता रहे और आपकी अभूतपूर्व सेवाओं का स्मृतिपट्ट बना रहे। यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है। मैं आपके सुदीर्घ एवं सुखद जीवन की मंगल कामना करता हूँ ताकि देश आपकी सेवाओं से लाभान्वित होता रहे।

× × × ×

श्री रतनलालजी बाँगड़



किसी व्यक्ति की महत्ता का अनुभव इससे नहीं किया जाता कि ख्याति की उपलब्धि में उसका भाग कितना बड़ा है किन्तु इससे कि जन समाज के कल्याण में उसकी प्रेरणा कितनी तीव्र है।

इस दृष्टि से श्रद्धेय पंडितजी का जीवन एक महान आदर्श है।

इस शुभ अवसर पर हार्दिक अभिनन्दन

रतनलाल बांगड़

स्वर्गीय श्री यादवजी त्रीकमजी आचार्य बम्बई

प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहायजी शर्मा शास्त्री जी को भगवान् धन्वन्तरि सुदीर्घ आयुष्य उत्तम स्वास्थ्य और सुयश प्रदान करें यह मेरी शुभ कामना है। इनके द्वारा प्रजा का बड़ा उपकार हुआ है।

× × × ×

वै. रा. श्री प्रेमशंकरजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य

[डाईरेक्टर आयुर्वेद विभाग जयपुर राजस्थान]

वैद्यप्रवर श्री गंगासहाय जी की ख्याति मैं अपनी छात्रावस्था में ही सुना करता था। जब २ आपसे मिलने का अवसर मिला मेरे हृदय पर आपके उस व्यक्तित्व के साथ आयुर्वेद चिकित्सा मर्मज्ञ के रूप में गहरी छाया पड़ी, न केवल आप सफल चिकित्सक ही पाये गये प्रत्युत वैज्ञानिक आधार को लेकर आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण पद्धति में भी आपने एक आकर्षक व आदर्श परिवर्तन उपस्थित किया है। डीडवाना के प्रख्यात आयुर्वेद चिकित्सालय एवं उसका सर्वसाधन सम्पन्न आतुरालय अच्छे परिणामों के साथ आपकी योग्यता को प्रख्यापित करता है। आप जैसे सुयोग्य कर्मठ आयुर्वेद चिकित्सा के परम उपासक चरित्रशील वैद्यप्रवर का अभिनन्दन आज होने जा रहा है यह अत्यन्त हर्ष का अवसर है। अच्छा होता आदरणीय वैद्य जी का अभिनन्दन राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के मञ्च से होता। परम पिता परमेश्वर से आपके चिरजीवन के साथ आयुर्वेद की प्रगति मैं सदा की तरह चाहता हूँ।

× × × ×

कविराज श्री शिव शर्मा जी

[सभापति—अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन, बम्बई]

ईश्वर से प्रार्थना है कि प्राणाचार्य श्री गंगासहाय जी शास्त्री की आयु १०० वर्ष से भी अधिक हो और वे चिरकाल तक देश और आयुर्वेद की सेवा करते रहें।

डा० कविराज श्री प्रतापसिंहजी, डी० एम० सी०

[डाईरेक्टर प्रिंसिपल इन्दौर]

आजकल शास्त्रीय विवेचन की परिपाटी सी चल गई है, किन्तु (अभ्यर्चन) रिसर्च करने की प्रवृत्ति बहुत कम है। मेरे मित्र पंडित गंगासहाय जी ने आयुर्वेदिक औषधियों की प्रसार प्रचार और नूतन आविष्कार में अपने जीवन का बहु मूल्य समय लगाया है, और उसमें अच्छी सफलता प्राप्त की है।

मेरी तरफ से ख्यातनामा पं० गंगासहाय जी का हार्दिक अभिनन्दन करें, पंडित जी ने आयुर्वेद का गौरव अभिवर्द्धन किया है, आयुर्वेद जगत के इतिहास में उनका नाम स्वर्ण त्तरों में अंकित करने योग्य है। मैं भगवान से उनके सुख आयु की वृद्धि की कामना करता हूँ।

× × × ×

आचार्य श्री मणिराम जी शर्मा

[प्रिंसिपल--एस० एच० आयुर्वेद कालेज]

राजपूताना प्रान्तान्तर्गत डीडवाना वास्तव्य धर्मप्राण सेठ श्री मगनीराम जी रामकुमार जी बाँगड़ द्वारा संस्थापित श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय के प्रधान चिकित्सक प्राणाचार्य वैद्यराज श्री गंगासहाय जी शर्मा शास्त्री आयुर्वेद जगत में एक प्रख्यात विद्वान एवं सिद्धहस्त चिकित्सक हैं। आपने जिस सच्ची लगन से आयुर्वेद एवं जनता जनार्दन की सेवा शुश्रूषा की है अतीव प्रशंसनीय है ऐसे सक्रिय कार्य करने वाले आयुर्वेद हितैषियों की इस आयुर्वेद के संघर्ष कालीन युग में अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे सुयोग्य विद्वान एवं चिकित्सक के अभिनन्दन के अवसर पर हार्दिक शुभ कामनायें प्रगट करता हुआ आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना करता हूं कि इसी प्रकार इनकी सुवर्ण और हीरकजयन्ती देखने का अवसर प्रदान करें।

× × × ×

आयुर्वेद बृहस्पति-वैद्य ख्यालीराम द्विवेदी D. S. C. A.

[आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद मार्तण्ड इन्दौर]

सुहृद्वर्य पं० गंगासहाय जी वैद्यराज मेरे परम स्नेहियों में से हैं। मेरा इनका पारस्परिक सम्पर्क तो बहुत दीर्घ काल से मानसिक रूप में चला आ रहा है। आप बड़े ही सहृदय, सुपठित, सुयोग्य, चिकित्सा में बड़े ही प्रवीण मेरी दृष्टि में आये। आज के युग में प्रायः इसी प्रकार के वैद्यों की आवश्यकता है और ऐसे ही वैद्यों से जन-कल्याण हो सकता है। ये बड़े ही सुयोग्य तथा प्रतिभा-शाली वैद्य हैं। यहां की जनता निकट ही इनका अभिनन्दन कर रही है यह जान कर मेरे हृदय में भी बहुत ही आनन्द हुआ है। ऐसों का अभिनन्दन करने से भविष्य में आयुर्वेद का आदर्श स्थान विशेष रूप से हो सकता है। मैं भी हृदय से शुभ कामना प्रकट करता हूँ और मेरे मित्र गंगासहाय जी चिरायु हों और जनता जनार्दन की सेवा विशेष रूप से करें।

× × × ×

आयुर्वेद बृहस्पति, राजभूषण, राजवैद्यः—पं० रामेश्वरजी शास्त्री

[आयुर्वेदाचार्य, डी. एस. सी. ए. डिप्टी डायरेक्टर
आयुर्वेद, मध्यभारत]

अपनी विद्वत्ता दीर्घ कालीन अनुभव एवं चिकित्सा कौशल के द्वारा जो वैद्य महानुभाव जनता में आयुर्वेद के गौरव एवं महत्ता को प्रत्यक्ष परिचित करा देते हैं—वे सर्वथा अभिनन्दनीय हैं।

मेरे मित्र श्रीमान् वैद्यराज पं० गगासहासजी शर्मा, शास्त्री इसी उच्च कोटि में गणनीय सज्जन हैं। इस शुभ अवसर पर मुझे आपका अभिनन्दन करने में अत्यन्त प्रसन्नता है।

× × × ×

वैद्यरत्न भिषक् केशरी जयरामदासजी स्वामी

[भिषगाचार्य प्रिंसिपल गवर्नमेंन्ट आयुर्वेदिक कॉलेज जयपुर]

प्राणाचार्य श्री वैद्य गंगासहायजी शर्मा पीयूषपाणि की सेवाओं के उपलक्ष में आप लोग अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करेंगे वस्तुतः इन महानुभाव ने अपने प्रान्त के अन्दर विशुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा के द्वारा आयुर्वेद विज्ञान की बहुत बड़ी सेवा की है। इनके कार्यों से आयुर्वेद का बड़ा समुन्नत नाम हुवा है। ऐसे कर्मठ व्यक्ति का अभिनन्दन करके आप लोग वस्तुतः बहुत उपयुक्त कार्य कर रहे हैं। मैं इसकी सफलता हृदय से चाहता हूं।

× × × ×

वैद्यराज श्री मंगलदासजी स्वामी आयुर्वेदाचार्य

[दादू महाविद्यालय मोतीडूंगरी जयपुर]

यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि डीडवाने की जनता आप द्वारा तीन युग से अधिक समय तक की गई जनता जनार्दन की लम्बी सेवा का महत्व समझ इस शुभ काम का संकल्प कर रही है। समिति द्वारा कार्यारम्भ हो गया है यह ठीक ही है और आप जैसे सुयोग्य चिकित्सक के सम्मान का कार्य एक महत्वप्रद कार्य है, इसमें सभी लोगों का सहयोग मिलना सम्भव है, मैं सहृदय इसकी सफलता चाहता हूं।

× × × ×

आयुर्वेदाचार्य श्री प्रभुदत्तजी शर्मा शास्त्री

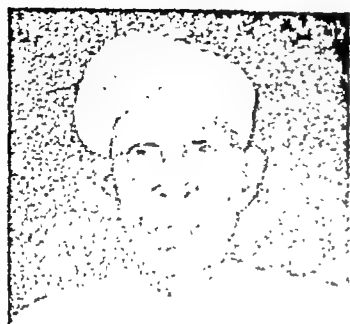
[प्रिन्सिपल सीकर]

प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहाय जी शर्मा शास्त्री के अभिनन्दन का पत्र समिति की ओर से मिला, धन्यवाद। आपका यह प्रयास अतीव उत्तम है, स्तुत्य है। ऐसे कर्तव्य परायण महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन एवं उनके सम्मान का आयोजन अवश्य ही होना अपेक्षित है।

× × × ×

आयुर्वेद बृहस्पति साहित्याचार्य वैद्य घनानन्दजी पन्त

[विद्यार्णव, ३१०१ बाजार सीताराम देहली ६]



श्रीयुत पं० गंगासहायजी शर्मा का मेरा बहुत पुराना करीब ५० वर्ष का सम्बन्ध रहा है। आपने स्वर्गीय मेरे चचेरे भाई यशस्वी वैद्य पं० दुर्गादत्तजी पन्त से भी आयुर्वेद का अध्ययन किया है, इस नाते से मेरे सतीर्थ्य भी होते हैं। मैं उक्त पंडितजी के चिरायु होने की कामना करता हूँ, पुनश्च यह तो सर्वविदित है कि श्री पंडितजी परोपकारी कीर्तिमान वैद्य हैं।

× ×

आयुर्वेदाचार्य वैद्य चिरञ्जीलालजी शर्मा

[वैद्यवाचस्पति भिषग्रत्न, एम. एस. सी. ए. इसलामपुर]

आपके अभिनन्दन ग्रन्थ के लिये सम्मति भेजता हुआ विशेष गौरव का अनुभव करता हूँ, आपने अपने परोपकार यशोमय जीवन में भगवान् धन्वन्तरि के करकमलों की छाया में जो चिकित्सा कौशल का चमत्कार दिखा कर दीन हीन जनों को कठिन से कठिन रोगों से मुक्ति दिलाने में सफलता प्राप्त की इस पर मुझे ही नहीं वैद्य समाज को भी गर्व है।

आप हमारे से बहुत दूर रहते हुए भी चिकित्सक स्मृति की जो अमिट छाप आपने की है वह राजस्थान में ही नहीं वह हिन्दुस्तान के किसी भी प्रान्त या कोने में वैद्य समाज व जनता के लिये सुखदायी है। आपने श्री वेंकटेश औषधालय के प्रधान पद पर रह कर सफल व यशस्वी चिकित्सा का श्रेय प्राप्त कर आयुर्वेद के मान के साथ सेठ श्री मगनीरामजी रामकुमारजी की दानवीरता की भी ऐसी दृढ़ नींव की स्थापना

में सहयोग दिया है जो इहलोक और परलोक दोनों में चरितार्थ रहे। आपकी कार्य कुशलता कर्मण्यता तथा सद्भावना से गौरवान्वित होकर उसके प्रसार प्रभाव प्रचार की वृद्धि की आशा करता हुआ, स्वर्णजयन्ती देखने की कामना करता हूँ, तथा अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशकों के लिये धन्यवाद।

× × × ×

महामहोपाध्याय श्री भागीरथ स्वामी, कलकत्ता

समिति द्वारा भेजा पत्र प्राप्त हुआ, पढ़ कर चित्त प्रसन्न हुआ। आपके सदृश विद्वानों का अभिनन्दन अवश्य होना चाहिये—परन्तु अभिनन्दन ग्रन्थ ऐसा होना चाहिए जिसकी भविष्य में खोज हो। मनुष्य सदा पास रक्खें और दूसरे को देना नही चाहें—इसमें १५ हजार से कम लागत न हो।

× × × ×

डा० जे. एन. मदान, एफ. आर. सी. एस. लन्दन

[भू० पू० प्रिन्सिपल मेडिकल आफिसर, जोधपुर]

डीडवाना जोधपुर रियासत का एक नगर है। यह नगर नमक उत्पत्ति का केन्द्र होने के कारण तथा मारवाड़ के नामी बाँगड परिवार का जन्मस्थान होने के नाते एक अति प्रसिद्ध नगर है। यहां जोधपुर दरबार की ओर से एक अच्छी खासी डिस्पेंसरी भी है। पिछले विश्वयुद्ध के दिनों में जबकि मैं रियासत का प्रिन्सिपल मेडीकल आफिसर था। मुझे इस डिस्पेंसरी के निरीक्षण के लिये डीडवाना जाना पड़ता था। उन्हीं दिनों मुझे वैद्यराज पं० गंगासहायजी शास्त्री से मिलने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ था। शास्त्रीजी ने मुझे अपना चिकित्सालय दिखाने के लिये आमन्त्रित किया। उन्होंने स्वयं मुझे अपना चिकित्सालय दिखाया। इस चिकित्सालय के सारे विभाग मैंने बड़े ध्यान पूर्वक देखे। सब से अधिक मुझे इनका औषधालय पसन्द आया। उस समय लड़ाई की वजह से जहां सरकारी अस्पतालों और डिस्पेंसरियों के लिये दवाइयां बड़ी कठिनता

से मिलती थी, शास्त्रीजी के औषधालय में दवाइयों की भरमार थी और कितने ही कर्मचारी तथा वैद्य शिष्य शास्त्रीजी के निरीक्षण में आयुर्वेद शास्त्र की भिन्न रीतियों से भांति भांति की औषधियां, भस्में और तैल आदि बनाये जा रहे थे।

मेरे मन में उस समय यह विचार उठा कि हमारे देश में शास्त्री जी जैसे निःस्वार्थी परन्तु विज्ञ तथा प्रशस्त चिकित्सक कुछ सैंकड़ों की संख्या में हों तो भारत में बहुत से रोगों की जड़ सदा के लिये उखड़ जाये। लड़ाई की वजह से हमें तो विदेशी दवाइयां बड़ी कठिनता से मिलती थी, शास्त्री जी के औषधालय में कोई कमी नहीं थी। शास्त्री जी के औषधालय में नित्य तीन चार सौ बीमार आते थे और बहुत संख्या में आरोग्य लाभ कर लौट जाते थे। शास्त्री जी का सरल और नम्र स्वभाव और उनके चिकित्सा विज्ञान से प्रभावित होकर जन साधारण और मारवाड़ के सेठ साहूकार तथा राजा और रईश भी बहुसंख्या में इलाज कराने को आते थे। इस चिकित्सालय की सुप्रसिद्धि का सारा श्रेय शास्त्री जी को ही मिलना चाहिए; क्योंकि उन्हीं की अविश्रान्त सेवाओं और कठिन परिश्रम का यह सुफल है।

राज्य की हमारी डीडवाना की डिस्पेंसरी शास्त्री जी की प्रसिद्धि के कारण ही कभी जनता के विश्वास को प्राप्त न कर सकी। मैं वहां अच्छे से अच्छे डाक्टर भेजता था; परन्तु फिर भी डीडवाना की डिस्पेंसरी को सफल रूप नहीं दे सका जब तक कि डीडवाना शास्त्री जी चिकित्सक के रूप में है, तब तक वहां कोई भी डाक्टर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। मारवाड़ में वैद्यराज पं० गंगासहायजी शास्त्री के मर्मी वर्ग के लोग उनकी सुसेवाओं के कारण बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

मैं सन् १९५१ में जोधपुर छोड़ इधर मेरठ में आ गया हूं; परन्तु मुझे मारवाड़ से अभी के समाचार मिलते हैं कि पंडित जी का प्रभाव जनता पर आगे से भी अधिक बढ़ गया है। पं० गंगासहायजी को रोगी सेवा करते अब ५० वर्ष हो गये हैं, इतनी लम्बी अवधि तक सफल लोक सेवा करने का सौभाग्य भगवान् अपने विशेष प्रियजनों को ही देता है और हमारे पं० गंगासहायजी भगवान् के इन्हीं प्रियजनों में से एक हैं।

मैं आशा करता हूँ कि पंडित जी को जन सेवा करने का सौभाग्य अभी कई और

वर्षों तक श्री हरिकृपा से मिलेगा। ईश्वर पंडित जी को सदा सुखी और स्वस्थ रक्खें ये मेरी शुभकामनायें हैं।

× × × ×

वैद्य श्री रामप्रसादजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य

[सरदार शहर]

भारत में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो डीडवाना मारवाड़ के भारत प्रसिद्ध उद्योगपति प्रसिद्ध बांगड़ परिवार से परिचित न हो, इसी बांगड़ परिवार द्वारा संस्थापित औषधालय के प्रधान चिकित्सक वैद्य शिरोमणि पं० गंगासहाय जी शास्त्री राजस्थान के ख्यात नामा वैद्य राज हैं। प्रसिद्ध सेठों के वैद्यराज भी सुप्रसिद्ध ही होने चाहिये। कवि की यह युक्ति यहां चरितार्थ होती है। "विनाश्रयं न शोभन्ते पंडिता वनिता लता।" वैद्यजी की प्रसिद्धि जहां औषधालय की सुव्यवस्था से हुई वहां औषधालय द्वारा हुई दीन हीन जनता की सेवा के कारण बांगड़ परिवार की भी प्रसिद्धि हुई। शास्त्री जी परमोदार विद्वान एवं विख्यात यशस्वी चिकित्सक हैं, आपका गत ४० वर्षों का जीवन इस बात का साक्षी है कि आप एक कर्मठ सुव्यवस्थापक हैं। आपने जिस दिन से इस संस्था का कार्य भार संभाला तब से यह संस्था उत्तरोतर प्रगति करती हुई राजस्थान की उच्च-कोटि की सुप्रसिद्ध चिकित्सास्थल बन गई। इसको उन्नत बनाने का श्रेय पंडित जी को है और कभी इस संस्था का इतिहास लिखा गया तो पंडित जी की कीर्त संस्था के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेगी।

शास्त्रीजी सेवा भावी सहृदय एवं शान्त स्वभाव के व्यक्ति हैं। आपके सरल स्वभाव, मिलन सारता, एवं मधुर भाषिता आदि अनुपम गुण आपकी कीर्ति में चार चाँद लगा देते हैं। आपकी वाणी में वह मधुरता है जो प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट कर लेती है। जो एक बार भी मिला वह सदा के लिये आपका हो गया। आप दीन जनों की चिकित्सा करने में बड़ी रुचि रखते हैं और आपके पास दूर २ के लोग चिकित्सा के लिये आते हैं और स्वास्थ्य लाभ कर जाते हैं।

भगवान् श्री धन्वन्तरि से प्रार्थना है कि आपको दीर्घजीवी बनाये ताकि चिरकाल तक आयुर्वेद विज्ञान द्वारा जन सेवा कर सकें।

× × × ×

श्री हरिगोपालजी दुबे-भिषगाचार्य

[एम० ए० एम० एस० काव्यतीर्थ]

यह जान कर परम प्रसन्नता हुई कि "श्री वेंकटेश्वर चिकित्सालय डीडवाना के प्रधान चिकित्सक-विद्या वयोवृद्ध वैद्य पं० गंगासहाय जी का सार्वजनिक सम्मान अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण करने के रूप में किया जा रहा है। वास्तव में चिकित्सालय की उन्नति योग्य चिकित्सक पर ही निर्भर रहती है और चिकित्सक की सफलता सुनिर्मित शुद्धौषधियों पर। वेंकटेश चिकित्सालय के ख्याति का श्रेय प्रधानतया इन्हीं विद्वान वैद्य जी के चिकित्सा साफल्य से है। वैद्य जी एक सफल चिकित्सक होने के साथ साथ आयुर्वेदीय औषध निर्माण कला में भी प्रवीण हैं, इन्होंने स्वयं अपनी "अपर इण्डिया कैमिकल फार्मेसी" स्थापित की है, जिसमें आयुर्वेदीय दवाइयां अर्वाचीन पद्धति से तैयार होती हैं एवं सब फल प्रद भी हैं। वैद्य जी से मेरा सम्बन्ध आयुर्वेद बोर्ड, एवं एडवाईजरी असेम्बली जोधपुर—के सदस्य के नाते काफी समय तक रहा है, एवं मैंने वैद्य जी को स्वयं भी एक विद्वान वैद्य, मधुर भाषी एवं सफल चिकित्सक के रूप में देखा है। इनसे मिलते ही चरकोक्त वैद्य के लक्षण "गुरोरधीताखिल वैद्यविद्य, पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु" आदि स्मरण हो जाते हैं। ऐसे विद्वान वैद्य जी का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है एवं मैं भी इनके इस सार्वजनिक सम्मान के साथ इनका अभिनन्दन करता हूँ।

× × × ×

डा० सी. एस. शर्मा एम. बी. बी. एस. एफ. आई. सी. एस.

[प्रिंसिपल मेडिकल ऑफ़ीसर, उदयपुर]

मैं आपके अभिनन्दन के समाचार से बहुत प्रसन्न हूं और सहृदय इसकी सफलता चाहता हूं।

× × × ×

वैद्यराज श्री पं० गजानन्दजी शर्मा शास्त्री बम्बई

गुरोरधीताखिल वैद्य विद्यः पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु। गतस्पृहो धैर्यधरः कृपालुः शुद्धोऽधिकारी भिषगीदृशः स्यात्॥ इन वैद्योचित गुणों के अतिरिक्त एक महान् मनुष्य में जितने गुणों की आवश्यकता होनी चाहिये वे सभी गुण भारतीय चिकित्सक में होने अनिवार्य समझे गये, जिनकी बृहत् तालिका आयुर्वेद में दी गई है। आज हम जिस वैद्य बन्धु का अभिनन्दन करते हैं, उन्होंने अपने वैद्योचित सद्गुणों से भारतीय चिकित्सा के द्वारा राजस्थानी प्रजा में आयुर्वेद की प्रतिष्ठा प्रेम और उसके प्रति अनुराग उत्पन्न कर आयुर्वेदोक्त चिकित्सा का महत्व बढ़ाया है। इसी लिये आयुर्वेद जगत् आपका अभिनन्दन कर हर्षित है। भगवान् धन्वन्तरि आपको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य प्रदान करें।

× × × ×

मंत्री भारत आयुर्वेद सेवक समाज (इस्लामपुर)

प्राचीन समय में जैसे भारत चिकित्सा विज्ञान में जगद्गुरु का पद प्राप्त किये हुए था—उसमें विशिष्ट कारण महाराज वैद्य पं० गंगासहायजी शास्त्री जैसे समाज सेवी, लोकोपकारी, दीन हीन जनाश्रय, यशस्वी, सिद्धहस्त, सर्व प्रिय, सेवा परायण, व्यक्ति विशेषों के कारण था।

आधुनिक युग में भी आप जैसे वैद्य हमारथियों की वजह से ही आयुर्वेद का कुछ मस्तक ऊँचा रहा है। आप सुप्रसिद्ध चिकित्सक होने के नाते परम कुशल चिकित्सा प्रणाली के जन्म दाता हैं, जिनकी शैली इतनी सरल, सिद्ध एवं मनमोहक है जिसका वर्णन सब जगह सुनने में आया है और यह आपकी अनवरत अविश्रान्त सेवाओं का फल है।

ऐसे भारत विख्यात महारथी को अभिनन्दन ग्रन्थ देना आपके नाम को और श्री सेठसाहब की दानवीरता को चिरस्मरणीय बनाना है। मैं आपके अभिनन्दन का सहर्ष स्वागत और सम्मान करता हूं और परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि इस कार्य को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें।

श्री महेन्द्रकुमारजी शर्मा शास्त्री

[प्रिंसिपल:—पोद्दार आयुर्वेदिक कोलेज वरली वम्बई]

आपकी योजना अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। पंडित जी जैसे सुयोग्य, कर्मठ और चिकित्सा कुशल व्यक्ति का अभिनन्दन होना ही चाहिये—वास्तव में यह अभिनन्दन करके हम लोग अपना कर्तव्य पालन करते हैं—अतः इस शुभ निश्चय के लिये आप लोग बधाई के पत्र हैं।

× × × ×

श्री स्वामी हरिशरणानन्दजी आयुर्वेदाचार्य

[सम्पादक—आयुर्वेद विज्ञान, दिल्ली]

जिस व्यक्ति ने आयुर्वेद और जन समाज की इतनी भारी सेवायें की उनका अभिनन्दन करना समाज का बड़ा कर्तव्य है, हम इस विचार से सहमत हैं कि शास्त्री जी का अभिनन्दन किया जाना चाहिये, किन्तु देखना यह है कि यह ग्रन्थ समाज के लिये किस रूप में उपयोगी हो सकता है।

वैद्य जी से प्रार्थना कर यदि अपने ४० वर्ष के अनुभव को कलम बन्द कर इसमें रखें तो वैद्य समाज का बड़ा कल्याण होगा।

× × × ×

कवीराज श्री आशुतोष मजूमदार एस. आर. ए. एस.

[लन्दन, एफ० ए० प्लाई, एम० मद्रास]

प्राणाचार्य श्री गंगासहाय जी शास्त्री को अभिनन्दन कुसुमाञ्जलियां समर्पित करते बड़ा हर्ष हो रहा है। ऐसे पीयूषपाणि वयोवृद्ध एवं ज्ञान वृद्ध महापुरुष की स्मृतिग्रन्थ से जनता को सत्पथ पर अग्रसर होने का पवित्र प्रेरणा मिला करती है। शास्त्री जी ने अपने जीवन में सदुद्योग द्वारा सहयोगियों को नैरोग्य और स्वस्थ पुरुषों को स्फूर्ति देकर देश का बड़ा कल्याण किया है। जिसके लिये विज्ञ समाज चिरकाल तक ऋणी रहेगा।

यद्यपि यह डीडवाना राजस्थान के श्री वेंकटेश औषधालय के ४० वर्ष से प्रधान पद पर प्रतिष्ठित है तथापि मुझे यह कहने में स्वल्प भी संकोच नहीं है कि आपके यश सौरभ ने राजस्थानेतर अन्य अनेक प्रान्तों के वैद्य वृन्द को विमुग्ध किया है।

भगवान् धन्वन्तरि से प्रार्थना है कि वे शास्त्री जी के मस्तक पर अपना वरद हस्त रख कर पूर्णायु प्रदान करें एवं जीवन में सर्वांगीण सफलता की प्राप्ति का वरदान दें।

× × × ×

श्री जीवराज़ कालीदास रसशाला औषधाश्रम

[गोंडल सौराष्ट्र]

श्री पं० गंगासहाय जी शर्मा शास्त्री का नाम सुना है उनके लिये अभिनन्दन ग्रन्थ का निर्माण हो रहा है इसी लिये धन्यवाद भेजता हूं और इस अभिनन्दन में मेरा भी हिस्सा आशीर्वाद रूप में भेजता हूं। वे दीर्घायु होकर आयुर्वेद की अधिकाधिक सेवा कर सकें ऐसी भगवती से मेरी प्रार्थना है।

× × × ×

आयुर्वेद वृहस्पति प्राणाचार्य कविराज माधवप्रसादजी

[शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, डी० एस० सी० ए० जूनीधान मण्डी
जोधपुर राजस्थान]

आदरणीय श्री पं० गंगासहायजी शास्त्री की विद्वत्ता, प्रतिभा एवं चिकित्सा कुशलता से कौन अपरिचित रह सकता है। राजस्थान का वैद्य समाज उनका जितना भी सम्मान करे वह सब उनके लिये थोड़ा है।

आपने अभिनन्दन ग्रन्थ की आयोजना का जो कार्यक्रम बनाया है उसमें मेरा आपको पूरा सहयोग प्राप्त होगा।

आपने राजस्थान में आयुर्वेद का सक्रिय कार्य करते हुए जनता की जो सेवा की हैं इसके उपलक्ष में यदि स्थानीय जनता आपका अभिनन्दन करे तो कोई बड़ी बात नहीं हैं, बल्कि एक कर्तव्य है।

श्री नारायण भरोसे शास्त्री

[फरुखाबाद]



सन् १९१४ की बात है, जब मैं राजा ललिताप्रसाद संस्कृत मेडिकल कालेज पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) में आयुर्वेद उपाध्याय परीक्षा की तैयारी कर रहा था तब ही श्री गंगासहाय शास्त्री से मेरा साक्षात्कार हुआ। प्रातः स्मरणीय राजा ललिता प्रसाद जी ने संस्कृत मेडिकल कालेज पीलीभीत की १८ दिसम्बर १८९६ में स्थापना कर आयुर्वेद तथा संस्कृत के अध्ययन को पुनर्जीवन प्रदान किया था। उस समय में पीलीभीत कालेज भारत के समस्त आयुर्वेदिक कालेजों से विशाल तथा पठन पाठन की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ था इसका भवन बहुत विशाल और रमणीय था, जिस पर स्थापित तीन हजार रु० की घड़ी उसकी शोभा दुगुनी करती थी। एलोपैथिक विषय भी उस समय इस कालेज में पढ़ाये जाते थे और उस स्थान पर डा० जयजयराम गुप्त एम० बी० बी० एस० उसके शिक्षक थे। कालेज के मैनेजर श्री ललिता प्रसाद जी की कार्य कुशलता आज भी याद है। इन सब श्रेष्ठताओं के अतिरिक्त उस कालेज में कर्माभ्यास भी सिखाया जाता था। जो कि अन्य स्थानों पर उपलब्ध नहीं था। इस कालेज में प्रत्येक प्रान्त तथा राज्य के छात्र अध्ययनार्थ आते थे। कालेज के प्रिंसिपल वैद्य राज रामस्वरूप बड़े विद्वान और डाक्टरों में भी ख्याति प्राप्त वैद्य थे। मेरे स्वर्गीय चाचा श्री भगवतदासजी उस समय पीलीभीत में ही डिप्टी कलक्टर थे उन्होंने भी कठिन रोग से वैद्यराज के द्वारा ही स्वास्थ्य लाभ पाया था। जबकि सिविल सर्जन इत्यादि इलाज करते हुये हार चुके थे। सन् १९१२ से लेकर सन् १९१७ तक पीलीभीत में अध्ययन करने के पश्चात मैं राजकीय

आयुर्वेद पाठशाला ग्वालियर अध्ययनार्थ चला गया था। निश्चय ही वैद्य समाज राजा साहब का सदा ऋणी रहेगा।

सर्व श्री गंगासहाय भी उसी कालेज के स्नातक हैं। इससे पूर्व श्री गंगासहाय मेरठ के प्रसिद्ध वैद्यराज रामसहाय जी से आयुर्वेद का अध्ययन कर आयुर्वेद-उपाध्याय परीक्षा पास की थी। और उसके बाद जयपुर की आयुर्वेद शास्त्र परीक्षा में आप ससम्मान उत्तीर्ण हुये थे।

अध्ययन काल में श्री शर्मा जी स्वाध्याय निरत, गवेषणा शील, तथा उत्साह प्रिय थे। प्राचीन वस्तुओं के आधुनिकरण में उन्हें विशेष रुचि थी। इसके अतिरिक्त सच्चरित्रता, निर्दोष व्यक्तिगत जीवन और स्फटिक के समान चमकने वाले व्यवहार स्वच्छता व गम्भीरता, और दृढ़ धार्मिक मनोवृत्ति आदि आप की जीवन की विशेषतायें रही हैं। स्वभाव से आप विनम्र, उदार और परोपकारी रहे हैं। आपके इन्हीं गुणों से आपको राजस्थान के ख्यात नामा सेठ श्री मगनीराम रामकुमार बांगड ने श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय के प्रधान वैद्य के पद पर नियुक्त किया है। तब से आप उक्त चिकित्सालय के प्रधान के रूप में जनता-जर्नादन की सेवा करते आ रहे हैं। उक्त औषधालय के प्रधान चिकित्सक के रूप में आपने दीन, हीन और कठिन रोगियों को निरोग बनाये, यश प्राप्त किया, उसके कारण आज आप आबाल वृद्ध जनता के विश्वास भाजन बने हुये हैं। आपकी चिकित्सा कुशलता का लाभ राजा से लेकर साधारण जनता तक को होता रहा है। चिकित्सा सेवा करते हुये भी आपने आयुर्वेद नये अनुसन्धान का कार्य किया है वह वैद्य समाज के लिये गौरव और अनुकरण करने योग्य है। डीडवाना की ख्याति में जहां सेठ मगनीराम जी का नाम है वहां वैद्यराज श्री गंगासहाय जी की चिकित्सा कुशलता का भी काफी हिस्सा रहा है।

वैद्यराज गंगासहाय अमरोहा जि० मुरादाबाद के निवासी हैं। जहां आपने अपर इण्डिया केमीकल फार्मेसी को सोल डिस्ट्रीब्यूटर का विशाल केन्द्र स्थापित किया है। इस संस्था का निर्माण केन्द्र इण्डियन ड्रग लेबोरेट्री डीडवाना राजस्थान ही रखा है। जिसकी देख रेख आप स्वयं ही करते हैं। यहां का औषधियों का निर्माण आधुनिक ढङ्ग से किया जाता है। इन औषधियों का रूप इस प्रकार से किया गया है कि जिससे एलोपैथिक

चिकित्सक भी आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग भली प्रकार कर सके। नव निर्माण के इस रूप से औषधि निर्माण में लगने वाले वैद्यों के समय में बचत होगी और औषधि अधिक समय तथा प्रभाव शाली तथा निर्विकार वाली रह सकेगी।

पीलीभीत कालेज से ही मेरा तथा वैद्यराज गंगासहाय का सम्बन्ध अभीतक चला आ रहा है। वस्तुतः आपकी सेवायें अभिनन्दनीय हैं। उनका संग्रह कर ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया जाना नितान्त वाञ्छनीय है। इस आयोजन से जहाँ वैद्य जी की सेवायें स्मरणीय रहेगी वहां नवीन वैद्यों में भी उत्साह का संचार होगा। इस शुभावसर पर मैं भी उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ श्रद्धा तथा स्नेह स्वरूप श्रद्धाञ्जली भेट कर रहा हूँ आशा है वैद्यराज गङ्गासहायजी इसे स्वीकार करें।

× × × ×

श्रीमान् वैद्यराज प्रहलादरायजी शर्मा

[आयुर्वेदालङ्कार सीकर]



हम आपका अभिनंदन करते हुए हमारे सौभाग्य का अनुभव करते हैं। क्योंकि आप जैसे विद्वान वैद्यों का अभिनंदन करना आयुर्वेद को उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंचाने का प्रयास है।

आपने आयुर्वेद की जो अपरिमित सेवाएँ की हैं उनसे आयुर्वेद जगत उऋण नहीं हो सकता। आयुर्वेद में आपने बहुत से नवीन आविष्कार कर जनता जनार्दन का जो उपकार किया है वह किसी से अविदित नहीं है। उनमें से कुछ मुझे भी स्मरण हैं जैसे कि लिवर स्पेसिफिक (Lever Specific) यह आपका नवीन आविष्कार लीवर के लिए अत्यंत लाभप्रद सिद्ध हो रहा है।

डी० डाइविटीजः—यह औषधि मधुमेह के लिए अत्यंत सराहनीय है।

डी० प्रेशरः—यह आपका नूतन आविष्कार हाईब्लड प्रेशर वालों के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

कामोदः—यह माँशपेशियों और हड्डियों को दृढ़ करने के लिए अत्यंत गुणकारी है।

डी० हेमोराइडसः—मस्सों की पीड़ा व बहते हुए खून के लिए रामबाण सिद्ध हुई।

इसके अतिरिक्त आपके कर कमलों द्वारा निर्मित कुछ औषधियों का हमने हमारे औषधालय में मंगाकर रोगियों पर इस्तेमाल करके देखा तो अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई। आपने अपर इंडिया केमिकल फार्मेसी का निर्माण करके आयुर्वेद की औषधियों का सुलभ मूल्य पर जो वितरण किया उससे आयुर्वेद जगत् में एक अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ।

परममाननीय !

विद्वत्ता, चिकित्साचातर्य, सहृदयता, दयालुता आदि आपके सद् गुणों ने मरुस्थल की समस्त जनता को आकृष्ट कर दिया है। आश्चर्य तो इस बात का है कि इतना सब कुछ होते हुए भी आपके रहन सहन, वेश भूषा एवं खानपान आदि सब सादगी से ओतप्रोत हैं। आपको आधुनिक समय का झूँठा आडम्बर छू तक नहीं सका। आप आयुर्वेद के कर्मठ, उत्साही एवं सच्चे पुजारी हैं।

× × × ×

राजवैद्य श्री सीतारामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य

[मिरजा इस्माइल रोड जयपुर]

प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहायजी शर्मा प्रधान चिकित्सक—श्री वैङ्कटेश्वर आयुर्वेदिक चिकित्सालय डीडवाना से मेरा परिचय लगभग २० वर्ष पूर्व से है। वैद्यजी राज्य सम्मानित एक सिद्धहस्त यशस्वी एवं सर्वप्रिय सेवा परायण व्यक्ति हैं। आपकी चिकित्सा से केवल राजस्थान प्रान्तीय व्यक्ति ही लाभान्वित नहीं हुये हैं, किन्तु भारत के सभी प्रान्त के व्यक्तियों को कठिन रोगों से छुटकारा प्राप्त हुआ है। आप आयुर्वेद के प्रगाढ़ विद्वान एवं सफल चिकित्सक हैं। आपके द्वारा जनता की जो पवित्र सेवा हुई

वह प्रान्त वासियों से छिपी हुई नहीं है। दीनहीन और कठिन रोगों से ग्रसित रोगियों के लिए आप प्राणदाता हैं। आपकी चिकित्सा प्रणाली इतनी सहज सिद्ध और मनमोहक है जिसमें आबाल वृद्ध सभी प्रभावित होते हैं। इसके साथ साथ भारत की सुप्रसिद्ध धर्म प्राण सेठ मगनीरामजी रामकुमारजी बाँगड़ भी धन्यवाद के पात्र हैं। जिन्होंने श्री वेङ्कटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना कर सञ्चालन कार्य एक महान सुयोग्य वैद्यजी के हाथों में रखा। भगवान वैद्यजी को—चिरायु करें।

× × × ×

श्रीमान् वैद्य गुलराज शर्मा मिश्र-आयुर्वेदाचार्य

[मेम्बर—मध्य प्रदेश आयुर्वेद मेडिकल बोर्ड-नागपुर]

श्रीमान प्राणाचार्य श्री गंगासहाय जी के अभिनन्दनार्थ जो उपक्रम आरम्भ किया गया है वह सर्वथा अनुपम है। श्री वैद्य जी ने आतुर जनों की जिस प्रकार सेवा की है और आयुर्वेद की प्रतिष्ठा को आलोकित किया है उसका प्रत्युपकार हम लोगों के लिये असंभव है। राजस्थान ही नहीं अपितु पूरे भारत के जन जीवन में आपके आदर्श चिकित्सा कार्य ने बड़े महत्व का सहयोग किया है। एतदर्थ आप सब प्रकार से अभिनन्दन के अधिकारी हैं।

× × × ×

वैद्य पं० नन्दकिशोर शास्त्री-आयुर्वेदाचार्य

[नन्दन फार्मेसी, रायपुर-मध्य प्रदेश]

पं० श्री गंगासहाय जी शर्मा शास्त्री को उनकी सेवाओं के उपलक्ष में जो अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का विचार किया गया है वह परमस्तुत्य और सराहनीय है। मेरी इसमें हार्दिक सम्मति है।

× × × ×

वैद्य श्री श्यामलालजी शर्मा

[भानुप्रताप महा विद्यालय जिला पेप्सु]

पं० श्री गंगासहाय जी के अभिनन्दन से आयुर्वेद की सेवा करने वालों को प्रोत्साहन मिलेगा। वैद्य जी महाराज की सेवायें हैं भी अभिनन्दन करने योग्य।

भगवान् से प्रार्थना है कि वह उन्हें अधिक काल तक जन सेवा करने की शक्ति दें।

× × × ×

वैद्य श्री रामनारायणजी

[श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० झाँसी]

हमें बड़ा हर्ष है कि आयुर्वेद के विद्वान् पं० गंगासहायजी का सम्मान किया जा रहा है। होना ही चाहिये।

× × × ×

श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार

[सम्पादक—"कल्याण" गोरखपुर]

आपका आयोजन उत्तम है। मैं आपके आयोजन की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

कविराज डा० अम्बिकादत्तजी शास्त्री

[वैद्य सर्जन A. M. S. (B. H. U.) आयुर्वेदाचार्य साहित्याचार्य साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, पुराणतीर्थ, आयुर्वेद ग्रन्थ सम्पादक प्रिंसिपलः— श्री रामकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर (म० भा०)]

श्री वेंकटेश्वर आयुर्वेदिक चिकित्सालयस्य प्रधान चिकित्सकेभ्यः श्री गंगासहाय शर्मा शास्त्रि वर्येभ्यो दीयमानाभिनन्दन ग्रन्थो मे मनसि महद्दुद्धवमुत्पादयति। शास्त्रिवर्मा योग्या आर्तानां कृते कारुणिकाश्च। जगन्नियन्तारं जगदीश्वरं भूयो भूयस्तेषां सर्वतोमुखी-समुन्नत्यर्थं दीर्घायुष्यार्थञ्च प्रार्थये।

श्रीमान् पं० रमाकान्तजी झा

[स० सम्पादक—"सचित्र आयुर्वेद", कलकत्ता]

पं० गंगासहायजी वैद्य का आप लोग अभिनन्दन कर रहे हैं, जानकर प्रसन्नता हुई। आप लोग मेरी ओर से पंडित जी के प्रति शुभ कामना प्रकट करें।

× × × ×

वैद्य पं० रामगोपालजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

[श्रीमती कृष्णाबाई रूइया दातव्य औषधालय, कोलभाट लेन, बम्बई २.]

श्रीमान् प्राणाचार्य पं० गंगासहाय जी शर्मा शास्त्री प्रधान वैद्य श्री वेंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय डीडवाना को उनकी आयुर्वेदिक सेवाओं के उपलक्ष में वहां की जनता द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ देने के निश्चय से हार्दिक प्रसन्नता हुई, यह अभिनन्दन आयुर्वेद की महत्ता तथा परोपकार परायणता है जिसके निमित्त पं० गंगासहाय जी हैं। वैद्य समुदाय को इस कृतज्ञता पूर्ण समारोह से पूर्ण सहानुभूति है, मैं इस समारोह की सफलता चाहता हूँ। भगवान वैद्य जी को दीर्घायु करें।

× × × ×

श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार, नई देहली

प्राणाचार्य पं० गंगासहाय आयुर्वेद शास्त्री राजस्थान के उन विशिष्ट विद्वानों और आयुर्वेदाचार्य में से हैं जिन्होंने भारत की पुरातनतम चिकित्साप्रणाली को अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रखने का यशस्वी प्रयत्न किया है और अपने उद्योग द्वारा अक्षय यश व पुण्य प्राप्त किया है। आयुर्वेद को पांचवां वेद कहा गया है और उसकी रक्षा करना वैसा ही आवश्यक है, जैसा कि वेदों की रक्षा करना आवश्यक समझा गया है मुसलमानों के लगभग १२-१३ सौ वर्षों में भी आयुर्वेद के लिए वैसी विपरीत परिस्थिति पैदा नहीं हुई थी जैसी की अंग्रेजी राज में पिछले डेढसौ-दोसौ वर्षों में पैदा हुई।

हमारा दुर्भाग्य यह है कि देश के स्वतन्त्र हो जाने पर भी आयुर्वेद के सिर पर मंडराने वाली काली घटायें दूर नहीं हो रही हैं और भारतीयता की हामी भरने वाले हमारे आज कल के शासकों में भी उसकी रक्षा के महत्व को पूरी तरह नहीं समझाते इन विपरीत परिस्थियों में आयुर्वेद की रक्षा वृद्धि और समृद्धि का प्रयत्न पहले भी अधिक उत्साह से और व्यापकरूप में किया जाना आवश्यक है। इसलिये जो जो विज्ञान और विशेषज्ञ इस प्रयत्न में संलग्न हैं उनकी और उनके प्रयत्नों की विशेष सराहना की जानी चाहिये। हमारे देश के धनी मानी सेठ साहूकारों ने लोकसेवा का जो अनेक कार्य विना किसी स्वार्थ के विशुद्ध जनसेवा की भावना से किये हैं, उनमें आयुर्वेद की रक्षा का स्थान प्रमुख है मारवाड़ी समाज का लाखों रुपया इस पुनीत कार्य में प्रति वर्ष खर्च होता है। डीडवाना के प्रमुख बांगड़ परिवार ने जो देश व्यापी लोकसेवा के कार्य एकसे एक बड़े कार्य किये हैं उनमें आयुर्वेद की रक्षा का स्थान प्रमुख हैं।

पूज्य श्री गंगासहायजी का उनको सहयोग मिलना सोने में सुगन्ध पैदा करने वाला है दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से आयुर्वेद की जो सेवा हुई है उसको प्राणाचार्य जी की साधना कहा जा सकता है। इस प्रकार साधक के रूप में अपने जीवन का उत्सर्ग करके उन्होंने जनता के हृदय में अपना जो स्थान बनाया है उसके लिये बहुतों को इर्ष्या हो सकती है अपनी इस वृद्धावस्था में आप अपनी उसी साधना में लगे हुए हैं।

हम अपने पुराने ग्रन्थों में योगियों और तपस्वियों का विशेष वर्णन पढते हैं भगवान कृष्ण ने गीता में योगः कर्म आदि शब्दों में अपने कर्म में कुशलता का सम्पादन करना ही योग कहा है भगवान कृष्ण की इस व्याख्या अथवा परिभाषा के अनुसार प्राणाचार्य जी को सच्चा योगी कहना चाहिये। ऐसे अद्वितीय विद्वान पियूष पाणि-कर्म योगी और साधक के प्रति अभिनन्दन समारोह के अवसर पर मैं अपनी पुनीत सम्मति अर्पित करता हूँ।

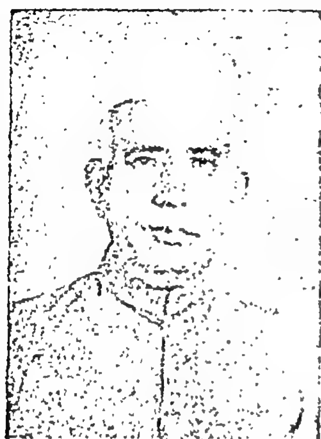
× × × ×

राजमान्य आयुर्वेद मार्तण्ड श्री उदयचंद्रजी भट्टारक (जोधपुर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि प्राणाचार्य श्री गंगासहायजी का अभिनन्दन हो रहा है। इस पुनीत कार्य के लिये वार्धक्यजन्य रोग से ग्रस्त होते हुए भी मैं सदा तत्पर हूँ।

श्री पं० विश्वनाथजी सारस्वत 'साहित्यरत्न'

[सम्पादक 'लोक सेवक' यवत माल और 'प्रजाबन्धु' सीकर]



मैं आयुर्वेदज्ञ नहीं हूँ, पर मेरे कुटुम्बी लोग इस संजीवनी विद्या के बड़े विशेषज्ञ हुए हैं। अतः इस विद्या के चमत्कारों से मैं अपरिचित नहीं हूँ। इसमें जो विशेषतायें हैं, वे 'जठठ भारती' वैद्यों से प्रकट नहीं हो सकती। उन्हें अपने विशेषानुभव से जनता के आगे रखने वाले वैद्य सर्व साधारण वैद्यों की श्रेणी से ऊपर होते हैं उन्हीं से आयुर्वेद गौरवान्वित होता है।

मेरे एक साथी स्वर्गीय डाक्टर रामजीवन त्रिपाठी साहित्यरत्न, एक बार जब फतहपुर में अखिल भारतीय वैद्य महा सम्मेलन हुआ था, तो उसकी स्वागत समिति के प्रधान मंत्री बनाये गये थे, उनमें यह विशेषता थी कि वे डाक्टर होते हुए भी आयुर्वेद की विशेषताओं से अनभिज्ञ नहीं थे, वह एलोपैथी और आयुर्वेद में समन्वय के समर्थक होते हुए भी आयुर्वेदिक विशेषताओं की प्रशंसा किया करते थे; तब से मुझे भी आयुर्वेद पर विशेष श्रद्धा होगई। मैंने उनके द्वारा कितने ही आयुर्वेदिक योगों को काम में लिया और उन्हें अव्यर्थ तथा चमत्कार पूर्ण पाया।

हर्ष का विषय है कि डीडवाना के वयोज्ञान वृद्ध वैद्य गंगासहायजी प्राणाचार्य व्यास के राजस्थान में एक विशिष्ट वैद्य हैं। उनका सम्मान करने से जहां आयुर्वेद की विशेषता आगे आयेगी, वहां उदीयमान विद्वान वैद्यों को भी जन सेवा करने का उत्साह मिलेगा।

मैं जगदीश्वर से उनके दीर्घ जीवन की मंगल कामना करता हूं। और अभिनन्दन समारोह की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

× × × ×

राजवैद्य आचार्य श्री नित्यानन्दजी शास्त्री भिषगाचार्य

[प्रिंसिपल बिड़ला आयुर्वेद कालेज, पिलानी]

पियूषपाणि श्री गंगासहायजी शास्त्री का अभिनन्दन करना आयुर्वेद जगत् का एक आवश्यक कर्तव्य है। इस शुभ कार्य के लिये भगवान धन्वन्तरि से सदैव सदस्य सफलता चाहता हूं।

श्रीमान लाला बलदेव स्वरूप जी भटनागर

[मेम्बर-कन्स्टीटयूट एसेम्बली आफ इंडिया, मंत्री—राजस्थान विकास मंडल न्यू देहली]



हमारी संस्कृति में आयुर्वेद की कितनी महत्ता है, यह एक इसी बात से प्रकट है कि आयुर्वेद को पांचवा वेद कहा जाता है।

अंग्रेजों ने यहां आकर यहां के विश्वविख्यात कला-कौशल को नष्ट किया और अपने देश की हल्की चीजें प्रचलित की, इसी प्रकार कम लागत और अधिक मूल्य की अंग्रेजी औषधियों को प्रचलित करने के लिये एलोपैथी को प्रोत्साहन दिया और आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को को उखाड़ फेंकने का हर प्रकार से प्रयत्न किया, किन्तु वे पूर्णतया ऐसा न कर सके।

हर जगह की चिकित्सा पद्धति वहां के वायु, पानी पर निर्भर है, सो यहां की बहुतसी जड़ी बूटियों को अंग्रेज लोग ले जाते और फिर अंग्रेजी नाम देकर अनेक गुना मूल्य वसूल करते आज भी बहुत कुछ ऐसा ही हो रहा है। यद्यपि स्वाधीनता मिलने के बाद कुछ अन्तर अवश्य पड़ा है, परन्तु जैसा परिवर्तन होना चाहिये था वैसा नहीं हुआ। अस्तु!

मैं वैद्य श्री गङ्गासहाय जी के सम्पर्क में जब से आया हूँ, तभी से उनकी विद्वता रोग-निदान तथा चिकित्सा से बहुत प्रभावित हूँ। उनकी चिकित्सा से सन्तोष होता है। उन्होंने जीवन भर आयुर्वेद की सेवा की है। अतः पंडित जी का अभिनन्दन करना कृतज्ञ जनता का धर्म है। मैं जगदीश्वर से इस अभिनन्दन को पूर्ण सफलता देने का प्रार्थी हूँ।

× × × ×

अभिनन्दन

वैद्यप्रवर गंगासहाय ! लो मेरा वन्दन !
ओ दुबली-पतली काया वाले काल-जयी,
हे अमर यशस्वी,
अथक तपस्वी,
धन्वन्तरि के पुत्र ज्येष्ठतम,
श्रेष्ठ चिकित्सक,
आज तुम्हारे अभिनन्दन की शुभ वेला में-
(अपनी अपनी शक्ति मुताबिक)
कोई पूजा-थाल सजाकर,
कोई यशोगान को गाकर,
कोई कंचन-मणि बिखराकर
करता है सम्मान तुम्हारा।
मधु के दिवस शिशिर की रातें,
रिमझिम रिमझिम यह बरसातें,
नभ के तारों की बारातें
गाती हैं यश-गीत तुम्हारे।
लेकिन:—
मैं यह सोच रहा हूं,
जिसके यशोगान की गाथा
राजथली की हर कुटिया में,
डगर डगर में,
ग्राम ग्राम में,
नगर नगर में
गूंज रही है;
जिसके चरणों की ध्वनि सुनकर
काल-पुरुष थर्रा जाता है;
जो मुर्दों को जीवन-दान दिया करता है,
जग को दे अमृत की बूंदें
खुद विष-पान किया करता है—
उस महा-महिम की अमर-कथा
औ' कोटि कोटि कंठों से निकला
'जय-ध्वनि' का यह तुमुल नाद
है एक ओर
और दूसरी ओर
(कि) मैं हूँ एक इकाई
तुतले स्वर में
क्या गाऊँ ?
कैसे गाऊँ ?
मैं तो केवल निर्धन कवि हूँ
(कहने में लज्जा आती है)
क्या है मुझ पर ऐसा
जिसको आज तुम्हारे अर्पित कर दूं,
इन पुनीत चरणों में धर दूं,
किन्तु.—
जरा तुम दो क्षण ठहरो,
मेरे उर की अमर देन,
यह छन्द तुम्हें अर्पित करता हूं,
आशा है स्वीकार करोगे।

वाँगड कुल भूषण,
श्रेष्ठिप्रवर श्री मगनीरामजी—
के रुग्णालय में की हैं
तुमने जो सेवाएँ—
अमर रहेंगी,
जब तक धरती,
जब तक सूरज,
जब तक नभ में चाँद सितारे।

हे कीर्तिमान् !
आधुनिक दधीचि !
तुमको पाकर
मरु-जंगल की सूखी धरती
बन गई सहज ही नन्दन-वन,
मैं इतना ही गा सकता हूँ —
'जय, जय, जय, जय अभिनन्दन !
वैद्यप्रवर गंगासहाय ! लो मेरा वन्दन !'

—कुञ्जबिहारी व्यास

× × × ×

कविराज श्री नानकचन्द्रजी शास्त्री

[स्वर्णपदक प्राप्त, देहली]

प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहाय जी शर्मा शास्त्री की दीर्घायु के लिये सानुनय भगवान् श्री धन्वन्तरि से प्रार्थना करता हूं कि भगवान् श्री शास्त्री जी को दीर्घायु प्रदान करें ताकि ये अपने अनुभव द्वारा जनता जनार्दन की निष्काम सेवा करते हुए यश के भागी हों और राजस्थान की कीर्ति बढ़ाते हुए वैद्यों में संगठन का उपदेश प्रदान कर इस न्यूनता को पूर्ण करें।

× × × ×

महामहोपदेशको विद्यावाचस्पति पं० प्रभुदत्तजी शास्त्री

नानायोग विधान चिन्तन चणों नित्य प्रसून प्रियः।
आरोग्यानुदुहोधरो रसवशाः संजीवनी जीवनः॥
पंचोस्याभिरुचिः शुचिः कनकजैः पुष्पैः सदाशोभितः।
जीयात् शम्भुसमो महामतिधरो गङ्गासहायोभिषक्॥

× × × ×

श्रीमान् पं० रामेश्वरप्रसादजी भार्गव

[जिलाधीश सीकर, राजस्थान]



यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जो वस्तु परीक्षण और अनुभव की दिव्य आंखों से देखी जाकर जनता के आगे आयेगी, उसकी हित-कारिता अथवा उपयोगिता निःसन्देह कही जा सकती है। कौन नहीं जानता कि भारतीय आयुर्वेद विद्या तपःपूत योगि-वर्य महर्षि चरक, सुश्रुत और वाग्भट जैसे पारगामी विद्वानों की अनुभव जात शोध का ही सुन्दर परिणाम है।

भारतवर्ष जैसे सांस्कृतिक देश में यह आयुर्वेद विद्या कितने पुरातन काल से चल रही है, इसका प्रवर्तन कब से शुरू हुआ, आदि प्रश्नों के विवाद में न जाकर भी यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली इस विशाल देश की प्राचीन से प्राचीनतम प्रणाली है। भारत में यवनों और अंग्रेजों के आने से पहले यही एक मात्र सर्वमान्य पद्धति थी, जिसके नियमों का पालन कर भारतवासी आजीवन आरोग्यवान् हुआ करते थे। इससे इसकी प्राचीनता कितनी बड़ी और व्यापक है, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

इस देश में अंग्रेजी राज के साथ आयुर्वेदेतर चिकित्सा प्रणाली आई, और सत्ता का बल पाकर वह आयुर्वेद समकक्ष अथवा कहीं २ उससे भी कुछ बढ़कर हो गई। पर ग्रामीण भारत में आज भी वही पुरातन चिकित्सा प्रणाली अपने गुणों के कारण [illegible] अटल है।

आयुर्वेद विद्या को समयानुसार उपयोगी बनाने वाले विद्वानों की कमी के कारण

कुछ हानि हुई है। पर वह ऐसी नहीं है, कि जिसकी पूर्ति न हो सके। आयुर्वेद के पारदर्शी विद्वान इस कमी को पूर्ण कर सकते हैं।

मुझे बताया गया है कि प्राणाचार्य पंडित गंगासहायजी वैद्य ऐसे ही विद्वान् वैद्यों में से एक हैं, जिन्होंने आयुर्वेद को अग्रसर बनाने में प्राचीन और अर्वाचीन पद्धतियों के सराहनीय समन्वय से काम लिया है। पंडित जी की सेवाओं के सम्मानार्थ डीडवाना (मारवाड़) में मारवाड़ की जनता द्वारा एक अभिन्दन समारोह का आयोजन किया गया है, गुणियों के गुण का सम्मान भारतवर्ष की पुरानी परम्परा है। मैं पंडित जी के इस सम्मान समारोह की सफलता चाहता हूँ।



श्री मन्मथकुमार मिश्र एम० ए० एडवोकेट सीकर
[अध्यक्ष सीकर नगर पालिका]



भारतीय चिकित्सा विज्ञान की आधार भूमि आयुर्वेद प्रणाली इस महान् राष्ट्र की समुज्ज्वल निधि है जिसके सुयोजित विकास और सत्वर संवर्धन का पवित्रभार हमारी सबल राष्ट्रीय सरकार के कंधों पर आ पड़ा है। आधुनिक विज्ञान-प्रकृति-प्रधान समाज में जन-रुचि आयुर्वेदीय पद्धति की ओर अधिकाधिक अनुरक्त और आकर्षित हो यह सुखद वातावरण अब निर्मित होगा यह एक समस्या है, जिसका समाधान आयुर्वेद जगत् के उन कर्णधारों पर आश्रित है, जिनकी विद्वत्ता और कार्यकुशलता लोकमानस पर अमिट रूप में अंकित है। किन्तु यह तभी संभव है जब सरकार द्वारा आयुर्वेदीय शैली विशेष संरक्षण के साथ सम्मानित हो और उसे राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली के उच्चासन पर विराजित किया जाय। आयुर्वेद विश्व के सुप्रसिद्ध विद्वान श्रद्धेय श्री गंगासहायजी की अमूल्य सेवाओं का जो सम्मान हो रहा है वह वास्तव में आयुर्वेद के चमत्कार पूर्ण पक्ष का अभिनन्दन है। मैं इस शुभावसर पर उनके प्रति अपनी शुभेच्छाओं की श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं इस विश्वास के साथ कि उनके विशाल प्रयत्न आयुर्वेद की प्राचीन महिमा को पुनर्जीवित करने में सहायक सिद्ध होंगे और इस चिकित्सा में नवीन रक्त का संचार होगा।

× × × ×

श्री वासुदेव मिश्र आयुर्वेदाचार्य लक्ष्मणगढ़ (सीकर)

वैद्य के लिये जो गुण वैद्यक ग्रंथों में बताये हैं, वे सब प्रा० पं० गंगासहायजी में उदित हुए हैं, यह मैंने पिछले समय मारवाड़ में फैले हुए मलेरिया ज्वर के परिहारार्थ भ्रमण करते हुए उनमें देखा। अतः वैद्यजी का सार्वजनिक अभिनन्दन सर्वथा युक्त है।

श्रीमान् पं० गोविन्दप्रसादजी शर्मा सुन्दरिया

[प्रणेता:—खाँडल विप्र इतिहास और राष्ट्रीय वैदिक गान]



राष्ट्रीय शब्द की परिभाषा राष्ट्रव्यापी शब्द में अधिक सुबोध हो जाती है। राष्ट्रीय वस्तु वही कही जा सकती है, जिसके सम्बन्ध में राष्ट्र का अधिकांश जनमत जानकारी रखता हो और जो अधिकांश जनता के दैनिक उपयोग में आती हो। यह सच है कि भारतीय जनता आयुर्वेद से पर्याप्त परिचय तथा स्नेह रखती है। क्योंकि पथ्य, अनुपान, दिन चर्या, से प्रत्येक वयस्क परिचित है और उपयोग में लाता है। रोगी फिर चाहे वह किसी भी चिकित्सा प्रणाली के चिकित्सक से चिकित्सा कराता हो, अनुपान, पथ्य, दिन चर्या आदि के बारे में अवश्य ही परामर्श लेगा और उसका अनुसरण करेगा, जबकि आयुर्वेद के अतिरिक्त किसी भी अन्य चिकित्सा प्रणाली में ये बातें प्रयोग में नहीं आती। भारत का अधिकांश भाग वैद्यों से ही भरा पड़ा है। ८५ प्रतिशत जनता आज भी इसी की उपासक है। अब रहा राज्याश्रय का प्रश्न। उसके सम्बन्ध में तो हमारा निवेदन यह है कि आज प्रजा का युग है अतः जो चिकित्सा प्रणाली प्रजा के अधिकांश भाग को मान्य है, वही राज्यमान्य बनेगी आज के जन राज्य ने इस तथ्य को मानना शुरू भी कर दिया है। जैसे कि आयुर्वैदिक कालेज, फार्मेसी, चिकित्सालयों के उद्घाटन एवं डिप्टी डाइरेक्टर की नियुक्ति से स्पष्ट है। यही क्यों भारतीय राष्ट्र के राष्ट्रपति की मान्य चिकित्सा पद्धति भी यही है। आज भी ग्राम-सभाओं, नगर पालिकाओं, धारा सभाओं तथा लोकसभा में अन्य किसी भी पैथी के प्रतिनिधियों से कहीं अधिक संख्या में वैद्य प्रतिनिधि विराजमान हैं। केवल संविधान में एक प्रस्ताव द्वारा 'राष्ट्रीय चिकित्सा' के रूप में स्वीकार होना शेष है।

आज हम चारों ओर आयुर्वेद का प्रबल विरोध देख रहे हैं पर हम किसी के विरोधी नहीं हैं हो भी क्यों ? आयुर्वेद तो संसार की समस्त चिकित्सा प्रणालियों की जननी है, फिर जननी के द्वारा उसके पुत्रों का विरोध कैसे हो सकता है। हम किसी की प्रगति के विरोधी नहीं, न किसी की सहायता व मान्यता के बाधक। हम केवल यही चाहते हैं कि हमें भी स्वतन्त्र वायु मण्डल में विचरने दिया जावे। हमारी प्रगति के मार्ग में कोई रोड़ा न बने जिस प्रकार एलोपैथी को धनादि की सहायता दी जाती है, हम भी इसी राष्ट्र के नागरिक हैं और समानता के अधिकारी हैं, हमें भी हमारी आवश्यताओं के अनुरूप धनादि की सहायता में उदारता दिखाई जावे। हमें भी उन्नति करने के समान साधन उपलब्ध होने चाहिये। जो लोग आयुर्वेद का विरोध करते हैं यह उनका नहीं उनकी अल्पज्ञता का दोष है। वैद्यों को चाहिये कि ऐसे व्यक्तियों को आयुर्वेद की महानता से परिचित किया जावे। अपने निजी राष्ट्रीय भण्डार को देख लेने पर वह अवश्य अपना हट छोड़कर आयुर्वेद से स्नेह करने लगेंगे।

प्राणाचार्य श्री गंगासहायजी शास्त्री के ऐसे ही सब प्रयत्न हैं कि जिससे आयुर्वेद के अनेक अंगों को बल मिला है, उनकी हीरक जयन्ती समस्त वैद्य समाज को अभिनन्दित करने वाली एक घटना है। नये दृष्टिकोण और नीतिरीति से आयुर्वेद की सेवा करने वाले महार रथियों में वैद्यराज गंगासहायजी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वैद्य गङ्गासहायजी शास्त्री शतजीवि हों इस सेवा के फलस्वरूप अर्थ तथा यशलाभ करते हुये आयुर्वेद की सेवा करने में अधिक समर्थ हों।



श्री आबिद्‌अली

[उपश्रम मंत्री केन्द्रीय शासन]

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप लोग एक ऐसे विद्वान का सम्मान और अभिनन्दन कर रहे हैं जिसने आयुर्वेद की भारतीय चिकित्सा प्रणाली के पुनरुद्धार करने में अपने जीवन का इतना बड़ा हिस्सा लगा दिया है। मैंने पू० महात्मा गांधी के सत्याग्रह और असहयोग के उस काल में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था जबकि हम अपने सारे ही देश को स्वदेशी के रंग में रंग देने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे अपने उस संकल्प की पूर्ति के लिये हमने यथा सम्भव पूरा प्रयत्न किया और स्वदेश के हर क्षेत्र में स्वदेशी की स्थापना करने में अपने को तन्मय कर दिया उसके लिये हमने यथा सम्भव अधिक से अधिक त्याग, बलिदान और उत्सर्ग भी किया। पुलिस की लाठियाँ गोलियाँ और जेल की यातनायें भी सहन की आज यदि हम अपने उस संकल्प को भूल जाते हैं तो हमारे लिये यह कोई शोभा की बात नहीं है।

मैं यह अनुभव करता हूं कि स्वदेशी के सिद्धान्त को अपनी चिकित्सा प्रणाली के क्षेत्र में भी क्यों न लागू किया जाय वह प्रणाली हमारे स्वभाव के, हमारी शरीर रचना के और हमारी प्रकृतियों के सर्वथा अनुकूल है। हमारा देश देहातों में अत्यन्त गरीबी परिस्थिति में रहता है, उसके लिये आयुर्वेद की प्रणाली ही सर्वथा उपयुक्त हो सकती है उस प्रणाली के पुनरुज्जीवित करने में जिन विद्वान वैद्य प्रा० गंगासहायजी ने अपने जीवन की लगभग आधी सदी बितादी उसकी जितनी सराहना की जाय, कम है आप एक गुणीजन का सम्मान करके दूसरों को भी उनके आदर्श का अनुकरण करने के लिये प्रेरित कर रहे हैं इसलिये मैं आपके इस समारोह की हृदय से सफलता चाहता हूँ। और आपके साथ अपने को भी सम्मिलित करता हूँ।



श्रीमान पं० कन्हैयालालजी भेड़ा आयुर्वेदाचार्य बम्बई

१

गंगाया इव निर्मलः शुचिमना विद्वाँस्तथा धार्मिक।
आयुर्वेद विशारदश्च धृतिमान् नाड़ी परीक्षाविधौ॥
डिडूवाना भिजनोऽग्रजश्च विबुधो वृद्धेषु वैद्याग्रणीः।
श्रीमान् वै नितरां सुखं विजयतां गङ्गासहायो भिषक्॥

२

सुखाय भूयाद् भुवि वर्ष-वृद्धि।
श्चिकित्सकानां भवतां "जयन्ती"॥
भवन्ति रुग्णा अरुजः सहायं।
किञ्चो भवेऽस्मिन् भवतामवाप्य॥

३

अध्यापिता ये मनुजा भवद्भि।
र्वृद्धत्रयीं श्चैव तथान्य ग्रन्थान॥
विद्यार्थिनस्तेऽद्य तथान्य वैद्याः।
संभूय कुर्वन्ति भवज्जयन्तीम्॥

४

वेदादि वेदाङ्ग समस्त शास्त्र।
ज्ञानं पुरासीद् भुवि भूसुरेषु॥
जीवन्तु सन्तः शरदां शतं ते (भवन्तः)।
भवादृशा वेद—विदां वरिष्ठाः॥

५

चिकित्सकानां गणना—प्रसङ्गे।
भवादृशानां विदुषां कदाचित॥
भवादृशा एव चिकित्सकेषु।
द्वित्रा भवेयुर्न ततोऽधिकाश्च॥

६

गंगा सहायो भवसागरं वै।
ततुं समर्थोन भवेत् किमेतम्॥
गङ्गा सहायो न तरेन् कियेतम्।
रुग्ण राशि सिन्धु सुरुजं समर्थः॥

× × × ×

श्री रतनलालजी मित्तल आई० कॉम०

[डीडवाना (राजस्थान) की शुभ कामना]



हमारा राजस्थान सदा से गुण पूजक रहा है। इस प्रांत की गुण पूजकता की गाथायें सुनकर जो गुणी लोग दूसरे प्रान्तों से यहाँ आकर आबाद हुए, हमारे प्रान्त ने सदैव उनके गुणों का योग्य और उचित आदर किया। इस दृष्टि से हमारा प्रांत प्रांतियता की संकीर्ण भावनाओं से ऊँचा उठा हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। हमारे राष्ट्र वादी नेता जिस प्रांतियता की भावना को छोड़ कर सारे देश को अपना समझने की भावना उत्पन्न करना चाहते हैं, राजस्थान के द्वारा वह उदार भावना पहले से ही अपनाई हुई है।

लोक प्रिय और गुण निधान पं० गंगासहायजी आयुर्वेद शास्त्री अब से ४० वर्ष पहले अमरोहा (मुरादाबाद) से जब डीडवाने में आये और इनके गुणरूपी पुष्पों का सौंदर्य जब मारवाड़ की गुण ग्राहक जनता को विदित हुई तो वह पंडितजी के प्रति उसी तरह से आकृष्ट होने लगी जिस प्रकार सुगन्धित पुष्प के प्रति भ्रमरों का

समूह आकर्षित हो जाता है। गुण यदि योग्य व्यक्ति के पास हो तो फलता फूलता है और अयोग्य व्यक्ति के पास आये हुए गुण भी दोष के रूप में परिणत हो जाते हैं। पंडितजी गुणी होने के साथ साथ बड़े व्यवहार कुशल और मिलनसार हैं। इनके सम्पर्क में एक बार जो व्यक्ति आ जाता है वह हमेशा के लिये इनका हो जाता है।

पंडितजी से मेरा बहुकालीन सम्पर्क है। मैंने वैद्यजी के सम्पर्क में रहते हुए यह अनुभव किया कि रोगी के रोग को औषधियों से नष्ट करने के पूर्व अपने मधुर और स्नेह सरल व्यवहार से थोड़ी देर के लिये उसे स्वस्थ बनाने की चातुरी जैसी वैद्यजी महाराज में देखी, वैसी कहीं नहीं देखी।

वैद्यजी महाराज ने कई प्रकार की पेटेन्ट औषधियों का भी निमार्ण किया है जो कि इमने नीति कारखाने Upper India (Chamical Pharmacy Didwana) में ही, इनकी पूर्ण रूप से देख रेख में तैयार की जाती हैं। ये औषधियाँ अपने अद्भुत गुणों के कारण प्रसिद्ध हो चुकी हैं। तथा इनके गुणों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनका मूल नहीं के बराबर है। मैंने स्वद—कोमाद, किरान, पिलार, तिवर स्पेसिफिक्, ट्रकोसिना इत्यादि दवाईयों को प्रयोग में लाकर देखा है तथा सौ प्रतिशत गुणकारी पाया है।

महान हर्ष का विषय है कि मारवाड़ की गुण पूजक जनता एक गुणी वैद्य का जैसा सम्मान होना चाहिए वैसा ही कर रही है। मैं भगवान परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे वैद्यजी महाराज को चिरायु करें जिससे लम्बे समय तक मारवाड़ की जनता को स्वास्थ्य लाभ मिलता रहे।



श्री श्रीगोपालजी करवा, कलकत्ता

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष है कि राजस्थान की जनता की ओर से वैद्यराज श्री गंगासहायजी को एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया जारहा है। वास्तव में पंडितजी की सेवाओं को सम्मानित करने का और कोई तरीका नहीं हो सकता था। पण्डितजी से मेरा परिचय बाल्यकाल से ही है और मैंने अनेक बार उनकी चिकित्सा से लाभ उठाया है। वे एक अत्यन्त सफल चिकित्सक होने के साथ-साथ एक माहा मानव भी हैं। मैं परम पिता परमात्मा से उनके दीर्घजीवन की प्रार्थना करता हूँ।

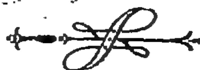
× × × ×

श्री चाँदरतन जी मोहता

[प्रधान मंत्री, राजस्थान माहेश्वरी सम्मेलन, साँभर लेक]

यह जानकर अत्यन्त आनन्द हो रहा है कि प्राणाचार्य श्री पं० गङ्गासहायजी वैद्य शास्त्री, डीडवाना, राजस्थान, के अभिनन्दन समारोह का आयोजन ता० २६-४-५६ को किया जा रहा है। पण्डितजी गत ५० वर्षों से आयुर्वेदिक विधि द्वारा जनता जनार्दन की अमूल्य सेवा कर रहे हैं। आपके सरल स्वभाव, मृदुभाषण एवं स्नेहमय मुस्कान से ही रोगी का आधा रोग दूर हो जाता है। बड़े बड़े डिग्रीधारी डाक्टरों ने जिनको असाध्य कह दिया, उनकी सफल चिकित्सा कर, प्राणदान देकर आपने आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की कीर्ति में चार चाँद लगाये हैं।

परम पिता परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि आयुर्वेद के परम उपासक पण्डितजी को सुखप्रद स्वास्थ्य प्रदान करे चिरायु करे ताकि सर्वसाधारण जनता उनके अनुभव से लाभान्वित होती रहे।





श्रीमान् मान० बाबू गजाधरजी सोमानी
एम. पी.

जो केन्द्रीय लोक-सभा में आयुर्वेद के पक्ष का समर्थन करते रहते हैं और जिनसे वैद्यजी के अभिनन्दन समारोह को अपेक्षित सहयोग प्राप्त हुआ है।



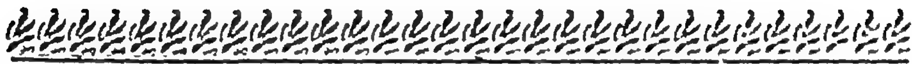
श्रीमान् पं० प्रेमशंकरजी शर्मा

डायरेक्टर, आयुर्वेद विभाग, राजस्थान
राजस्थान में आयुर्वेदिक क्रान्ति के लिए आप सतत प्रयत्न कर रहे हैं।

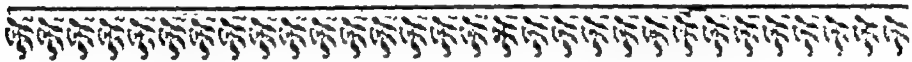


मान० श्री आबिदअलीजी

उप-श्रम मन्त्री, केन्द्रीय शासन
जो आयुर्वेद के प्रसार को स्वदेशी की तरह राष्ट्रीय प्रेम बनाने के हामी हैं।



आयुर्वेदज्ञ विद्वानों के उपयोगी लेख



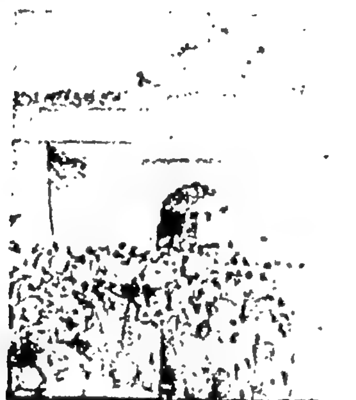
प्राणाचार्य श्री पं० गंगासहायजी शास्त्री का अभिनन्दन समारोह



















हर्ष और उल्लास से भरी जनता द्वारा किया गया
आनन्दमय और अपूर्व स्वागत

वेदों और आयुर्वेद का सम्बन्ध

[ले०—आयुर्वेद बृहस्पति-वैद्यराज पं० च्यालीरामजी द्विवेदी,
आयुर्वेदाचार्य, डी. एस. सी. ए., इन्दौर]

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है—

> ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः।
> विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवायुर्वेदञ्चकार सः॥

इससे प्रतीत होता है कि आद्य ब्रह्म-संहिता नामक चिकित्सा संग्रह किसी एक स्वतन्त्र प्रतिभा का चमत्कार नहीं था, प्रत्युत अशेष विद्यानिधान वेद पुरुष का ही आविष्कार था जिसका प्रचलित भाषा में संकलन ब्रह्मदेव ने कर दिया था। वेदों में विशेष कर अथर्ववेद में चिकित्सा विषय उपलब्ध होते हैं-इसलिये सुश्रुत ने लिखा है—

"इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोक शतसहस्र मध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः। चरक ने भी कहा है—

"तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृग्यजुः सामथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्याः।

वैसे तो चारों वेदों में ही चिकित्सा शास्त्र के विषय उपलब्ध होते हैं, परन्तु अन्तिम अथर्ववेद में, स्वस्त्ययन, बलि, मंगल, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, मन्त्र आदि का विशेष विवरण विकारोपशमार्थ मिलता है। यह चिकित्सा तीन प्रकार की चिकित्साओं में से "दैवव्यापाश्रय" चिकित्सा का बोध कराती है। जैसा कि चरक ने लिखा है—

"त्रिविधमौषधम्-दैवव्यापाश्रयं—युक्तिव्यापाश्रयं-सत्त्वावजयश्च। तत्र दैवव्यापाश्रयं, मन्त्रौषधि, मणिमंगल—बल्युपहार-होम-नियम—प्रायश्चित्तोपवास-स्वस्त्ययन-प्रणिपात-तीर्थगमनादि।"

चरक ने अपने तन्त्र में अथर्ववेदों को अत्यधिक गौरव प्रदान किया है। यथा शारीरस्थान में लिखा है-"अस्माभिरथर्ववेदविदः"—शा० ८ सू० ७६। "[illegible] अथर्ववेदविहितम् [illegible] शान्तिं कुर्यात्"—शा० ८ सू० १०६। चरक और सुश्रुत में इस प्रकार के वाक्य बहुत हैं। व्यवहार की अनुकूलता की दृष्टि से आयुर्वेद को किसी भी वेद का उपवेद मानिये, किन्तु आयुर्वेद

का ऋक् आदि वेदों से वलवान् और अनादि सम्बन्ध है, यह सुनिश्चित है। आयुर्वेद में गृहीन वहुत से वैदिक विषय, वेदों में उपलब्ध हैं उनमें से कुछेक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

यजुर्वेद में—"असुश्च मे चितश्च मे मनश्च मे"

अथर्ववेद में—अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोद्धा, पुरं यो ब्राह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते इति पुरुष लक्षणम्, केन पार्ष्णी केन मांसं केन गुल्फौ केनाङ्गुली केन पेशनी केन नखानि केनोच्छ्लं कस्मान्नु गुल्फावधरौ अष्ठीवन्तावुत्तरौ जङ्घे जानुनोः स्सान्धिजानुभ्यांभूर्ध्वंशिथिरं कबन्धं श्रोणी यदूरु, कुंसिन्धमुरो ग्रीवास्तनौ कफौडौ स्कन्धान् पृष्ठी वाहु अंसौ सप्तखानि शीर्पाणि कर्णौ नासिके चक्षाणि मुखं हन्वोर्हि जिह्वा मस्तिष्कं ललाटं काटिकां कपालम्। कां १०, अ १, सू० २।

उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अकूच्याद् हृदयात् क्लीमलोहलीक्षणात् मतस्नाभ्यां प्लीहो यक्नस्ते। आन्त्रेभ्यः गुदाभ्यो वनिष्टोरुदरात् कुक्षिभ्यः प्लशिनाभ्यां अपदाभ्यां भसद्यं भासदं मंससी अस्थिभ्यो मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनीभ्यः लोम्नि त्वचस्य। अथर्व-कां २ अं० ६ सू० ३३।

शुक्रममृतं जनयन्यरेतः। पू० अ० १४ यास्ते शतं धवनयो अंगान्यनु विशिष्टिताः तासां ते सर्वासाम्। अथर्व-कां० ६ अ० १० सू० ६० शतस्य धमनीनाम् सहस्रस्य हिराणाम्। अस्थुरिमध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत। अथर्व कां० १, अ. ४ सू० १७ विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै-चरित्राय। यजुः पू० अ० १३ म० १६।

इत्यादि वाक्यों में आयुर्वेदीय शारीर में विद्यमान अंग, प्रत्यङ्गों सप्तधातुओं, स्नायु, धमनी और शिराओं के नाम उपलब्ध है। मन, चित्त और प्राण तथा पुरुप के शब्द के अर्थ लक्षण, एवं निर्वचन का भले प्रकार वर्णन हैं।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संश्रितानि। अथर्व-कां० १० अ० १. सू० ६।

यहाँ पर योग विभाग से पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन का अर्थलाभ होता है। मन इन्द्रिय है वह सिद्ध होता हैं तथा मन का स्थान हृदय है यह भी सिद्ध हो जाता हैं।

को अस्मिन्न्यायो व्यदधात् विपवृतः पूरुवृतः सिन्धु सृत्थायजाताः तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रा धूम्रा अर्ध्वोर्वाचीः पुरुवेण

तिरश्चीः।—अथर्व—कां० १० अ० १० सू० २।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्, अपो याचामि भेषजम्, अप्सु मे सोमो अब्रवी दन्तर्विश्वानि भेषजा आपः प्रणीत भेषजम्। अथर्व—कां० १ अ० १. सू० ४, ५, ६।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु। अथर्व-कां० २ अ० ६ सू० ३२।

या ओषधिः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनैनु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च। शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुतं वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदङ्कृत।

पुष्पवतीः प्रसूवरीः वीरुधः। यजुः पू० अ० १२ मं० ७४, ७६, ७८।

अथो कृणोमि भेषजम् यथा सन्धन हायनः। वराहो वेद वीरुदं नकुलो वेद भेषजीम्। सर्पा गन्धर्वा यां विदुस्ता अस्मा अवमे हुवे। यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्याः यावतीनामजावयः। तावतीस्तुभ्यमोषधि शर्म यच्छन्त्या [illegible]। यावतीषु मनुष्याः भेषज भिषजो विदुः पुष्पवतीः प्रसूमती फलिनीरफला। अथर्व-कां० ८ अ० ४ सू० ७।

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः [illegible]। अथर्व—कां० ६ अ० १४ सू० १३९।

यहां पर "शतं धामानि सप्त च" इस मन्त्र में प्रधानतया धामनों की १०७ गिनती की है। दूसरे मन्त्र में [illegible] से सहस्र संख्या बताई है। जिन औषधों को अजा, अवि, मृग, पक्षी, हंस, सर्प, सुपर्ण, नकुल, वराह गन्धर्व, मनुष्य, आदि जानते हैं उनका उपयोग सबके सुख के लिये वेद द्वारा करना निर्दिष्ट है। कुष्ठ, [illegible] दर्भ, दूर्वा, रोहिणी, [illegible] [illegible] अपामार्ग, पृश्निपर्णी [illegible], आदि बहुत से भेषजों के वीर्य, गुण, कर्म पृथक् करके वर्णन किये गये हैं। यदि उन सबका उल्लेख किया जावे तो एक बड़े ग्रन्थ की पृथक् अपेक्षा होगी। इसी भांति विष चिकित्सा के बहुत से भेषजों और उपायों का वेदों में वर्णन है। यथा—

[illegible] दुन्दुभि[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

—अथर्व-कां० ४ अ० [illegible] सू० [illegible]।

इस सूक्त में वर्णित विषय का ही वर्णन सुश्रुत ने कल्पस्थान के दुन्दुभिस्वनीय अध्याय में व्याख्यान किया है। इस प्रकार

से दुन्दुभि पताका, तोरणों के लिम्पन का विधान है, जिनके श्रवण, दर्शन और स्पर्श से विषमुक्ति हो जाती है।

प्रियाप्रियाणि बहुला संवाधतन्द्रः (—अथर्व काँ० १० अ० १ स० २)

इस मन्त्र के द्वारा सुस्वप्न और दुःस्वप्नों की अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करके तन्द्रा को प्रस्तुत किया है।

"मिमातिमापुं पयते पयोभिः (कां० ६ अ० १ मं० ८)

"वातात् ते प्राणमविदम् (कां० ७ अ० १ सू० ७)

"नाभिः लमानानां भूपांसं (कां० १६ सू० २)

"यकृत्क्लोमानं वरुणो भिपज्यम् मतस्न वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्। (यजुः, पू० १२ मं० ८५)

"आसो वलासो भवतु" (कां० ६. अ० सू० ६)

"सप्तप्राणाः सप्तपानाः सप्तव्यानाः (कां० १५ अ० २ सू० १५)

"प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मे" (पृ० अ० १८)

इन मन्त्रों में वात, पित्त और कफ के नाम और उनकी क्रियाओं का वर्णन है।

उक्त विवरण के द्वारा वेदों और आयुर्वेद के शारीर शास्त्र सम्वन्धी सम्बन्ध का वोध होता है।

"यस्मान्मासा तिर्मातास्त्रिंशदरः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः।

(कां० ४ अ० ८ सू० ३५)

"तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ।

(कां० १५ अ० १ सू० ३)

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद् हेमन्त शिशिरो वसन्तः ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोराये पृथिवीनि दुहातां।

(अथर्व-कां० १२, अ० १, सू० १)

न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम्। (अथर्व-कां० १५ अ० २ सू० १२)

ये देवयाना पितृयाणाश्च लोका सर्वान् पथो अनृणा आक्षिपेयम्। क्रव्यादमग्निं शशमानयुक्थं प्रहिणोमि पथिभिः पितृयाणैः। मा देवयानैः पुनरागा अत्रैवैधि पितृपु जागृहिन्वम्।

(अथर्व-कां० १२, अ० २, सू० २)

यहाँ पर पितृयाण का अर्थ दक्षिणायन और देवपान का अर्थ उत्तरायण है इन मन्त्रों द्वारा आयुर्वेदोक्त क्षणादि विसर्ग और आदानात्मक मासव ऋतुओं में विभक्त काल का ज्ञान कराया गया है।

"कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।

(अथर्व—कां० १६, अ० सू० ५३)

इस मन्त्र में परिणामशील काल का ज्ञान कराया गया है।

"शं न आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः सनिष्यदाः वर्ष्या धन्वन्याः अनूप्याः खनित्रिमाः कुम्भेभिराभृत-: अनभ्रयः खनमानाः दिव्यानामणं स्त्रोतस्यानां।

(अथर्व-कां० १९, अ० ५ सू० १४)

इन मन्त्रों में काल, देश, आधार, रूप उपाधियों द्वारा विभक्त जल के भेदों का विवरण दिया गया है, इसी के अनुसार आयुर्वेद में द्रव्यों के प्रकरण में वर्णन किया गया है।

"अस्थिस्त्रंसं परुस्त्रंसं हृदयामयं

(अथर्व० का० ६ अ० ५ सू० १४)

"अग्निस्तक्मानमपबाधतां बलासं कासमुद्युगं बलासेन कासीकया तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिं शारदं। तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकं।

(अथर्व० कां० ५ अ० ५ सू० २२)

"यो अक्ष्यौ परिसर्पति, यो नासे परिसर्पति, दतां यो मध्यं गच्छति, तं क्रिमि जम्भयामसि।

(अथर्व-कां० ५ अ० ५, सू० २३)

"अयो दासा आञ्जनस्य तस्मा बलास आदहिः। (अथर्व-कां० ४ अ० ११ सू० ५)

"यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् बस्तावधि संश्रुतं। एते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम्। (अथर्व-कां० १ अ० १, सू० ३)

"स्त्रीणां श्रोणि प्रतोदित इन्द्ररक्षांसि नाशय।

"शीर्पक्ति शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितं शीर्षण्यं कंकूपेभ्यः रोगं विसल्पकं अंगभेदं अंगज्वरं विश्वांग्यं। यक्ष्म अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके पद्मं हिरमाणं ते अन्त्रेभ्योप्त्वा मन्तरोदरान्। सर्वेषां विषं निरवोचं काहाबाहं।

(अथर्व-कां० ६ अ० ५, सू० ८)

"तद्विषं सर्पा उपाजीवन्ति (अथर्व-कां० ८ अ० ५, सू० ५)

श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च (अथर्व- कां० ८ अ० ५, सू० ८)

इदं तमात्स्वद्वयं विषूची विग्रहामसि

इस प्रकार बहुत से मन्त्रों और वाक्यों में अनेक रोगों के नामों का वर्णन है इस प्रकार वेद और आयुर्वेद का रोग विषय में पारम्परिक सम्बन्ध सुस्पष्ट होता है।

वेदों में न केवल कायचिकित्सा, बल्कि शल्य चिकित्सा आदि अन्य अंगों का

भी पर्याप्त वर्णन मिलता है। जिन सज्जनों को वेद और आयुर्वेद का सम्बन्ध दृढ़तर व्यवहारिक बनाना अभिप्रेत है, उन्हें दोनों साहित्यों का परिश्रम पूर्वक परिशीलन करके चिकित्सा विषयों का आविष्कार करना चाहिये।

ऊपर जो "अप्स्वन्तरमृतं उद्यन्नादित्यः" इत्यादि मन्त्र हैं इन वाक्यों में यह बताया गया है कि जल और सूर्य स्वास्थ्य संरक्षण में किस प्रकार प्रयोजक होते हैं। वायु आदि की भी स्वास्थ्य प्रयोजकता प्रतिपादित की गई है।

बिना उपकरण की सहायता के अदृश्य क्रिमियों का भी वेदों में विशद वर्णन है जिनसे ज्वर, राजयक्ष्मा, आदि संक्रामक रोग उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ कुछ मन्त्र नीचे उद्धृत हैं—

क्रिमे विश्वस्य तर्हणी दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहं। अलगंडून ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुस्वप्स्वन्तः ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद् हन्मि जनिम क्रिमीणाम्।

(अथर्व—कां० २, अ० ४, सू० ३१)

प्रसंगवश न केवल अदृष्ट क्रिमियों की भी सूचना दी गई है। अस्वास्थ्य के कारण विविध कीट, मक्षिका, सरीसृप, आदि के नाम और कर्मों का भी वर्णन है।

आयुर्वेद का कोई भी अंग या उपांग अथवा सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसका नाम एवं विवरण वैदिक भाषा में न मिले। बहुत सी बातों की मौलिक यथार्थता की परीक्षा वेदों के अनुशीलन से होती है। अनेक प्रकार की शरीर संज्ञायें रोगवाचक नाम आदि के निर्णय में वेद आज भी आयुर्वेद के अनुपम सहायक हैं।

आयुर्वेद के विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वैदिक आयुर्वेद का अनुशीलन और मनन करके आयुर्वेदिक विप्रतिपत्तियों का निराकरण करें। एवं नवीन शोध करके आयुर्वेद की श्रीवृद्धि तथा जन-कल्याण के पुनीत कार्य में आवश्यक योग-दान देवें।



गुरुवर्य्य—जिनकी विशेष कृपा से वैद्य श्री गंगासहायजी ने आयुर्वेद की शिक्षा पाई



वैद्यराज
श्री पं० रामसहायजी शर्मा शास्त्री
महाविद्यालय, मेरठ।

राजवैद्य
श्री पं० रामस्वरूपजी
शर्मा
भिषगाचार्य

ललित हरी संस्कृत कालेज
पीलीभीत।

वैद्यवर्य
श्री दुर्गादत्तजी पन्त
भिषगाचार्य

मुरादाबाद, लखनऊ,
गढ़वाल

वैद्यरत्न
श्री पांडेयजी भिषगाचार्य
पीलीभीत



वैद्य श्री अम्बादत्तजी शर्मा कुचामन

आप श्री पं० गङ्गासहायजी शर्मा के प्रधान शिष्यों में से हैं। आपने पंडितजी के सहवास में रह कर आयुर्वेद की क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त की है। आजकल आप कुचामन (राजस्थान) में स्वतन्त्र रूप से औषधालय का संचालन कर रहे हैं। आप एक यशस्वी, उदार हृदय और क्रिया कुशल वैद्य हैं। कुचामन में जहाँ आप स्वयं यश-अर्जन कर रहे हैं वहाँ श्री वैद्यजी की कीर्ति-कौमुदी को भी प्रसारित कर रहे हैं।

भोजन और स्वास्थ्य

[ले०:—डा० कविराज प्रतापसिंह, डी. एस. सी.
प्रिन्सिपल आयुर्वेदिक कालेज, इन्दौर]

भारतवर्ष गरीब देश है, यह पुकार पुकार कर देश के नेता और नागरिक जहाँ जहाँ अपने भाषणों में प्रकाशित करते हैं और इसको दूर करने के लिये विविध प्रकार की योजनायें बनाते हैं एवं इन योजनाओं पर करड़ों रुपये देश वासियों के करके रूप में वसूल करते हैं। पर बेकारी का प्रश्न जैसा का तैसा विद्यमान है।

मैंने प्रतिदिन रोगियों के सम्पर्क में उनकी आर्थिक दशा का अध्ययन प्रारम्भ किया है। अब तक के मेरे अध्ययन का परिणाम यह है कि जनता अपनी आय का उचित व्यय करना नहीं जानती। उदाहरण के लिये भोजन का ही प्रश्न विचार करने लायक है। जो भोजन-सामग्री आज मिल रही है उसमें पर्याप्त पोषकतत्व नहीं हैं। एक साधारण परिवार चाय पीने का आदि हो गया है, चाय के साथ २ कुछ नाश्ता लेने का रिवाज भी अंग्रेजों के समय से चल पड़ा है। नाश्ते की चीजें प्रायः बाजार से खरीदी जाती हैं, ये चीजें कई दिनों की बासी और विकृत होती हैं। इनके खाने में तत्क्षण आधार तो हो जाता है, किन्तु शरीर की आवश्यक पूर्ति नहीं होती।

अनेक श्रमिक केवल भूंजा धान की लावा खाकर चाय पी लेते हैं और कठिन परिश्रम करते हैं। परिणाम यह होता है कि पेट में चाय का पानी ही ज्यादा होता है। थोड़ी देर चाय की स्फूर्तिदायक शक्ति से मनुष्य श्रम करता रहता है और फिर अपने काम में उसका जी नहीं लगता है। इस दशा से मालिक के काम में हानि होती है और श्रमिक अयोग्य समझा जाता है। इस क्षति की पूर्ति के लिये न्यूक्लिक एसिड नामक एक रासायनिक भोजन का आविष्कार योरप अमेरिका जर्मनी आदि देशों के विज्ञ विद्वानों ने किया है। यह द्रव्य दूध और मटर, कपास के बीज नारियल और चुकन्दर के अन्दर स्वभावतः प्राप्त होता है। इसको पृथक् करके टिकिया के रूप में बनाकर आज बाजार में ऊँचे दामों से बेच रहे हैं और एक २ रोगी को २० से ४० टिकिया खाने को आज के डाक्टर

सलाह देते हैं। वह साधारण व्यक्ति के लिये बहुत महंगी पड़ती है, किन्तु उनकी तारीफ इतनी की जाती है कि बेचारे रोगी मजबूर होकर अपनी मानसिक और शारीरिक दुर्बल स्थिति को संभालने के लिए इसका सेवन करते हैं और महती आर्थिक हानि के लिये भींकते हैं। इस दयनीय दशा को देखकर—"नेशनल केमिकल लेबोरेटरी पूना ने इस विषय में बहुत सा काम किया है और उसने पता लगाया है कि २० लाख पाउन्ड ग्लूटामिक एसिड अमेरिका केवल मांस के भोजनों में मिलाकर अपने श्रमिकों को खिलाता है और उतना ही सूप में मिलाकर पिलाता है और दस लाख पाउन्ड नियमानुसार चाय, काफी, पिलाने वाले दुकानदारों को देता है।

जापान ने इसी एसिड को गेहूँ और सोयाबीन से बनाना शुरू किया है और लाखों पाउण्ड अपने यहां के श्रमिकों को खिलाता है।

खेद इस बात का है कि हमारे देश में श्रमिकों की खुराक को बढ़ाने के लिये कोई यत्न नहीं किया गया। लोबिया, चना चावल, जुवार, मक्का, जौ और गेहूं में यह तत्व विद्यमान है, किन्तु इसका उपयोग हम जिस रूप में करते हैं, वह शरीर का पोषण करने में समर्थ नहीं होता; क्योंकि मनुष्य को भोजन में चार प्रकार के तत्व चाहिये।

(१) प्रोटीन—मांस, दुग्ध, अण्डा आदि।

(२) स्टार्च—चावल, आटा(गेहूँ) निशास्ता, मैदा, आदि।

(३) फैट—चर्वी, घृत, तैल, वसा, मज्जा आदि

(४) साल्ट—(नमक) लवण, शाक, फल आदि।

किन्तु इन चारों का ठीक २ सन्तुलन न हो तब तक शरीर की पूर्ण रूप से पुष्टि नहीं होती। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश के निरामिष भोजियों के लिये विशेष खुराक का संशोधन किया जावे जिससे स्वल्प व्यय में साधारण गृहस्थ पौष्टिक भोजन पा सके।

मैंने अपने दीर्घचिकित्सा व्यवसाय में भोजन के विषय में कुछ अनुभव किये हैं वे पाठकों के लाभार्थ यहां उपस्थित करता हूं। मैंने स्वयं और सैकड़ों रोगियों पर इन भोज्य चीजों का प्रयोग किया है और कर रहा हूं। पाठक स्वयं बनाकर इसका अनुभव करके जनता की सेवा के लिये प्रकाशित कर देश सेवा करें।

एक छटांक बेसन एक पाव गेहूँ का आटा मिला कर तिल्ली के तेल का या घीका थोड़ा सा मोण दें और इस आटे को दूध

में सान लें। जब रोटी बनाने लायक गुन्द जाये तो इसके रोटी बनाने लायक पेड़े बनाकर उसमें मेथी पालक उबले हुए आलू और मूली आदि को पीस कर और नमक मसाला आदि देकर और सम्भवतः अदरक अजवाइन मिर्च आदि मिलाकर उस पीठी को दोनों पेड़ों के बीच में भरदें और बेल कर रोटी सेकें या घी या तेल देकर पराठा बनालें। एक या दो पराठा बिना किसी दाल भाजी के खाने से तृप्ति हो जाती है और शरीर की भी अच्छी पुष्टि हो जाती है। यदि यह नहीं बना सकें तो निम्नलिखित ढंग से सत्तू बना कर रखलें और चाय या दूध के साथ एक या दो चम्मच दिन में दो बार ले लिया करें इससे भी ग्लूटेमिक एसिड काफी मात्रा में मिल जाता है। कैप्टन डा० कृपलानी इसका प्रयोग प्रतिदिन करते हैं और अनेक व्यक्तियों को करा रहे हैं। इसके अलावा और कुछ नाश्ता नहीं करवाते।

(१) गेहूँ की धानी (२) जव की धानी (३) मक्का का फूला (४) जवार का फूला (५) चावल के मुरमुरे छिला और भुना चना। इन सब चीजों को अच्छी तरह साफ करके और चक्की में बारीक पिसवा कर बोतल में भरकर रखलें। चाय या दूध की एक प्याली या गरम पानी की एक प्याली में एक से दो छोटे चम्मच इस सत्तू को घोल कर यथेष्ट शक्कर मिलाकर पीलेने से शरीर में अच्छी स्फूर्ति पैदा हो जाती है और नाश्ता की आवश्यकता नहीं रहती। इसके प्रयोग से मासिक एक से दो रुपये प्रति व्यक्ति खर्चा आता है। जो बच्चे स्कूल जाते हैं और उनके माँ बाप मध्याह्न के अवकाश के समय चाट खाने के लिए जो पैसे देते हैं, यह बच्चे के स्वास्थ्य के लिये महान हानिकर है। ऐसे बच्चों को नीचे लिखी खुराक देने से बड़ा ही लाभ होता है। बनाने का विधान यह है।

१. सूखे नारियल की गिरी आधापाव
२. बादाम की गिरी ,,
३. साफ की हुई किसमिस ,,
४. छुहारा (खारक) ,,
५. छिला हुआ भुना चना—आधासेर

इन सब को कूट कर बारीक चूर्ण बना लें और बराबर की चीनी मिला कर बोतल में भर कर सुरक्षित रखलें। एक तोले से पांच तोले तक बच्चे की खुराक के अनुसार दिन भर में खिला सकते हैं। इसके खाने से दिल दिमाग में अच्छी शक्ति मिलती है और शरीर पुष्ट होता है।

पाठक अनुभव कर देखें।

मंत्र–तंत्र–ज्यौतिष और आयुर्वेद

[ले०—श्री योगिराज महर्षि स्वामी माधवानन्दजी महाराज]

आयुर्वेद अथर्व वेद का उपांग है। यह आयुर्वेद संहिता इस समय यथावत् उपलब्ध नहीं होती। ऋग्वेद के १०-१७ में वैद्य के लक्षण बताये हैं इस दृष्टि से आयुर्वेद का सम्बन्ध सभी वेदों से है। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में वायुचिकित्सा, जल चिकित्सा, मंत्र चिकित्सा आदि हैं। मंत्र, जल और औषधि इन तीनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे ऋग्वेद में कहा है कि 'जल' वैद्यम भेपजम 'आपो दृष्ठे' इत्यादि। प्रत्येक औषधी अभिमंत्रित कर देने से अधिक लाभ करती है। जल को अभिमंत्रित करने से भी वह लाभदायक होता है। क्योंकि औषधी का बीज जल में ही है। जल भी मंत्र भावना द्वारा संकल्प के अनुसार रुग्ण की व्याधि को कम करता है।

वेद में ४ प्रकार की चिकित्सा बताई हैं, यथा—दैवी, मानुषी, आथर्वणी और आंगीरसी। मंत्र, यज्ञादि से की जानेवाली चिकित्सा दैवी; औषधोपचार से की जाने वाली मानुषी, सम्मोहनी विद्या (मिस्मरेज्म) जादूटोना और तंत्र-कृत्यादि से की जाने वाली आथर्वणी और योग तथा मानसिक उपायों से की जाने वाली चिकित्सा आंगीरसी कहलाती है।

हरेक औषधी को ॐ ह्रीं भास्कराय भगवते नमः इस मंत्र के साथ अभिमंत्रित कर देने से जादू का सा फल देती है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि में जैसे हिताहित भोजनों का वर्गीकरण है, इसी प्रकार नक्षत्रों के साथ औषधियों का वर्गीकरण ज्यौतिष-सम्बन्ध को प्रकट करता है। ज्योतिष में यह प्रकरण बहुधा मिलता है कि अमुक औषधि अमुक नक्षत्र में अमुक मंत्र के साथ देने से विशेष फलवती होती है। सूर्य और चन्द्र ये दोनों ही औषधियों के पोषक कहे गये हैं; पर सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा अधिक पोषक बताया गया है। चन्द्रमा का 'औषधीनां पतिः' यह विशेषण इस बात का प्रमाण है। रोहिणी नक्षत्र में सूर्य की रश्मियों द्वारा जिन बूंटियों को पोषण मिला है वे बूंटियां १० दिन के बजाय एक दिन में अपना प्रभाव दिखा सकती हैं। रोहिणी नक्षत्र में अथर्व-वेद के एक मंत्र से उखाड़ी हुई

अपामार्ग की जड़ बुखार वाले को तत्काल फल देती है। ज्योतिष के नक्षत्रों का आयुर्वेद के साथ विशेष सम्बन्ध है। यथा—अश्विनीनक्षत्र में जन्म लेने वाले को अश्विनी नक्षत्र के समय 'इषेत्वोर्जेत्वा' इस यजर्वेदी मंत्र को ११ वार पढ़ कर रात के ११ बजे उखाड़ कर देने से वातव्याधिशान्त हो जाती है। जिनकी आँखें खराब हैं, उन्हें शरद पूर्णिमा के दिन नेत्रोपनिषद के पाठ के पढ़ते हुए श्वेत प्रनर्नवा को उखाड़ कर सुरमे में मिलाकर उपयोग करने से नेत्र रोग मिट जाता है। इसके अतिरिक्त जन्मकुंडली के हिसाब से गोचर में जब गुरु अश्विनी नक्षत्र में होता है, और वह दूसरे स्थान को देखता भी है, उस समय नेत्रोपनिषद के मंत्र पढ़ते हुए प्रनर्नवा की जड़ को उखाड़ कर उसके लड्डू बनाकर ११ दिन खावे तो जन्म भर गृध्र जैसी दृष्टि रहती है। लड्डू खाते समय उसे तांत्रिक गुरुमंत्र से अभिमंत्रित कर देना चाहिये।

रोग उत्पन्न तब होते हैं, जब मनुष्य का मन और तन दोनों विकृत हों। खास कर मन के विकृत होने से तन (शरीर) भी विकृत हो जाता है, जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। लिखा है कि 'अचिन्तया वराह इव पुष्यति जनः' इस लिये आयुर्वेद ने स्वस्थ और सुखी रहने के नियम इस प्रकार बताये हैं।

> नरो हिताहार विहार सेवी,
> समीक्ष कारी विषयेष्व् असक्तः।
> दाता समः सत्यपरः क्षमावान,
> आप्तोपसेवी स भवत्यरोगः।

मन स्वस्थ्य रहे, इसके लिये योग में 'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षा सुख-दुःख पुण्या-पुण्य विषयाणां भावनातश्चित प्रसादनम् आदि उपाय बताये हैं, जिनसे चित को प्रसन्न रखना चाहिये। वैज्ञानिक दृष्टि से मन की प्रसन्नता शरीर को बदल देती है। जैसे-किसी को शुभ समाचार सुनते ही उदासीनता दूर होकर उत्साह मिलता है। मंत्र से मनुष्य के दिल में यही भावना बैठाई जाती है कि मैं रुग्ण नहीं हूँ उसके साथ साथ यदि औषधोपचार भी हो तो सोने में सुगन्ध का संचार हो जाता है।

श्वेतार्क के मूल को खोदकर उसमें सूर्य की प्राण-प्रतिष्ठा कर सूर्य-कवच के मंत्र रोजाना पढ़े जावे तो मनुष्य शतंजीवी हो सकता है। सूर्य के दैनिक उपस्थान में 'शतंजीवेम शरदः' इस उक्ति का यही आशय है।

मनुष्य बिमार कब होता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मानसिक दुःख

के कारण शरीर के स्तंभ रूप वात, पित्त और कफ जब कुपित हो जाते हैं तो शरीर रुग्ण हो जाता है। मन के ऊपर जितना मंत्र और विश्वास का असर होता है उतना औषधि का नहीं। इसलिये यदि औषधि मंत्र और विश्वास के साथ हो तो आश्चर्य जनक फल देती है। उपर्युक्त त्रिदोष शरीर की समावस्था में शरीर के संचालक तथा पोषक रहते हैं और विषमावस्था में विकारोत्पादक बन जाते हैं। यों तो शारीरिक और मानसिक २ प्रकार के रोग हैं, किन्तु इनके अधिष्ठानों में वे ४ प्रकार के बन जाते हैं। १ आगन्तुक २ शारीरिक, ३ मानसिक, ४ स्वाभाविक। आगन्तुक रोगों के कारण अभिघात, अभिषंग, अभिचार, अभिशाप, दहन और भूतोप सर्गादि होते हैं। जैसा कि सुश्रुत में लिखा है—

समदोषः समाग्निश्च, समधातु मलक्रियः
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थइत्यभिधीयते

शारीरिक, मानसिक और स्वाभाविक तो स्पष्ट ही है।

एलोपैथिक तथा आयुर्वेद में मौलिक भेद है, एलोपैथी में रक्त को तथा आयुर्वेद में रस को प्रधान माना गया है। एलोपैथी वाले जितना ध्यान जर्म्स का रखते हैं, उतना जीवन का नहीं। इसका मतलब यह नहीं है कि आयुर्वेद कीटाणु विज्ञान से शून्य है। यजुर्वेद के १६-६५ में 'येअन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिवतो जनान्' और अथर्व वेद के २।३१।४ मंडल में विविध प्रकार के कीटाणुओं की ६ जातियाँ बताई गई हैं। यथा १ अवस्कव, २ व्यावर, ३ कुसरू, ४ अलगुंड, ५ छलुन, ६ रुद्र। इनमें अन्तिम रुद्र संक्रामक हैं। भीम बल्व आदि अन्य प्रकार के कीटाणु भी बताये गये हैं, जिनके नाश के लिये वच तथा रुद्रवंती आदि से हवन यज्ञ किया जाता है।

भारतीय दृष्टिकोण से औषधी का खास मतलब कीटाणु नाश नहीं, उसका अर्थ है, दोष-मलादि को धोना। दोष मलादि, समावस्था में तो अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं। भारतीय औषधी विज्ञान बताता है कि प्रत्येक मनुष्य-समूह में औषधी द्वारा रोग-प्रतिबन्ध की शक्ति इतनी बढ़ाई जावे कि वह कीटाणु संक्रमण को सर्वथा विफल करदे। विपरीत भावों को सहने की विशिष्ट क्षमता मनुष्य और कीटाणु दोनों में ही समान है। आयुर्वेद के इस मूल सिद्धान्त को एलोपैथी नहीं जानती। यही मौलिक भेद उसमें और

आयुर्वेद में है। एलोपैथी कीटाणुओं का वर्गीकरण करती है, और उनको नष्ट करने के प्रयत्न में लगी रहती है। आयुर्वेद मनुष्यों का वर्गीकरण करता है और उनकी रक्षा में प्रयत्न करता है। कीटाणु नाशक इंजेक्शन तथा औषधियों की घातकता एक विशेष सीमा से आगे नहीं बढाई जानी चाहिए। सीमा से आगे बढ़ जाने पर वे औषधियाँ अपने कार्य-क्षेत्र का उल्लंघन कर मनुष्य के जीवन पर ही आघात करने लगती हैं, जो सर्वथा हेय है।

एक अमेरिकन डाक्टर ने कुछ समय पहले कहा था कि साल में २५ हजार आदमियों का हार्ट फेल केवल इंजेक्शन से होता है। इसका कारण उपर्युक्त कीटाणु-संतुलन के ज्ञान का अभाव ही है। आज मानव को स्वस्थ बनाने के लिये जितने प्रकार की पैथियाँ प्रचलित हैं, उन सब में आयुर्वेद सर्वोत्तम है। सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि 'यस्य देशस्ययो जन्तुः तस्यतज्जौपधंहितम्' यदि आयुर्वेद को मंत्र, तंत्र और ज्योतिष से ग्रथित कर दिया जावे तो सोने में सुगन्ध का काम करेगा। किन्तु सुन्दर स्वास्थ्य चाहने वालों को यह श्लोक हमेशा याद रखना चाहिये कि—

पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणैः
पथ्येसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणैः



विश्व की प्राचीनतम सर्पविद्या*

[ले०—आचार्य श्री नित्यानन्दजी आयुर्वेद ऋषिअर्चन
विरला संस्कृत कॉलेज पिलानी]

आदि सृष्टि की कल्पना कीजिये। समुद्र अपनी लहरों से कल्लोल करता होगा। नदियां और झरने भी निर्बाध रूप में वहते होंगे। कन्द, मूल, फल फूल जौ, गेहूँ, नीवार, घास फूस, आदि से पृथ्वी व्याप्त होगी। हाथी, घोड़े, गाय, भैंस बकरी आदि भी अपनी जंगली हालत में होंगे। उस समय ईश्वरेच्छा से मानव सृष्टि का आरम्भ हुआ होगा। यह भी सम्भव है कि मनुष्यका आदिम रूप किसी अन्य प्रकार का रहा हो और विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार इस अवस्था में पहुंचा हो कि हम उसे मनुष्य कह सकें। मनन से सब प्रकार की उन्नति करने के कारण इस प्राणी का नाम मनु, मनुष्य, मनुष् पड़ा होगा। (महर्षि यास्क कृत निरुक्त ३।७)

सबसे पहिले खाने की आवश्यकता पड़ी होगी। कन्द फल आदि से निर्वाह होते रहने पर भी धान्य को पकाने के लिए अग्नि का आविष्कार हुआ होगा, क्योंकि अग्नि के परम पुरातन काल से होने का वेदों में उल्लेख है। इसी प्रकार धीरे धीरे खेती करने की जरूरत महसूस हुई होगी। कभी कभी सांप बिच्छु जैसे विषैले जानवर भी मनुष्यों को काट लिया करते होंगे। इस हालत में विष का कुछ न कुछ उपचार अवश्य किया जाता होगा। आवश्यकता आविष्कारों की जननी होने के कारण इन उपचारों में परिष्कार की भावना रहती होगी, जिनको "सर्पविष विज्ञान" का व्यवस्थित प्रारम्भ कहा जा सकता है।

वैदिक काल में सर्पविद्या सांगोपांग

* सर्पविद्या के सम्बन्ध में फतहपुर (शेखावाटी) के स्वर्गीय डाक्टर रामजीवन त्रिपाठी ने भी एक बृहत् ग्रंथ, जो वहुत से भागों में विभक्त है, तैयार किया था, वे उसे विविध चित्रों सहित प्रेस कापी के रूप में तैयार कर चुके थे, किन्तु कराल काल की कुटिल गति ने ऐसा न होने दिया। हम आशा करते हैं कि उनके अभिन्न मित्र पं० विश्वनाथजी सारस्वत सम्पादक 'लोकसेवक' यवतमाल और प्रजाबन्धु' सीकर तथा डाक्टर साहब के सुयोग्य पुत्र रत्न पं० महावीरप्रसादजी त्रिपाठी और पं० इन्द्रलालजी त्रिपाठी उक्तग्रंथ को प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे। —सम्पादक

रूप से वर्णित की जा चुकी थी। इस सर्प-विद्या का अध्यापन तत्कालीन शिक्षा-प्रतिष्ठानों में कराया जाने लगा था। छान्दोग्योपनिषद् में स्पष्ट उल्लेख है:—

"अध्येमि...... ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां, सर्प, देवजन विद्याम् ......। (छान्दोग्योपनिषद्—७।१।२)

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारा सर्प विष सम्बन्धी ज्ञान परम प्राचीन है अथर्ववेद में कितने ही सूक्त इस विद्या की जानकारी से भरे हैं, जिनका हमें पर्यालोचन करना है।

वैदिक कालीन सांपों के भेद:—

ऋग्वेद में सर्प का उल्लेख हिंस्रक श्रेणी के जीवों में मिलता है।

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद
पिपीलः सर्व उतवा श्वापद।
अग्निष्टद् विश्वादगदङ् कृणोतु
सोमश्च यो ब्राह्मणां आविवेश॥
(ऋग्वेद १०।१६।६)।

कितने ही स्थानों पर सर्व वाचक "अहि" शब्द का प्रयोग किया गया है:—

"ये अग्निजा औषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः येषां जातानि बहुधा माहान्ति तेभ्य सर्पेभ्यो नमसा विधेम।"

सर्प शब्द सांपों की गति का बोधक है। वैसे ही 'अहि' नाम भी उनके हिंसक स्वभाव का द्योतक है। महर्षि यास्क ने अहि की निरुक्तियाँ की हैं:—'अहि नादेति अन्तरिक्षे अयमपीतरोऽहिरेतस्मादेव, निर्ह्सित उपसर्ग आहन्तीति'।

(निरुक्त—२-१७)

उस समय कई किस्म के सर्पों का उल्लेख मिलता है। हमें सर्पों की प्रत्येक जाति पर अलग से संक्षिप्त विचार करना है।

दर्वी—सर्पों की इस जाति का वर्णन अथर्ववेद (१०।४।१३) में है। उत्तर कालीन आयुर्वेद में इस जाति को दर्वी कर कहा गया है— दर्वीकरा मंडलिनो
राजीमन्तश्च पन्नगाः।
त्रिधा समासतो भौमा
विसिद्यन्ते त्वनेकधा॥

प्रतीत ऐसा होता है कि जिन साँपों का फन (अष्टाङ्ग हृदय) (दर्वी सूपचालन पात्रम् कुड़छी "इति लोके ख्यातम्") के समान था उनको दर्वी कहा जाने लगा। इस प्रकार के नाम करण की आज कल भी प्रथा है।

श्वित्र—इस जाति के सर्पों का कई मन्त्रों में उल्लेख है। वेदों के अतिरिक्त इस नाम सर्व वाचक प्रयोग मुझे उपलब्ध नहीं

है। महाभारत में "श्वित्र" सर्पों का उल्लेख तो नहीं है पर वहां जो "अनील" गिना गया है, वह सम्भवतः इसी जाति का बोधक है। यह जाति रंग से सफेद होती थी। रंग के आधार पर ही नाम करण किया गया है।

असित—वेद में जैसे श्वित्र को अलग गिन कर काले साँप को "असित" कहा गया है, वैसे ही महाभारत में असित को "नील" कहा गया है। नील को प्रधान्य देने का कारण इस जाति के अत्यन्त विषैली होने का है। इसके फन पर एक विशेष चिह्न होता है। बाद के वाङ्मय में इस जाति के सर्पों पर विस्तृत विचार किया गया है और उनकी उपजातियों का अलग नाम करण किया गया है।—

अनन्तो वासुकिः पद्मो
महापद्मोऽथ तक्षकः।
कर्कोटः कुलिकः शंख
इत्यष्टौ सर्प जातयः॥

अद्याश्व—साँपों की कुछ जातियाँ अत्यन्त जहरीली होती थीं और कुछ सर्प निर्विष भी होते थे। अद्याश्व जाति के सर्प जहरीले माने जाते और उसके काटे की दवा उस समय उपलब्ध थी। महाभारत में इस जाति को "अश्ववार" कहा गया है।

तिरश्चिराजि—जिन सांपों पर तिरछी रेखायें होती थीं, उनको "तिरश्चिराजि" कहा जाता था। वैदिक साहित्य में इस जाति के लिये "तिरश्चराजि" या तिरश्चन-राजि "शब्दों का भी प्रयोग होता था। बाद में सर्प वैद्यों ने तिरश्ची शब्द हटा दिया और वे इनको राजिमान्" या "राजिल" कहने लगे और जिन सर्पों पर बिलकुल रेखायें नहीं होती थीं, उनको "अपराजित" कहने लगे।

पृदाकु—इस जाति के सर्प अजगर की तरह विशाल होते थे इस जाति की स्त्रियों में अधिक उग्रता होती थी। वेद में इनका अलग से उल्लेख है।—

इन्द्रो मेहिमन्धमत् पृदाकुं च पृदाक्वम्
(अथर्व—१०।४।७)

इस जाति के सर्प चूहों को बड़ी आसानी से निगल जाते थे। वास्तव में "पृदाकु" "आखुपृद्" का बोधक है। वेदोत्तर कालीन सर्प-शास्त्रियों ने इस जाति को "मूषकाद" कहा है।

अजगरः—आश्चर्य की बात है कि आज की तरह सर्वसाधारण में प्रचलित अजगर शब्द से वैदिक काल में भी विशाल काय सर्प का बोध होता था—

"शिशुभारा अजगराः पुरीकया,
जषा मत्स्य जसा वेभ्यो अस्यति।
(अथर्व-१२/२/२५)

अजगर बकरे जैसे प्राणियों को भी सरलता से निगल जाते हैं (अजेन=अजनेन श्वास वलेन अथवा अजमपि गिरन्ति गृ निगरणे)

कसर्णील—इस प्रकार के साँपों का रंग मट मैला होता था ये रास्ते में भी लेट जाते थे। जब मनुष्य जल्दी में होते तो सर्प पर पैर पड़ जाता था। (कुत्सितायां सर्ल्यां = मार्गे लीनं = क्लिष्टम्)।

स्वजः—इस किस्म का भी अथर्ववेद के कई मंत्रों में उल्लेख है। वैसे तो सभी सर्पों में लिपटने की स्वाभाविक शक्ति होती है; किन्तु स्वज में लिपट जाने की ताकत अधिक होती थी। इस आधार पर इस जाति को "स्वज" कहने लगे। (स्वज आलिङ्गने)।

तैमालः—इस जाति का उल्लेख भी कई स्थानों पर है। तैमाल गीले स्थानों पर रहना पसन्द करते थे। इनका वर्ण पिङ्गल होता था—

"असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च"
(अथर्व—५/१३/६)

दशोनसीः—इस जाति के सर्प दंश से प्राणी को नष्ट कर देते थे। इनके अतिरिक्त निम्न जातियों के सर्पों का भी उल्लेख है:—

१. सरम २. सेरमक ३. सेवृध ४. थर्वा ५. सेवृधक ६. कल्माषग्रीव, ७. करिक्रत ८. कांनक्रत ९. आलिगी १०. विलिगी आदि।

साँपों का रहन सहन—

वेदों में साँपों के रहन सहन का भी वर्णन है। सर्प विभिन्न किस्म के घास फूस आदि के (साफ न होने वाले) ढेरों में अपना बसेरा लेते हैं। कुछ लकड़ी आदि के छिद्रों में घुसे रहते हैं और कुछ जलाशयों के किनारे की गन्दगी में छिपे रहते हैं। आज कल यह देखने में आया है कि साँप दूसरों के बनाये हुए बिल में अपना डेरा जमा लेते हैं। इसका उल्लेख कहीं नहीं मिल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिल में घुसे साँपों के किसी को बाधा न पहुंचाने के कारण उनका उल्लेख नहीं किया गया। वास्तव में साँप प्रायः दबने पर ही काटते हैं। इस दृष्टि कोण से सांप आदि जहरीले कीड़ों के निवास-स्थान देखियेः—

शरासः कुशरास दर्भासः सैर्याउत,
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत।
(ऋग्वेद १/१९१/३)

साँपों के दिखाई पड़ जाने पर हम अपनी सुरक्षा कर लेते हैं। सांप तभी सामना करता है, जब कि आत्मरक्षा के लिये ऐसा करना आवश्यक हो गया हो, अन्यथा वह अपने बचाव के लिये इधर उधर छिपने का प्रयास करता है। गौशाला आदि जिन स्थानों में आर्द्रता बनी रहती है और गन्दगी रहती है वहाँ साँपों के अदृष्ट होने की अधिक संभावना है।

(ऋग्वेद—१/१६१/४)

इस प्रकार के अदृष्ट साँपों को रात में फुसकार या चिप् जैसे शब्दों से पहिचाना जा सकता है और दिन में तो उन्हें उसी प्रकार ढूँढ़ा जा सकता है जैसे कि रात में छिपे चोरों को दिन में खोज निकालते हैं:—

एत उत्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव।
अदृश्य विश्व दृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन॥
(ऋग्वेद—१/१६१/५)

सर्दी के मौसम में साँप उपर्युक्त स्थानों में नहीं रहते, वे मारे ठंड के अपने बिलों में घुस जाते हैं। निश्चय ही वहां पर वे खाद्य सामग्री के अभाव में समाधि ले लेते होंगे और ऋतु अनुकूल होने पर बाहर निकलते होंगे। वैसे साँपों को वर्षा ऋतु पसन्द है। इस ऋतु में वे बाहर निकल जाते हैं और तरह तरह के जन्तुओं के पैदा होने के कारण उन्हें अपना भोजन आसानी से बना लेते हैं:—

यस्ते सर्पो वृश्चिक स्तृष्ट दंश्य,
हेमन्त जब्धो भृमलो गुहाशये।
क्रमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि,-
तन्न सर्पन्मोयस्मृपत्यच्छिवं तेन नो मृड्।
(अथर्व वेद—१२/१/१६)

प्रकृति का अनुपम प्राणी

क्या आपने कभी वर्षा ऋतु में हल्की उगी हुई घास पर स्वतन्त्र नाग को स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करते हुए देखा है? सपेरे की पिटारी और बन के सर्वतन्त्र स्वतन्त्र फण धरों में रात दिन का अन्तर है। एक बार मैंने साँप को काफी नजदीक से देखा था। बात यह है कि मुझे टहलने की पुरानी आदत है। कुछ वर्ष पहले मुझे एक ऐसे गाँव में रहना पड़ा, जहाँ कि साँपों की बहुतायत है। फिर भी मैं नदी के किनारे टहलने निकल जाता था। एक दिन घूम कर लौटते समय देखा कि नागराज भी नदी के किनारे टहलने घास पर सूर्य स्नान ले रहे हैं। मेरी आहट पाकर करवट बदली। फण फैलाया और जीभ लपलपाने लगे। मानो मुझ से पूछ रहे हों कि शत्रु हो या मित्र! कहने की जरूरत नहीं कि वे तेजी से बगल के जंगल

में घुस गये। तेजी से जाते हुए उस काले नाग का जो अनुपम सौन्दर्य प्रातः कालीन सुनहली धूप में देखा, वह आज भी याद है। प्रकृति ने इस जीव के निर्माण में मुक्तहस्त होकर सौन्दर्य का जो उपयोग किया है वह ईर्ष्या का विषय है। सहज ही खयाल उठता है कि इस प्रकार के अनुपमेय प्राणी का निर्माण क्या निरर्थक है ?

साँपों की उपयोगिता

साँपों के मारन, केंचुली, रक्त, अस्थि, जहर, मलमूत्र आदि सभी अङ्ग अनेक औषधियों प्रयुक्त होते हैं। सब से बड़ी उपयोगिता यह है कि ये साँप संसार के विष को स्वयं खींच लेते हैं और जगत को निर्विष करने की चेष्टा करते हैं। अथर्व वेद की कुछ ऋचाओं को देखियेः—

सोदक्रामत्, सा सर्पानागच्छत्, तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति। तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधुक्, तां विषमवाधोक्। तद्विषं सर्पा उपजीवन्ति।

(अथर्व—८/१०/१३-१६)

अर्थात्—दुनियाँ जब विष से उत्क्रान्त हो गई, तब वह सर्पों के पास आई। सर्पों ने स्वागत करते हुए कहा कि "हे विषवती यहाँ आवो" धृतराष्ट्र, ऐरावत, तक्षक आदि सर्पों ने उसके विष का दोहन किया जो कि सर्पों के पास है।

स्वभाव के अनुसार ही सब काम करते हैं, प्रत्येक अपने प्रति नियत रस को ही ग्रहण करता है। जिस प्रकार गन्ना मधुरता को ही पृथ्वी से खींचता है उसी प्रकार सर्प आदि विष को ले रहे हैं।

महात्मा गाँधी का विचार था कि साँप खेतों में नुकसान करने वाले अनेक जीवों को नष्ट कर हमारा उपकार करता है। वे कहा करते थे "हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिये कि सर्पों को भी उसी ईश्वर ने पैदा किया है। हम ईश्वर के सभी कार्यों को नहीं समझ सकते। ईश्वर ने शेर, सर्प, बिच्छू आदि को हमारे मारने के लिये नहीं बनाया है। वैदिक काल में साँपों की उपयोगिता स्पष्ट थी।

साँपों के महत्त्व को प्रगट करने के लिये पौराणिक काल में साँपों की उपासना की जाने लगी। सम्भवतः नागपञ्चमी इसी बात की सूचक है। पृथ्वी को शेष नाग पर आधारित बतलाना सर्पों की उत्कृष्टता का द्योतक है। इसी प्रकार महादेव को सर्पों के आभूषण पहिनाना, विष्णु भगवान को शेषशायी बतलाना आदि भी इन्हीं की महत्ता का प्रकाशन है।

संभवतः सर्पों के लोक कल्याण को ध्यान में रखते हुए ही समग्र पृथ्वी के साँपों को नमस्कार किया गया है:—

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिव्यामनु।
(यजुर्वेद /१३/६/)

साँपों से बचें—

किन्तु इस नमस्कार का यह अर्थ नहीं है कि आप साँपों से बचाव का ध्यान नहीं रक्खें। हम ऊपर निर्देश कर चुके हैं कि साँप एका एक किसी को नहीं काटता बल्कि छेड़ने या दब जाने पर ही काटता है। वह पहले अपनी रक्षा के लिये अन्य जीवों की तरह आत्मरक्षा के साधन अपनाता है। वह दुबक जाने का प्रयत्न करता है। कुछ साँप अपने को निष्प्राण प्रगट करते हैं। कुछ भागने की फिराक में रहते हैं। कुछ फणाटोप से हमें डराते हैं। सर्पों से जितना हम डरते हैं उतना ही और शायद उससे भी ज्यादा साँप भी हमसे डरते हैं। वह आक्रमण, आत्मरक्षा के प्रयास में करता है। यदि अनजाने में हमारा पैर साँप पर पड़ गया तो वह तुरन्त दाँतों से काटेगा। अतः हमें साँपों से व्यक्तिगत रूप में सावधान रहने की चेतावनी वेदों में दी गई है।

"सर्पस्त्वा हनिष्यति" (अथर्व वेद-११। ४। ४७)

इस वैदिक सर्प विद्या के सम्बन्ध में अन्त में एक बात और कह देना चाहता हूँ। आयुर्वेद का सम्बन्ध मेरी आजीविका से है। मैं हृदय से वैद्यक का हिमायती भी हूँ फिर भी मैंने जान बूझकर किसी वैदिक ऋचा का जबरदस्ती आयुर्वेदीय अर्थ निकालने की धृष्टता जरा भी नहीं की है। तो भी मेरा यह नम्र दावा है कि संसार की प्राचीनतम विद्याओं में से एक सर्प विद्या (अगद तन्त्र) भी है। इस मन्तव्य के मेरे पास कितने ही प्रमाण हैं। हालांकि आधुनिक विषविज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है तब भी मेरी तो यह धारणा है कि हम अपनी प्राचीन सर्प विद्या से आज भी कितनी ही बातें सीख सकते हैं।



उत्सव के अन्त में
श्री वैंकटेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय के
मुख्य द्वार पर

प्रसन्न मुद्रा में सेठ साहब श्री रामकुमारजी बाँगड और
वैद्यराज श्री गंगासहायजी शर्मा



समारोह की समाप्ति पर जनता का
आभार प्रदर्शित करते
श्री रघुनाथदासजी बांगड





चिकित्सालय के मुख्य द्वार पर
ध्वजवन्दना

पित्ताशय-ग्रहण्योर्निश्चयः

[ले०-श्री वेणीमाधव शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य बम्बई]

अयि आयुर्वेद—निष्णातधिषणाः, महर्षिप्रदर्शितापवर्गमार्गानुसारिणः, विश्रुतकीर्तयः विपश्चिद्वराः। प्रमोदते मे चेतः श्रीमतां पारम्पर्यविज्ञानवेदिनां भूतानुकम्पिनां परमार्थविदां भिषग्वराणां पुरतः कांश्चिद्विचारान् स्थापयितुम्। अहोभाग्यमिदमस्माकं भारतीयानां यत् कलि काल हतकेऽस्मिन्युगे महत्यामप्यापदि जागर्ति भगवती सकलवसुंधरासंजीवनी जीवन मार्ग विघ्नविध्वंस पटीयसी सकलार्तिनाशिनी तत्रभवतां भवतां हृदय कमल निवासिनी परमर्षिणां मनः सद्म विलासिनी भेषज्य भारती। भिषग्मणीनां भवतां विचार चर्चा प्रसराय जिज्ञासूनां विचार विन्यासावसर प्रदानाय च किञ्चिन् म्तोकमिव प्रस्तूयते पित्ताशयं ग्रहणीं चाधिकृत्य। तत्र न्यूनं अतिरिक्तं वा दृष्टकापि क्षमापयिष्यन्ति साधव इति विश्वसिमि। यतो हि तत्र तत्र गुणलेशमपि दृष्ट्वा हृष्यन्तः सन्तो बहवो दरीदृश्यन्तेऽस्यां पण्डितमण्डितायां वसुन्धरायाम्। बहवो हि गहना विषया बहो कालादारभ्य संप्रदाय विच्छेदादनभ्यासादालस्यादि दोषाच्च अनवगाह्याः जटिलतराश्च संवृत्ताः भगवति आयुर्वेदे निरूपिताः। तत्र यत्किंचित् आपाततः प्रतिपद्यमानः संभ्राम्यति जनः। तत्रापि च आधुनिक पाश्चात्य वैदुषी चाकचक्येन विभ्रान्तबुद्धयो अस्माकीनामपि अकृतपरिश्रमाः अनाघ्रातआयुर्वेद ग्रन्थाः परामर्श विज्ञानं अनवगाह्य व शास्त्र रहस्यमनवबुध्यैव तत्वसरणीं अरोचकग्रस्ताः स्वाहमितंपचमतयो नः कामधेनुमिव निन्दन्ति। अपौरुषेय वेदशास्त्र सहकारिणं अनादिसिद्धं ब्रह्मा द्युपदिष्टं सुरवैद्याव तारोपबृंहितं फणीन्द्रावतार संस्कृतं भगवन्तं आयुर्वेदम्। तदज्ञान निवर्हणार्थं सकल जनार्तिहरणस्यास्य शास्त्रस्य प्रतिविषयं तद्विद्भिः सह महान् क्षोदः परमावश्यकः यद्यप्यल्पमतिरहं तथापि विविदिषयैव तत्वबुभुत्सयैव प्रवृत्त इत्यतो भवत्सदृशैः सह कृत्वाप्येतादृशं साहसं न दोषभाग् भवामि।

आयुर्वेदाचार्याः आकार विज्ञानं (एनोटमीअड् स्टेण्ड पाइन्ट आफ व्यू) शारीरांग कार्य विज्ञानश्च (फिजिओलोजिकल

स्टैण्ड पाइन्ट आफ व्यू) आश्रित्य शारीरां-गान्याविभजन्। तत्र आकार विज्ञाना-पेक्षया निदाने कार्यचिकित्सायां च कार्य विज्ञानस्य आधिक्येन उपकारकत्वात् औपयोगित्वाच्च आचार्याः कार्यशास्त्रमनुसृत्यैव अंगविभागमुपान्यास्यन्। कार्य विभजनं यदा आकार विभजनेन न संगच्छते तदा आकार विज्ञान मुपेक्ष्यैव कार्य विज्ञानानुसरणं समुचितं मन्यन्ते। आकार वैलक्षण्येन अंगानां कार्यवैलक्षण्यं न सर्वत्र सर्वथा अनुगतं अव्यभिचारि च दृश्यते यथा यकृत्प्लीहानौ परस्पर विलक्षणावपि रंजकं पित्तं जनयतः। तथा च आकार-वैलक्ष्येण अवयवविभागः न तथा कुर्याद्यथा कार्यवैधर्म्येण। स्थूलान्त्र क्षुद्रान्त्र विभागौ ऋषिभिर्निर्दिष्टावपि तयो कार्यस्वरूपं नाकार विभाग प्रयुक्तं न्यरूपि। कार्यवैलक्षण्ये निदर्शनं च पित्तधरा कला। महास्रोतसो यावति प्रदेशे पित्तप्रयुक्तः अन्नविपाकः संपद्यते, आत्मानं लभते तस्मान् प्रदेशः पित्तधरा कलेति गीयते। साच ऊर्ध्व स्थितं आमाशयमारभ्य क्षुद्रान्त्रमभिव्याप्य स्थूलान्त्रैकदेशमपि व्याप्नोति। क्षुद्रान्त्रस्थूलान्त्रवत् नाकारविशेषण विलक्षणेन अवतिष्ठते इति इति आकार मर्यादां विनैव तिष्ठति। अनयैवोपदर्शित रीत्या महास्रोतसं आमाशयः, पित्ताशयः, डण्डुकः, पक्वाधानं, गुदं इत्येवं रूपेण आचार्या व्यभजन्।

तत्र तावत् प्रथमं आमाशयं विचिन्त्य अनन्तरं गुदं विविच्य, पश्चात् पक्वाधानं निरूप्य तदनु पक्वाशयोंडुकमलधरा कलाश्च प्रपंच्य पित्ताशयं पित्तधरा कलांश्च विनिर्णीय एवं क्रमेण अन्ते ग्रहणी निश्चेयिष्यते।

आमाशयः वामस्तनस्य अधस्तने विभागे हृदयसंनिकर्षेण तिष्ठति। तत्र च हृदयं आमाशयमधितिष्ठति। आमाशयस्य उरस्यं मुखं तत्सन्निधौ वर्तते। तदुक्तं सुश्रुते—

स्तनयोर्मध्य मधिष्ठायोरस्यंमामाशयं द्वारं सत्वरजस्तम—सामधिष्ठानं हृदयं नाम (मर्म) इति वचनानुसरणात्।"

(सुश्रुत—शा० ६।३०)

आमाशयस्य वामविभागं प्लीहा दक्षिणं च यकृत् संश्रयतः यत् "सुश्रुताचार्यः हृदयस्य स्थानं तथैव निरूपयति तेनचानुमीयते आमाशयस्यापि एतादृशैव स्थितिरिति। यतः हृदयसन्निधौ आमाशयो वर्तते। ते हि हृदयस्य अधोवामतः प्लीहानं फुस्फुसं च दक्षिणतः यकृत्क्लोमानौ च आचक्षते। तथा हि "तस्याधो वामतः प्लीहाफुस्फुसश्च दक्षिणतो यकृत्क्लोमच इत्युक्तम्।"

आमाशयस्य नीचैः पित्ताशयो वर्तते '-तत्र आमाशय पित्ताशयस्य उपरिष्टात् "इति वचनानुसारेण तथैव निर्णयात्"

गुदं च स्थूलान्त्र वामभाग संसृष्टम्। तथा च सुश्रुतशारीरे "तत्र वातवर्चो निरसनं स्थूलान्त्र प्रतिबद्धं गुदं नाम मर्म। (६।३८।) चरकाचार्येणापि "वामाशयोऽग्निर्ग्रहणी गुदं च" इत्यभ्यधायि। (सि० ३।२३।)

आहारस्य आमाशय प्राप्तिमारभ्य मल रूपेण विपरिणम्य गुदसंसर्गपर्यन्तं यदिदं शनैः शनैः संक्रमणं तद्वायुद्वयाधीनम्। तौ द्वौ वायू समानापानाभ्यांक्रमेणाभि धीयेते। तदन्यतरः समानः पक्वाशयमभिव्याप्य स्वकार्यं करोति। स च आहारं विपच्य सारकिट्टं चेति विविनक्ति। सारकिट्ट विवेचनान्तरं अवशिष्टं किट्टं पुरुषाभिधं अपानो अनुकर्षति। तत्स्थानमारभ्य विट्टमेवावशिष्टं अपानः प्रणयति स एव पुरीषवह स्रोतसः प्रारम्भः। अयमेवापानः पक्वाधानालय इति ख्यायते, तथा च तत्स्थानं पक्वाधानं इति वक्तुमुचितम्। तत्रोपष्टम्भकं शास्त्र प्रमाणमित्थम्

(१) "आमपक्वाशयचरः
समानो वह्निसंगतः।
सोऽन्नं पचति तज्जांश्च
विशेषान विविनक्ति हि॥
सु० नि० १।१३।

(२) पुरीषवहे द्वे तयोर्मूलं पक्वाशयो गुदश्च (सु० शा०

(३) पक्वाधानालयोऽपानः काले पचति चाप्ययम्।

समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त वान्ययः (सु० नि० १।१८)

अवच्छिन्नदृशा तु पक्वाधानं अन्यथा शरण्या निर्णीयते। पक्वाशयः श्रोणिगुदयोरुपरि नाभेश्चाधः संश्रयति। इत्युक्तमाचार्यैः। तथा च पक्वाशयस्य अधस्तनीमपर्याप्तश्रोणिनाभिः। यदेव महास्रोतसांतर्गतं अपाननिलयं तदेव प्रधानं वातस्थानं इत्याचार्याः संचक्षते। यथा—

"आशुभरी मुहुश्चारी पक्वाधान गुदाश्रयः" सु० नि० १।८।)

बहिर्दृशा तु वातः श्रोणिगुदयोराश्रितः। अपानः श्रोणि गुदेऽपि व्याप्नोति। तथा च वात एव अपान इति निर्णये न किञ्चिद्विरुणद्धि। अपानस्यैव पक्वाधानालयत्वेन गुदश्रोणी एव पक्वाधानस्य बाह्यमर्यादे इति निश्चीयते।

१. श्रोणी गुदयोरुपरि अधोनाभेः पक्वाशयः। (सु० सू० २१।४)

२. तत्र समासेन वातः श्रोणिगुद-
संश्रयः। (सु० सू० २१/४)

अथ पक्वाशयोंडुकौ निश्चियेते—यत्र पक्वाशयः समाप्यते तत्र पचनकार्यमपि संपूर्णं निर्वर्त्यते। पचनकार्यक्षमानां अवयवानां च आहारान्तर्गतं पोषकांश ग्रहणं तद्व्यतिरिक्तांशौदासिन्यं चेति द्विविधं सामर्थ्यम्। पोषकांश एव सारः तद्व्यतिरिक्तांशः किट्ट इति वदन्ति। पचन क्रियया पक्वाहार एव सारं किट्टं च विवेक्तुमलम्। अतः आदौ पचनं तदनन्तरं सारकिट्ट पृथक्करणं तदनु किट्टान्तर्गत द्रवसंशोषणपूर्वकं किट्टबन्धनं इत्यादिक्रमेण कार्याणि भवन्ति। पचनपदार्थौ द्वौ एक सारकिट्ट पृथक्करण योग्यता संपादनमाहारस्य। द्वितीयश्च आहारस्य मुखसंयोगमारभ्य पक्वाधानप्राप्तिपर्यन्तं प्रवर्तमानो विविधो आहाराश्रितो व्यापारकलापः। सर्वेषां पूर्वाचार्याणां पचनपरस्य ऐदंपर्यं प्रथमार्थं अभिप्रेत्य। द्वितीयार्थश्च आधुनिक पाश्चात्य वैद्यके "डायजेस्टिह्वसिस्टीम" इत्यत्र "डायजेशन" इत्यस्य पर्यायार्थः आधुनिकैः परिभाषितः। प्रथमतः अन्नं पापच्यते प्रामुख्येन। तदनन्तरं सारं च किट्टश्चेति विविच्यते प्राधान्येन। पचनं तत्र यद्यपि संभवति तथापि तद्गौणमिव। अग्रे च किट्टाधिक्यं सारन्यूनता च संपद्यते. तदापि सारसंशोषणं कार्यमल्पं पचनं च अल्पतरम्। एतदनन्तरं किट्टान्तर्गत-द्रवांश निरांशश्च प्राधान्येन प्रवर्तते। आहारश्च पुरीषकल्पः संपद्यते मलप्राधान्यात्। एवं च यत्प्रदेशावच्छेदेन सारकिट्ट पृथः करणं प्राधान्येन तत्र न पचनस्यात्यन्ताभावः संभवति। यत्र च द्रव संशोषणं तत्रापि सारसंशोषणमल्पं संभवति। गौणप्राधान्यविवेकश्च मुख्यः। कुत्र गौणत्वं कस्य कार्यस्य कुत्र च प्राधान्यं एतदेवसमालोचनीयं भवति।

य एव पक्वाशयस्यावधिस्तत्रैव पचनकार्यमुपरमते। पक्वाशये अन्तिमं पचनकार्यं पुरीषकरणे आसरे एव प्रवर्तते। तत्र च पुरीषकल्पं आहारं विभज्य तदन्तर्गत सारपृथक्करण कमङ्गं पुरीषधराकलेति शास्त्रविद्भिभण्यिते। तस्या अवस्थानं पक्वाशयेऽपि, अतः पक्वाशयस्येति विशेषणेन विशिष्यते। उक्तं च "पंचमी पुरीषधरा नाम। या अन्नकोष्ठेमलमभिविभजते पक्वाशयस्था। सा न केवलं पक्वाशयमेव निश्रयति पक्वाशयस्य उपरितने प्रदेशेऽपि सा सारतो मलं विविनक्ति। मलश्च प्राधान्येन डण्डुकाभिधं देशं आश्रयति। तत्र वर्तमाना इयं पुरीषधरा कला

"मलधरा कलेत्यपरेण नाम्नाभिधीयते। तथाचोक्तं" यकृत्समंता त्कोष्ठं च तथांत्राणि समाश्रिता-उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला।

(सु० शा० ४/१४)

पक्वाधानोपरि नाभिमवधिकृत्य नाभेर्वामतः पक्वाशयोऽवस्थितः। उण्डकश्च पक्वाशयश्च भिन्नौ इति वचनान्तरेण अधिगम्यते। यतः "स्थानान्याभाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुण्डुक, फुरफुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते।" अत्रपक्वस्थानं उण्डुकश्च विभिन्नौ अभिहितौ, तेन चेदमवगम्यते पक्वाशयस्य उपरितनोऽयं प्रदेशः उण्डुको नाम यकृत्समीपमभवतिष्ठते। यकृत्प्लीहा सान्निध्यं च प्रमाणान्तरेणावगम्यते। यथा "पट्पेश्यः यकृत्प्लीहोण्डुकेषु"। यद्यपि अत्र सान्निध्यं न उक्तं तथापि सन्निहितानाभवयवानां सहोल्लेखः औत्सर्गिकः। यथा पेशीनां परिगणनावसरे सन्निहितावयवाः उल्लिख्यन्ते यथा 'द्वे हृदयानामाशययोः' इत्यत्र। तस्मात्-यकृत्सकन्तादित्यादि वाक्यान्तर समालोचनेन च बृहदान्त्रवर्ती बृहदान्त्र प्रथमदेशः, यकृत्प्लीहा समीपोऽयं विभाग इति निश्चीयते। यत्र मलः प्राधान्येन अवतिष्ठते "उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला" इति वचनात्। पक्वाशयश्च पक्वाधानोण्डुकयोर्मध्यदेशमधितिष्ठति।

मलधरा कला च न उण्डुकपर्यन्तमेव किन्तु पक्वाशयमारभ्य उण्डुकमभिव्याप्य पित्ताशयमधिष्ठाय आमाशयमपि व्याप्नोति, तथा च संग्रहः सा "यत्रामपक्वाशया यया कोष्ठान्तरं डुकस्थ मलं विभजति। उण्डुकश्च मलधराकलायाः मुख्यं कार्यक्षेत्रम। तत्र प्रधाना दाह्यस्य। उक्तं च सुश्रुते" यकृत्समंतात्कोष्ठञ्च तथांत्राणि समाश्रिताः उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला"।

अथ पित्ताशय एवं निर्णीयते "पक्वमाशय् मध्यं पित्तस्य" तत्र आमाशयः पित्ताशयस्य उपरिष्टात् इत्यादि वचनानुसारेण अमाशयस्य अधोभागभारभ्य पक्वाशय पर्यन्तंयो लघ्वन्त्र स्थूलान्त्र योर्देशः स एव पित्ताशय इत्यवसीयते। पित्तमेवाग्निरित्य भिख्यायते। पचनं रसदोषमूत्रपुरीष विवेचनं चाग्निसाध्यम्। न खलु पित्तव्यतिरेकान्दन्यो ऽग्निरुपलभ्यते, आग्नेयत्वात्। पित्ते दहन पचनादिषु अभिवर्तमाने अग्निवदुपचारः क्रियते अग्निरिति। तत्र अदृष्टहेतुकेन विशेषेण पक्वाशय मध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति विवेचयति च रसदोषमूत्रपरीषाणि इति वाक्यान्तरात्। (सु० सू० २१।८)

एतदेव कार्यं पित्ताशयधमनीनाम्।

उक्तं च नाम्तु (धमन्यः) पित्ताशयमभिप्रतिपन्नांस्तत्रस्थमेवान्न पानरसं विपक्वमौष्ण्यात् विवेचयन्त्यः अभिवहन्त्यः शरीरं तर्पयन्ति। अर्पयन्ति चोर्ध्वगतानां तिर्यग्गतानां रसस्थानं चांभिपूरयति मूत्र पुरीपस्वेदांश्च विवेचयन्त्यामय पक्वा शयान्तरे चत्रिधा जायन्ते तास्त्रिंशत्। अनेनायिव चनेन पित्ताशयः आमाशय पक्वाशययोः अन्तराले इति प्रतीयते। तत्र पित्तधरा कला पित्तं निष्पाद्य चतुर्विध मन्नपानं पचति तस्याः स्थानं आमाशय पक्वाशययोर्मध्यमेव यौ पूर्वापरावधी पित्ताशयस्य तावेव पित्तधरा कलाया अपि। पित्ताशयान्तर्गता एव पित्तधरा कला तया यः प्रदेशः व्याप्तः स एव पित्तशय इति कथ्यते। तदूत्रोक्तम्—"षष्ठी पित्तधरा नाम या चतुर्विधमन्न पानं उपयुक्तं पक्वाशयोरिथतं धारयतीति (सु०शा० ४।१५) पक्वाशयोपस्थितं इत्यस्य नापमर्थः यत्पक्वाशये प्राप्तमिति, किन्तु पक्वाशय सन्निधौ प्राप्तम्। तथा च यैव पित्तधरा कला सैव ग्रहणीति प्रसिद्ध नाम्ना भिधीयते। षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता। पक्वामाशय ..ध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता"। ग्रहण्या बलमग्नि हि सचापि ग्रहणीभेदः। पित्तधरा कला च पित्ताशयेन समभिव्याप्ता पित्ताशयान्तर्गता पित्तधरा कलैव ग्रहणी, तस्मात् पित्ताशयाश्रया एव ग्रहणीति निर्णि नुमः।

तथा च एतावता प्रबन्धेन यान्यङ्गानि ग्रहणी निश्चयार्थं ग्रहणीतो विभिन्नानि निर्णितानि तेषां ग्रहण्यन्तर्भावेन संग्रहणेन संक्षेपतः कार्यक्रमेण एवं प्रवर्तते। प्रथमतः अन्नं श्लेष्मस्थानेन आमाशयेन संगच्छते यः "स्टमक" इतिआंग्ल शारीर विज्ञाने उच्यते, तं आमाशयं संगम्य जल प्रकृतिकैर्गुणैः पुक्लिन्नं प्रशिथिलावयवं सुखजरं सत्; माधुर्यपिच्छिलत्वभ्यां श्लेष्माणं जनयति। ततः अत्रैव मधुरः अम्लश्च रसः क्रमेण प्रादुर्भवतः श्लेष्मोत्सादनार्थम्। ततः परं पित्ताशयं प्राप्य पित्तधरया कलया ग्रहणी त्यपराभिधेया संयुज्य सार किट्ट पृथः करण योग्यताभनुभवति। ५पा योग्यता पित्ता स्याग्नि प्रयुक्ता तदेतत्पचनस्वरूपं कार्यं लघ्वंत्रस्य प्राथमिके उपरितने प्रदेशे प्रधान्येन प्रवर्तते। अग्रे च लघ्वंत्रस्य द्वितीय विभागे पक्वाहारः सारकिट्टं चेति विभिद्यते। तत्रापि पचनं गौणमिव भवति, सारसंशोषणं प्रामुख्येन निर्वर्तते। अनन्तरं लघ्वंत्रमतिक्रम्य वृहदांत्रे संक्रम्य उण्डुकाख्ये प्रथमे विभागे मल विभजनं प्रामुख्येन वरीवर्ति। सारश्च गौणत्वेन संशोध्यते। अत्रैव मलधरा कलायाः कार्यं

अतिशेते। पचनं च अल्पतरं संपचते। उण्डुकोत्तरं नाभेर्वाभतः अधः स्थूलान्त्रै-कतेशः पक्वाशय स्तिष्ठति। तत्र प्रविष्टो आहारः पुरीष भावेन परिणमते। पचनं च अत्र विरमति। द्रवीभावश्च अत्र निरा-क्रियते प्रामुख्येन। द्रवांशनिराकरणं पुरीषधरया कलया। पक्वाशयं परित्यज्य पुरीषरूपेण परिणतो आहरः पक्वाधानं प्राप्नोति। तत्र स्थितेनापानेन गुदपर्यन्तं नीयते। गुदेन च उत्सृज्यते। सेयं परिणामसरणिः क्रमेण शास्त्रालोचनेन निश्चीयते।

एतत्सर्वं सुश्रुत परिभाषया प्रपञ्चितम्। चरकानुसारेण किञ्चिद् विविच्यते। चरके आमाशयः पक्वाशयः पुरीषाधारः, उत्तर-गुदं अधरगुदं चेत्येवं क्रमेण महास्रोतसः अंगानि अभिहितानि। आकार विचारा-नुसारेण च स्थूलान्त्रसूक्ष्मांत्रं चेत्यादि विवेचितम्। कार्यविभागेन च प्रथमो विभागः प्रामुख्येन विवक्षितः। आमाशयः खलु आचार्येण श्लेष्मस्थानं पित्तस्थानं चेति द्विविधोऽभि धीयते। आमाशयस्य पूर्वापरा-वधी स्तनं नाभिश्चेति निरूपितौ। स्वस्थवृत्ते मात्रया सेवितः पथ्यात्मको आहारः यावदवधि कोष्ठस्थ यद्देशपर्यन्तं विपाक मनुभवति कियाचिदंशेन अपक्वो अव शिष्यते तावान् देशः आमाशयः इति अभिधीयते। सुश्रुतमते पित्ताशयस्य पूर्वोऽवधिः आमाशयः चरकमते तु पित्ताशयं अन्तर्भाव्य आमाशयो विरुच्यते। नानेन आचार्यद्वयस्य वैमत्यं इति मन्त-व्यम्। तर्कशास्त्रे विभागस्य विभागा-न्तरादूपक त्वं स्वीकृतम् यथा कणादप्रणीते वैशेषिक शास्त्रे ससंपदार्थविभागः गौतमीय न्यायशास्त्रोक्त षोडशविभागेन न निरुणद्धि इत्युक्तं भाष्यकारैः। एकतत्वाभिप्रायेण कृतं वर्गीकरणं अन्य तत्वाभि प्रायेण कृतं वर्गी-करणं दूषयति। तथा च चरकाभिप्रेताशये सुश्रुतविपश्चितौ आमाशय पित्ताशयौ समा-विशतः। आमाशये यत् श्लेष्मस्थानं स एव सुश्रुताचार्याणामामाशयः। यच्च पित्तस्थान भाशयः स एव सुश्रुते पित्ताशयः। चरक मते आमाशयः नाभिसमीपवर्ति वामस्थितः स्थूलान्त्रैकदेशभूतः पक्वाशयपर्यन्तमव-तिष्ठते। तदत्रोपष्टंभक वचनानि।

(१) यानि खल्वस्य गर्भस्य मातृजानि यानि चास्य मातृतः संभवतः संभवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः, तद्यथा त्वक् च लोहितं च..........पुरपाधानं चामाशयश्च पक्वा शयश्चोत्तर गुदं चाधरगुदं च........ वयावहनं चेति मातृजानि।

(च० शा० ३।१२)

(२) पञ्चदश कोष्ठाङ्गानि, तद्यथा नाभिश्च हृदयं च..........पुरीषाधारश्चामाशयश्च पक्वाशयश्चोत्तर गुदं च अधरगुदं च..........वयावहनं चेति।

(च० शा० ७।१०)

(३) उदरः शिरोग्रीवा पर्वाण्यामाशयो नेदश्च श्लेष्मणः स्थानानि।

(च० सू० १०।२)

(४) स्वेदो रसो लसीका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि। अत्राप्यामाशयो विशेषेणपित्तस्थानम्। (च० सू० २०।६)

(५) नाभिस्तनानन्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः। अशेषं खादितं पीतं लीढं चात्र विपच्यते। आमाशयगतः पाकमाहारः प्राप्यकेवलम्। पक्वः सर्वाश्रयं पश्चाद्धमनीभिः प्रपद्यते।

(च० वि० २।२३।२४)

पक्वाशयस्तु उभयमते समानः। "पक्वाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना" इत्यनेन वचनेन द्रवीभूतो मलः यत्र शुष्यति तदेव स्थानं विवक्षितम्। मलरूपेण परिणम्यमानः आहार एव पक्वाहारः इत्युच्यते।

ग्रहणीविषये एवमाशंका संजायते। ग्रहणी पदार्थो अन्यः श्रुतस्य भिन्न श्चरकस्य। सुश्रुतमते पित्तधरा कलैव ग्रहणी। चरकमते च अग्न्याधिष्ठानं ग्रहणी। यद्यपि पित्तमेवाग्निः इति उभय संमता ग्रहणी एकैव प्रति भाति, तथापि चरकाचार्ये पित्तोद्भवपूर्वं अग्नेः सत्वस्य कफा माशये ख्यापनेन पक्वाशयेऽपि अग्निः वर्तते इत्युक्ते, श्च, अग्निर्न केवलं पित्तान्तर्गतः किन्तु तद्व्यतिरेकेणादि तिष्ठति तत्र प्रमाणानि यथाः—

पचत्यग्निर्यथास्थाल्यां
ओदनायांवु तण्डुलम्।
अन्नस्य भुक्तमात्रस्य
षड्रसस्य प्रपाकतः॥
मधुरात्प्राक् कफोद्भवात्
फेनभूतः (अग्निः) उदीर्यते॥

अत्र अग्निरिति पदमनुपज्यते,
पित्तोद्भावः अनन्तरं वक्ष्यते।
तस्माद् अयं फेनभूतः
पितातिरिक्तोऽग्निरिति प्रतीयते।

२. परन्तु पच्यमानस्य
विदग्धस्याम्ल भावनः।
आशयाच्चवमानस्य
पित्तमल्लमुदीर्यते॥

३. पक्वाशयं तुप्राप्तस्य
शोष्यमाणस्य वह्निना॥
(च० त्रि०)

४. उदीर्णपित्ताग्रहणी यस्य
चाग्निबलं महत्।
अभावे पित्तं अन्यदुक्तं
अग्निश्च भिन्नः पठितः।

५. पञ्चौष्माणः कथिताः न च ते पित्तात्मकाः। इत्यत्र प्रमाणं—भौमाप्यग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभतः पञ्चाहारगुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्ति हि। (च० चि० १५।११)

६. सप्तभिर्देहधातारो द्विविधाश्चपुनः पुनः। यथा स्वमग्निभिः पाकं यान्ति किट्ट प्रसादवत्। (च० चि० १५।३३)

७. अत्रापि सप्त
धात्वग्नय उक्ताः।
इति भौतिक धात्वन्न
पक्तृणांमधिकोपतः॥
अन्नस्य पक्ता सर्वेषां
पक्तृणामधिकोपतः॥
तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षय
वृद्धि क्षयात्मकाः।
तस्मात्तं विधिवद्युक्तैरन्न
पानेन्धनैर्हितैः॥
पालयेत्प्रयते.........।
(च० चि० १५।३०)

८. पित्तज्वर पित्तोदर संप्राप्ति कथनावसरेतमेवार्थं समर्थयति। .... पित्तं प्रकोपभापद्यते, तद्यथा प्रकुपितं आमाशयादुष्माण मुपसृज्य, आद्यमाहार परिणामधातुं रसनामानं अन्ववेत्य...... द्रवत्वादग्नि मुपहत्य पक्तिस्थानादुष्माणं वहिर्निरस्य......... तदा ज्वरमभिनिर्वर्तयतीति। (च० ज्वर० नि० ६।१६)

९. विहन्त्यामाशये वह्निं
जनयत्युदरं ततः।
(च० चि० १३।२७)
इति पित्तादग्निरति
रिच्यते इतिसिद्धयति।

१०. विदाह्यध्यसनाजीर्णैश्चाशु पित्तं
सभाचितम्।
विहन्त्यामाशये वह्निं
जनयत्युदरं ततः।
(च० चि० १३।२५)
अत्रापि पित्तं वह्नि
नाशक मित्युक्तम्।

सुश्रुते च न पित्तातिरिक्तोऽग्निरित्ति जोधुष्यते। खलुपित्त व्यतिरिक्तादन्योऽग्निरुपलभ्यते। आग्नेयत्वात् पित्ते वहन पचनादिषु अभिवर्तमाने अग्निवदुपचारः क्रियते। अन्तरग्निरिति। क्षीणे हि अग्निगुणे तत्समानद्रव्योपयोगादतिवृद्धे शीत क्रियोपयोगा दागमाच्च पश्यामो न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरिति। तच्च अदृष्ट

हेतुकेन विशेषेण पक्वामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति विवेचयति च रसदोषमूत्रपुरिषाणि। तत्रस्थमेव च आत्म शक्त्या शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य च अग्निकर्मणा अनुग्रहं करोति। तस्मिन्पित्ते पाचकोऽग्निरिति संज्ञा।

यत्तु यकृत्प्लीन्होः पित्तं तस्मिन् रजकोऽग्निरिति संज्ञा।

(सु० सू० २१।७)

अग्निपदार्थश्च एवं निर्णीयते। उष्णस्पर्शवत्तेज एवाग्निः। स च कार्यान्तर परिणामार्थमयोक्षेपः। यथा आम्लं आम्र-फलं सौर्येण तेजसा अन्येन वा उष्मणा विपरिणम्य मधुरादि भावं भजते यथा वा अग्निनिक्षिप्तो नीलोघटः रक्तिमानं दधाति, यथा वा सुधायां निक्षिप्ता हरिद्रा अरुणि-मानं भजते वा तत्रस्थितौष्ण्यादेव नान्यत्र श्वेते द्रव्ये निक्षिप्ता सा अन्यथाभावं प्राप्नोति, तथा औष्ण्याभावात्। गवादीनां भुक्तं तृणादिरूपं अन्नं औदर्येण तेजसा दुग्धभावमनुभवति। दुग्धं आम्लद्रव्य विशेषसंयोगेन औष्ण्यसंनिधानेनैव दधित्व-मापद्यते। आक्सिजन हाइड्रोजन वायुद्वयं परस्पर संयोगेन ऽति अष्ण्यविशेषे जल रूपेण परिणमते। इत्याधुनिक केमेस्ट्री इत्यपरनामधेय भौतिक विज्ञान सिद्धम्। उपादन कारणभूतस्य द्रव्यस्य कार्यान्तर परिणामार्थं विद्युदादिरूपं औष्ण्य गुणवत् तेजः अपेक्षते इति भौतिक विज्ञानानुरोधि सिद्धान्तः शरीरान्तर्गताः सप्तधातवः द्रव्यपरिणाम विशेषाः स्वोत्पत्यर्थं अग्निम-पेक्षन्ते। उक्तं च।

सप्तभिर्देह धातारो,
द्विविधाश्च पुनः पुनः।
यथासामग्निभिः पाकं,
यान्ति किट्ट प्रसादवत्॥

(च० चि० १५/१३)

अन्नस्य शरीरधारणार्थं प्रथमः साक्षा त्परिणामः रसात्मकः अग्निसाध्य एव। स च अग्नि पित्ते आधिक्येन तिष्ठति। अग्नि रेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिता कुपितः शुभाशुभानि करोति। तद्यथा पक्तिमपक्ति, दर्शनमदर्शनं। (च० सू० १२/२६)

दर्शनं पक्तिरुष्मा च,
क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधा च,
पित्तकर्मा विकारजम्॥

(च० सू० १८/५६)

यस्य कस्यापि शरीरस्थस्य परिणाम विशेषस्य समुद्भवः नाग्निं विना। अत एव न्यायशास्त्रे पूर्वरूपरस गंधस्पर्श नाश पूर्वक विजातीय रूपरस गंधस्पर्शात्मक कार्यस्य

असाधारणं कारणं तेजः संयोगः परिकीर्तितः। पाक शब्दस्य पूर्वरूप परित्याग पूर्वक रूपान्तरोत्पत्तिः इत्यर्थः अभ्यधापि नैयायिक प्रवरैः। चरकाचार्याः एवमेव अभि प्रयन्ति। एतं अग्निष्टानं ग्रहणी इत्यत्र अग्नि शब्देन रसादिरूपेण हारपरिणत्यर्थं अपेक्षमाणः औष्ण्यगुणकस्तेजो विशेष एव पित्तादिषु अन्तर्गतो विवक्षितः।

तथा च अयं पूर्वं पक्वाशयः। महास्रोतसि यावति प्रदेशे अग्निः तावान् प्रदेशः ग्रहणी सा च आमाशय मन्तभव्य पक्वाशयमपि व्याप्नोतिइति चरक मते प्रतीयते। अग्न्यधिष्ठानं ग्रहणी इति-वाक्यात्। सुश्रुते च पितधरा कलैव ग्रहणी पित्ताशयेन अन्यूना अनतिरिक्ता च। कथमिदं अपिद्वय वैभत्यं संगमनीयम् इति चिन्तायां एवं समाधीयते।

अग्न्यधिष्ठानं ग्रहणी "इति यथाश्रुतं लक्षणं पक्वाशयमपि कक्षीकरोति इति अति व्याप्ति ग्रस्तं पक्वाशयेऽपि अग्ने वर्तमानत्वात् "पक्वाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना" इत्युक्तेः पक्वाशयो नाभेरधः कीर्तितः। चरकाचार्यश्च ग्रहणीं नाभेरूर्ध्वं वक्ति। तस्मात् अग्न्यधिष्ठान मित्यस्य प्राधान्येन अग्न्यधिष्ठान इत्यर्थो वक्तव्यः। न च पक्वाशये अग्नेः प्राधान्यं यतः पाक एव अग्नेः प्रमुखं कार्यं, शोषणं तु आनुषंगिकम्, पाकाधानत्वात्। पाकजन्य रसाधीनत्वाच्छरीर यात्रायाः। पचनं च पक्वाशयोरुपर्येव समाप्तम्। इति अग्नेः प्राधान्यं न पक्वाशये। किंच पित्त एव अग्निर्भूयिष्ट इति चरक संमतम्। तथा च उक्तं 'अग्निरेव शरीरे पितान्तर्गत कुपिता कुपितः शुभाशुभानि करोति तद्यथा- "पक्तिमपक्ति दर्शनमदर्शनमित्यादि"।

(च० सू० १२/११)

यद्यपि इदं मारिचिवचनं, तथापि अग्नेः भगवता पुनर्वसुना स्वयमेव अनुमतम्। "सर्व एव खलु भवत, सम्यगाहुरन्यत्रैकान्ति वचनात्" इत्यादि वचनेन। तत्र अग्नेः कार्यमेवं दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम्"। (च० सू० १६/५)

पित्तमेव अग्नेः प्रामुख्येन निलपनं इति चरकमते। न च अनेन सुश्रुत मत विरोधः इति वक्तव्यम्' सुश्रुते पित्तमेवाग्निः इत्यादिकं यदभिहितम् तत् सिंहो देवदत्तः अग्निर्माणवक इदं मूर्ति वल्लावश्यम् इत्यादिवत् लक्षणया ग्राह्यम्। एतदेवा भिप्रेत्य-अव्यवहितोत्तरं उक्तं—आग्ने यत्वादिति। अग्निवदुपचारः क्रियते। उपचारो नाम लक्षणा अग्निवदुपचारः मस्मात् अन्तरग्निरिति, पित्ते अग्निरन्तर्गतः

इत्यर्थः। यथा लावण्यवति साक्षाल्लावण्य मित्युच्यते, तथा च न ऋषिद्वय मध्ये द्वैधमिति मन्तव्यम्। तथा च उभयोः समन्वये क्रियमाणे पित्तस्य अग्नि बाहुल्यात् प्राधान्येन अग्निः पित्ताशये एव तिष्ठति इति चरकमतेऽपि स्वीकरणीयम्। कफस्थान भूते आमाशयेऽपि पक्वाशय वदेव नाग्नि प्राधान्यम्। पित्तस्य तत्रा-सत्वात्-अग्न्यधिष्टानं ग्रहणी इत्यनेन प्राधान्येन यत् अग्न्यधिष्टानं पित्ताशयाख्यं कफस्थानम् आमाशय पक्वाशययोः अंतराले अवस्थितं महास्रोतसो अङ्गं पित्तधरां कलायाः यत्र अवस्थितिः तदेव ग्रहणी इति वक्तव्यम्। अयं च निर्णयः नाभेरुपरि सा ह्यग्नि बलोपस्तंभ वृंहिता इत्यनेन चरकवाक्येन सम्यक संगच्छते अन्यथा ग्रहण्यः पक्वाशयस्य अन्तर्भावे स्वीकृते नाभे-रुपरि वर्तमाना ग्रहणी पक्वाशये पक्वमन्नं विमुञ्चति इति चरकाचार्योः नाभिदध्युः इति नाचार्य द्वयस्य विरोधः इति युक्तमुत्पश्यामः।

एतावता प्रपंचेन सुश्रुत चरतमतयोः समन्वयं कृत्वा पित्ताशय एव गृहणी इति सुनिश्चितम्। अत्र या काचित् त्रुटिः न्यूनता वा सा भावं बुद्ध्वा मात्सर्यमुत्सार्य विद्विद्भिश्चिंतनीया इति संप्रार्थ्य उपरम्यते।

लक्ष्य पूर्ति की प्रतिज्ञा

[ले०—आयुर्वेद-पंचानन श्री जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल
सम्पादक 'सुधानिधि' प्रयाग]

कोई मनुष्य या मनुष्य समाज जब अपना एक लक्ष्य अथवा अन्तिम ध्येय निश्चित कर लेता है, तब उसकी पूर्ति के लिये एक दृढ़ता का भाव आ जाता है। वह अपने को वज्र के समान कठोर बना लेता है और अपने आचरण, अपने कर्तव्य और अपने कार्यकलाप को एक निश्चित ढंग पर मोड़ लेता है। उसके हृदय में एक दृढ़ भावना हो जाती है कि जब तक इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो जायेगी, मैं अपने अन्तिम ध्येय की पूर्ति नहीं कर लूँगा, तब तक चैन से नहीं सोऊँगा,

आराम मेरे लिये हराम है, मेरा कर्त्तव्य क्षेत्र ही मेरे लिये सर्वस्व है, अविराम रूप से ध्येय पूर्ति के लिये प्रयत्न करना ही मेरा धर्म है, मेरा कर्म है और मेरी कार्य-प्रणाली का मर्म है। इस प्रकार की निश्चित धारणा और मानसिक संकल्प तथा संयम और नियम निर्धारण का नाम है प्रतिज्ञा। ऐसी प्रतिज्ञा ही उसकी आनबान है, इस प्रतिज्ञा की पूर्ति में लगे रहना ही उसकी शान है, उसके मार्ग सोचते रहना ही उसका ध्यान है, तर्क और दृढ़ता से निश्चय पर उतरते रहना उसका ज्ञान है और मार्ग की सफलता ही उसका मान है। ऐसी प्रतिज्ञापूर्ण व्यक्ति या समाज का ध्येय पूर्ण होकर रहता है। विघ्न बाधा उससे पनाह माँगते हैं, पहाड़ उसके लिये मार्ग कर देते हैं, ईश्वर उसकी उद्देश्य की पूर्ति के लिये मानसिक दृढ़ता व धैर्य तथा मनोबल प्रदान करते हैं।

इस समय वैद्यों का ध्येय और चरम लक्ष्य आयुर्वेदिक स्वराज्य की स्थापना करना है। समस्त भारत में चिकित्सा और स्वास्थ्य का साधन एवं आधार आयुर्वेद हो और देश में अपना पूर्ण प्रभाव स्थापित कर विश्व की चिकित्सा और स्वास्थ्य की समस्या सुलझाने में आयुर्वेद महत्वपूर्ण भाग ले सके, आयुर्वेद का आधार विश्व का साधन और समाधान बने, देश में आयुर्वेद की विजय वैजयन्ती फहराती रहे और विश्व में उसकी लहर आशा और उत्साह का संचार करती रहे, यही लक्ष्य हमारा ध्येय है, पुरुषार्थ है और इसी के लिये प्रयत्नशील रहना हमारी प्रतिज्ञा है, हमारी आन है। खासकर राजस्थान के विकट कर्मशीलों के लिये तो वह दृढ़ता और कर्तव्यशीलता का भूषण स्वरूप है।

एक आस्तिक मानव की दृष्टि से हमारा लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि है। हम धर्म पूर्वक अपना आचरण रक्खें अपने वर्णाश्रम के अनुरूप धर्म कर्म का प्रतिपादन करते रहें। इसको सिद्धि और सुगमता के लिये आवश्यक अर्थ और धन की प्राप्ति और संचय करते रहें, परन्तु स्मरण रहे कि हमारा अर्थोपार्जन न्याय-युक्त हो। किसी को सता कर किसी को ठग कर प्रवञ्चना पूर्वक उसका उपार्जन न हो, नहीं तो उसके विनियोग से हमारा तन मन अशुद्ध हो जावेगा और धर्ममार्ग से वह हमें च्युत करेगा। मानव समाज की रक्षा व वृद्धि के लिये हमारा यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि हम अपनी जीवन

संगिनी का निर्वाचन करें और गार्हस्थ्य धर्म पालन करते हुए सन्तानोत्पादन भी करें। यह सब करते हुए ही हम मोक्ष साधन के मार्ग में लग कर आत्मा के बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष लाभ करें। परन्तु यह स्पष्ट है कि मोक्ष साधन के लिये स्वस्थ शरीर निर्मल मन और दीर्घायु की अपेक्षा है और इस अपेक्षा की पूर्ति आयुर्वेद द्वारा ही हो सकती है। आयुर्वेद का अवलम्बन करने से ही हमारे मोक्ष साधन का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। अतएव पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि के लिये आयुर्वेद का सहारा अनिवार्य है। इसलिये आयुर्वेद का अभ्युदय हमारा पहला कर्त्तव्य हो जाता है। इस प्रकार आयुर्वेद के साम्राज्य की स्थापना करना वैद्य ही नहीं मानव मात्र का कर्त्तव्व बन जाता है। आयुर्वेद के परमोच्च विकास की प्रतिज्ञा बन जाती है और आयुर्वेद का महत्व विकास कर विश्व को यह समझा देना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि आयुर्वेदिक लक्ष्य सिद्धि की प्रतिज्ञा विश्व की प्रतिज्ञा है।

आज गंगासहायजी शर्मा शास्त्री का आदर क्यों करते हैं, इसीलिये कि अपने पास आये हुए रोगार्त के प्राणों की रक्षा वे ४० वर्ष से निरन्तर करते आ रहे हैं। इसीलिये हम उन्हें प्राणाचार्य कहते हैं। वे प्राणों के आचार्य बन कर अपने रोगियों को रोगमुक्त करते हैं। दीन, हीन और कठिन रोग के रोगियों को धैर्य प्रदान कर जीवन दान देते हैं। इस प्रकार वे आयुर्वेद शास्त्र की मर्यादा बढ़ा रहे हैं। जनता के हृदय में आयुर्वेद का प्रभाव स्थापित कर उसे आयुर्वेद का प्रेमी बना रहे हैं। इस प्रकार जनता की सहानुभूति वैद्य और वैद्यक के प्रति बढ़ाकर वे आयुर्वेद की प्रतिष्ठा का मार्ग सुगम कर रहे हैं। यही नहीं वैद्य वर्ग के लिये आदर्श बन कर कर्त्तव्य और जनसेवा की निष्ठा का पाठ पढ़ा रहे हैं। उनका अभिनन्दन कर, उनकी प्रशंसा कर हम उनके कार्यकलाप और कार्यशैली पर मुहर लगा कर भावी वैद्यों को सुझा रहे हैं कि यही मार्ग है जिससे चिकित्सक सुयश के भागी बन सकते हैं और कर्त्तव्य पूर्ण कर कृतकृत्य हो सकते हैं। अपना कर्तव्य करते हुए जनता की सेवा द्वारा उसकी सहानुभूति प्राप्त कर सरकार में, सरकारी कौंसिलों, असेम्बलियों और संसद् में ऐसे ही सदस्य भेजवा सकते हैं जो आयुर्वेद के समर्थक हों, और आयुर्वेद का अधिक से अधिक

प्रचार कर भारतवर्ष में आयुर्वेद की विजय वैजयन्ती फहराने में सहायक हों। यही लक्ष्य पूर्ति की प्रतिज्ञा का आदर्श है।

आयुर्वेद स्वराज्य की प्रतिष्ठा के द्वारा हम चाहते हैं कि देश में आयुर्वेद के तन्त्र से ही स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्सा व्यवस्था की विधि विधान द्वारा प्रस्थापना हो। आयुर्वेद के ज्ञाता ही औषधालयों के चिकित्सक हों, अस्पतालों के सिविल सर्जन हों, स्वास्थ्य विभाग के वैद्य ही हेल्थ ओफिसर और इंस्पेक्टर आदि हों। प्रान्तों के मेडिकल और हेल्थ के छोटे बड़े अफसर और डाइरेक्टर आयुर्वेदज्ञ हों, केन्द्रीय सरकार के डायरेक्टर जनरल और प्रान्तीय तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग के सञ्चालक सभी आयुर्वेदज्ञ हों। इस बात की पूर्ति के लिये हमें चिकित्सकों को ऐसी शिक्षा देने की व्यवस्था करनी होगी कि वे अष्टाङ्ग आयुर्वेद के पूर्णज्ञाता हों। उनके ज्ञान की सीमा भारतीय विधि व्यवस्था के भीतर ही मर्यादित न हो बल्कि विश्व के समस्त उपयोगी और आयुर्वेद पोषक ज्ञान विज्ञान की उन्हें जानकारी हो। एक उन्नत और विश्वविख्यात देश के चिकित्सक एवं स्वास्थ्य और चिकित्सा के सञ्चालक की हैसियत से उनकी ज्ञानगरिमा इतनी पूर्ण और प्रभावोत्पादक हो कि देश ही नहीं विश्व के महत्वपूर्ण देशों में भी वे अपनी आयुर्वेद की व्यापकता पूर्णता और सामर्थ्य प्रभाव को स्थापित कर सकें। इस लक्ष्य की पूर्ति की प्रतिज्ञा हम वैद्यों को करती है और भारतीय जनता से कराती है। ताकि हम ऐसे प्रतिज्ञा बद्ध सदस्यों को असेम्बलियों, कौंसिलों, और संसद में भेज सकें। हमें ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी है कि एक भी सरकारी कार्यकर्ता आयुर्वेद के विरुद्ध जबान खोलने की हिम्मत न कर सके। यही नहीं वह हृदय से आयुर्वेद का भक्त और अनुरक्त बन जावे। आयुर्वेद के प्रचार में कोई बाधक नहीं बन सके सभी आयुर्वेद के प्रचार और विस्तार में साधक बने। जनता द्वारा चुने हुए सदस्य इतने सतर्क और कर्त्तव्यपरायण हों कि आयुर्वेद के महत्व विस्तार का कोई अवसर चुकने न दें। अपनी सावधानी से संसद, परिषद् कौंसिल और असेम्बलियों का वातावरण आयुर्वेद के अनुकूल आयुर्वेदमय बना दें। लक्ष्यपूर्ति की यह प्रतिज्ञा आयुर्वेदिक स्वराज्य की प्रस्थापना में निश्चित रूप से सहायक होगी।

ऊपर का सा वायुमण्डल तैयार करना सहज ही सिद्धि दायक न होगा। इसके

लिये घोर परिश्रम, महान् उद्योग और प्रयत्न करना पड़ेगा। हमें आयुर्वेद की शिक्षा की बहुमुखी पद्धति का प्रचलन करना पड़ेगा। हमें ऐसे कार्यकर्ता तैयार करने पड़ेंगे, जिन्हें छः महिने की व्यावहारिक और काम चालिक शिक्षा देकर संक्रामक और जन संहारकारी रोगों के उमड़ने पर भेजा जा सके। ऐसे चिकित्सक भी हमें तैयार करने होंगे जो आयुर्वेद की स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्सा का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर इस योग्य हो जायें कि देहातों में घूम कर अथवा ग्रामों में बैठकर जनता के स्वास्थ्य और चिकित्सा की व्यवस्था कर सकें। जटिल और कठिन रोगों के रोगियों का प्रारम्भिक सामान्य उपचार कर उन्हें समीप के किसी ऐसे केन्द्रीय औषधालय या रूग्णालय (इनडोर हॉस्पिटल) में भेज सकें जहाँ उनकी सम्यक् चिकित्सा की व्यवस्था हो सके। इस प्रकार के चिकित्सालयों में कम से कम पाँच वर्ष की शिक्षा पाये हुए ऐसे चिकित्सक रखने होंगे जो अष्टांग आयुर्वेद के ज्ञाता हों और शल्य-शालाक्य आदि कार्यों में भी निपुण और अभ्यस्त हों। ऐसे चिकित्सक तैयार करने के लिये यथोचित स्थानों में विद्यालय और महा विद्यालय स्थापित करने होंगे। किन्तु इतने से ही तो देशव्यापी चिकित्सा का कार्य न होगा। हमें आयुर्वेद का विश्वविद्यालय स्थापित कर उसके अन्तर्गत कितने ही स्नातकोत्तर विद्यालय और ट्रेनिंग कालेज खोलने होंगे। जिनमें स्वास्थ्य रक्षा के कार्यकर्ता इंस्पेक्टर आदि और हेल्थ आफिसर आदि तैयार करने होंगे। ऐसे भी आयुर्वेद वाचस्पति, प्राणाचार्य और आयुर्वेद बृहस्पति तैयार करने होंगे। जो स्नातकोत्तर महाविद्यालयों और ट्रेनिंग कालेजों में व्यापक विद्यादान का कार्य कर सकें। ऐसे प्राध्यापक ही ऐसी शिक्षा दे सकते हैं जो देश के लिये ललामभूत हों और अपने व्यापक ज्ञान का गंगा प्रवाह अपने शिक्षार्थियों में प्रवाहित कर उन्हें देश कार्य में समर्थ बना सकें। यही क्यों एक एक विषय के निष्णात विशेषज्ञ तैयार करने के लिये भी हमें अपने विश्वविद्यालय में प्रबन्ध करना होगा। इतने से ही काम थोड़े चलेगा। विश्व में आयुर्वेद का महत्त्व प्रस्थापित करने के लिये आयुर्वेद के पूर्ण विद्वान् तथा विश्व के विशेष उन्नत विषयों की जानकारी रखने वालों को हमें विश्व के विख्यात और उन्नत देशों में भेजना होगा ताकि वे वहाँ व्यापक ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हों। इस प्रकार की

व्यापक शिक्षण व्यवस्था के लिये प्रान्तीय सरकारों को और केन्द्रीय सरकार को तैयार करना महान् प्रयास का विषय है। देश में चलते हुए औषधालय, अस्पताल, सेनीटोरियम आदि स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के केन्द्रों को आयुर्वेदमय बनाने के लिये और आज देश में अपना प्रभाव जमाकर बैठी हुई विदेशी चिकित्सा से मुठभेड़ लेने के लिये महान तैयारी की आवश्यकता होगी। करोड़ों अरबों का जो व्यय देश में स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग में विदेशी पद्धति के तन्त्र से लग रहा है उसे आयुर्वेदाभिमुखी बनाना होगा। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये महान् उद्योग के लिये हमें स्वयं प्रतिज्ञाशील होना होगा और जनता को भी तैयार करना होगा ताकि जनता के द्वारा सरकार और सरकारी अधिकारियों तथा सदस्यों को भी प्रतिज्ञाशील बनाया जा सके।

हमारा विश्व व्यापी आयुर्वेदिक ज्ञान इस बात की अपेक्षा रखता है कि हमारे चिकित्सकों और स्वास्थ्य तथा चिकित्सा संचालकों में आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञान हो। समस्त आयुर्वेदिक संहिता और संग्रहग्रन्थों का (उनकी टीका और व्याख्याओं के सहित) पूर्णज्ञान उनमें हो। यही नहीं ऊपर बतलाये हुए कार्यों और व्यवस्थाओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है अपेक्षा होगी कि हमारा वैज्ञानिक और रहस्यवाले भाग का ज्ञान हमारा आधार भूत हो और उसके लिये पूरक तथा पोषणकारी ज्ञान एवं जानकारी उसमें सम्मिलित हो। वह ज्ञान हमारे सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं में इस प्रकार मिल जावे कि अनगढ और अनमिल का बेहूदापन न रहे। संहिता और संग्रह ग्रन्थों की प्राचीन टीकाओं में जिस प्रकार रहस्योद्घाटन हुआ है उसी प्रकार आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ग्रन्थों की टीका का क्रम जारी रहना चाहिये और नवीन ग्रन्थों के निर्माण का क्रम भी चलता रहना चाहिये। ऐसे नवीन ग्रन्थों में आधारभूत और मूलज्ञान एवं विधि पूर्ण आयुर्वेदिक रहे और नवीन जानकारी भाग जहां उचित रूप में घुल मिल जावे वहां मिला दिया जाय और जहां ऐसा संभव न हो वहां टिप्पणी रूप में लिख दिया जाय। ऐसी दशा में आवश्यक प्रतीत होता है कि हमारे भाइयों में जो शुद्ध आयुर्वेद और मिश्र आयुर्वेद की भावना का उद्रेक हुआ है वह समयोचित नहीं है। यही नहीं बल्कि आयुर्वेदिक स्वराज्य की स्थापना में बाधक है। वह

आशा करना कि स्वास्थ्य और चिकित्सा की प्राचीन विधियां ही इस समय भी देश के स्वास्थ्य और चिकित्सा की व्यवस्था के लिये पर्याप्त होंगी विचित्र भोलेपन की निदर्शक हैं। प्राचीनता के आदर के साथ उचित और योग्य नवीनता का निरादर करना व्यावहारिकता के अनुकूल नहीं है। संक्रामक रोगों की रोकथाम, जल को शुद्ध करने की प्रक्रिया सार्वजनिक आरोग्य रक्षण की कुछ नवीन विधियां हमारे हेल्थ विभाग में सम्मिलित न हो, यह इस समय संभव नहीं हो सकता। निदानज्ञान की पूर्ति के लिए जो नये साधन और यन्त्र सामग्री प्रचलित हुई है उसका बहिष्कार करना इस उन्नतकाल में बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं समझा जायेगा हमारा सर्जरी का ज्ञान दो हजार वर्ष पुराना हो चुका है। अवश्य ही वह सिद्धान्ततः आज भी पूर्ण और सर्व-मान्य है; किन्तु वेहोशी लाने के लिये उपाय कोथनिवारण एवं सफलसर्जरी की जो विधियां आधुनिक वैज्ञानिकों और चिकित्सकों द्वारा अनुभूत एवं फलप्रद सिद्ध हुई है उन्हें अपनी सर्जरी का उद्धार करते समय आंख मूंद कर छोड़ देना न तो उचित है और न सम्भव भी है। उस समय की जानकारी के अनुसार शराव पिलाकर सर्जरी करना उचित था किन्तु आज स्थान को शून्य कर अथवा रोगी को वेहोश कर सर्जरी न करना समय सूचकता का द्योतक नहीं माना जायेगा। आयुर्वेद वैदिक ज्ञान है, वह ज्ञान का अवरोध नहीं चाहता, वह तो गंगा की प्रवाह की तरह गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक विना रुकावट वहते हुये सबको पवित्र, आरोग्य और शुद्ध करते रहना चाहता है। भले ही उसमें यमुना, अलक नन्दा, रामगंगा, वागेश्वरी, पयस्विनी, तमसा ऐसी पवित्र नदियों के अतिरिक्त कर्मनाशा और कानपुर प्रयाग जैसे स्थानों के गन्दे नाले भी क्यों न गिर जावें। वह सब को आत्मसात्कार कर पवित्र कर लेता है, कीटाणु रहित बना लेता है। गन्दगी से बचाने की सतर्कता अवश्य रखनी चाहिये, किन्तु उसके प्रवाह को स्वच्छन्द प्रवाहित होने के बदले रोकने की कल्पना समयोचित नहीं होगी। इस लिये शुद्ध एवं मिश्र का आन्दोलन उठाकर वैद्यों और जनता में भ्रम उत्पन्न करने के बदले इस बात को सोचकर कार्य में परिणात करना चाहिये क आयुर्वेद का बृंहण किस प्रकार, कहां और कितना किया जाय कि उसका स्वरूप विकसित हो उठे। उसकी पूर्ति और वृद्धि के लिए कौन

कौन से साधन और जानकारी अपनाई जाय कि वह आज के समय के लिये भी उसी प्रकार समर्थ हो जिस प्रकार कि पहले से रहा है। हमें आयुर्वेद के व्यापक प्रचार के लक्ष्य की पूर्ति के लिये ही इस समय प्रतिज्ञा वद्ध होना है।

हमें वहुत बुद्धिमानी, समय सूचकता और राजनैतिक पटुता के साथ सोचना होगा कि ऐसी कौन कौन सी वाधक प्रवृत्तियाँ हैं जो आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा बनाने में विघ्न रूप वाधक है। ऐसी वाधक शक्तियों का निवारण कर साधक शक्तियों को विकसित और जागृत करना होगा जिससे हमारा सोचा हुआ काम यथा सम्भव शीघ्र पूर्ण हो सके। सबसे प्रबल और बाधक शक्ति एलोपैथी की है। इधर दो सौ वर्षों से है उसने देश में पैर फैला रखे हैं। ब्रिटिश शासन ने उसे अपनी सहायता से पुष्ट किया है और आश्चर्य की बात की है कि ब्रिटिश शासन की समाप्ति होने पर भी अंग्रेजियत के मानसिक गुलामों द्वारा उसका वैसा ही पोषण हो रहा है। मुँह से आयुर्वेद के हित की बातें कही जाती हैं और मन समझाने के लिये कुछ छोटे मोटे काम कर भी लिये जाते हैं किन्तु उनके नीचे ऐसी योजना का अभाव है जिससे आयुर्वेद क्रम से पुष्ट होता हुआ राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान के सिंहासन पर आसीन हो सके। स्पष्ट है कि हमें अधिक तपस्या, अधिक उद्योग और अधिक प्रयत्न द्वारा लक्ष्य पूर्ति की सिद्धि प्रतिज्ञावद्ध होकर करनी होगी। लोकमान्य तिलक कहा करते थे कि प्रवल शत्रु को पराजित करने के लिये आवश्यक है कि हम वैसे ही अस्त्र शस्त्रों से लैस होकर लड़ें, जिनका प्रयोग शत्रु कर रहा है। अतएव वैद्यों का कर्तव्य है कि वे आयुर्वेद के पूर्ण पण्डित होकर उन सब गुणों और कार्य विधियों में कुशल हो जावें, जिनके कारण लोगों को डाक्टरों और ऐलोपैथी की आवश्यकता प्रतीत होती है। जब वैद्य यह सिद्ध कर देंगे कि हम देश की आवश्यकता की पूर्ति सब प्रकार से कर सकते हैं, तब हमारी आयुर्वेदिक स्वराज्य की माँग इतनी बलवान हो जायेगी कि उनको उपेक्षा करने की शक्ति किसी में न रहेगी।

इसके बाद हमें यूनानी और होमियो-पैथी के अस्तित्व की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। यद्यपि यह ठीक है कि अरब और यूनान की चिकित्सा पद्धति से जरा भी मेल नहीं खाती. अतःएव वह आयुर्वेद का ही भाषा परिवर्तित और नाम परिवर्तित

स्वरूप है। किन्तु इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस देश में आज उसका यूनानी के नाम से स्वतन्त्र अस्तित्व है और उसके चिकित्सक हकीम आज अपने को वैद्यों से अलग मानते हैं। हमें इस बात का प्रयत्न करना है कि यूनानी का स्वरूप बतला कर सिद्ध कर दें कि वह आयुर्वेद ही है अतएव देश में दो देशी चिकित्सा प्रचलित रख कर राष्ट्रीय चिकित्सा की समस्या को जटिल न बनावें। जब तक देश में आयुर्वेद और यूनानी का अलग अस्तित्व है तब तक आयुर्वेद के शत्रु सरकार को भ्रम में डाल कर यह सुझाने में समर्थ होंगे कि राष्ट्रीय चिकित्सा आयुर्वेद को कैसे बनाया जा सकता है। हकीमों और वैद्यों को बुद्धिमानी के साथ यह सोचना होगा कि हमारे घर में एक लुटेरा घुसा हुआ है उसे सम्मिलित शक्ति से हमें हटा देना चाहिये। इसके बाद अधिकारों का विभाजन हम स्वयं आपस में समझ कर कर लेंगे। इस बीच में आवश्यक है कि वैद्य लोग यूनानी के रहस्य और व्यवहारिक ज्ञान की जानकारी प्राप्त करें। इस कार्य की पूर्ति के लिये आवश्यक होगा कि आयुर्वेद विश्वविद्यालय में एक साल (६ महीनों का पाठ्यक्रम चला कर शिक्षा व्यवस्था की जाय। महात्मा गाँधी कहा करते थे कि भारत में विदेशी चिकित्सा का प्रचलन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति होगी। वैद्य और हकीम आपस में मिलकर इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति को न आने देने का उपक्रम करेंगे। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये वैद्य और हकीमों को प्रतिज्ञाबद्ध होकर आयुर्वेदिक स्वराज्य की स्थापना करनी होगी। आयुर्वेद के अन्तर्गत यूनानी का भी अन्तर्भाव समझा जाए ऐसा समझौता होने के लिये आवश्यक है कि वैद्य और हकीम एक प्लेटफार्म पर एकत्र होकर सम्मिलित प्रयत्न करें। इसका प्रयत्न वैद्य सम्मेलन को अथवा उससे सहानुभूति रखने वाली संस्था को करना होगा।

होमयोपैथी का विकास यद्यपि जर्मनी अमेरिका आदि विदेशों में हुआ है तथापि इस देश में भी उसका प्रचार क्रमशः बढ़ रहा है। अपने सस्तेपने के कारण और केवल लाक्षणिक चिकित्सा की सुलभता के कारण उसके चिकित्सक समाज में स्थान भी पा रहे हैं। ऐसी दशा में केवल विदेशी चिकित्सा पद्धति कह कर उसका प्रचार देश से उठाया नहीं जा सकता वैद्यों को इस तथ्य से भी अवगत होना पड़ेगा कि होमियोपैथी वास्तव में हेतुव्याधि विपर्य

रतार्थकारी चिकित्सा है जिसमें व्याधिरूप लक्षणों का शमन उसी गुण और कार्यकरी शक्ति वाले समानगुणी द्रव्य के उपयोग से किया जाता है और उसका प्रभाव हेतु और व्याधि दोनों के लिये विपरीतार्थकारी होगा। इसका हल 'विपस्य विषमौषधम्' तत्त्व के रस चिकित्सा शास्त्र के द्वारा सुलभ सकता है। इसको वैज्ञानिक सरणि के अवलम्बन द्वारा हल करना भी हमारे आन्दोलन का एक अङ्ग बनाना होगा और अपने चिकित्सा कौशल्य द्वारा इसके विस्तार को स्वदेशी रूप देकर रोकना या परिवर्तित करना आवश्यक होगा। जिससे हमारे लक्ष्य की पूर्ति में बाधक नहीं हो सके। इस प्रकार अयुर्वेदिक स्वराज्य के लक्ष्य की पूर्ति के लिये वैद्यों को सब तरह से कटिबद्ध होकर अपना कार्य करना होगा। एक सांकेतिक निर्देश के रूप में इस लेख में कुछ उपायों का उल्लेख किया गया है। प्रान्तीय सम्मेलनों और अखिल भारतीय आयुर्वेद महा सम्मेलन को गम्भीरता पूर्वक समय समय पर उपाय निर्धारण कर, वैद्य समाज को सूचित कर सावधान करते रहना होगा और लक्ष्य पूर्ति की प्रतिज्ञा पर दृढ़ता से लगकर आयुर्वेदिक स्वराज्य की स्थापना करनी होगी। यह आयुर्वेदिक स्वराज्य ही नहीं भारत के लिये भी स्वदेशी और वैदिक विज्ञान के रूप में लाभकारी होगा और क्रमशः उन्नति और प्रभाव विस्तार करते हुए विश्व के स्वास्थ्य और चिकित्सा में भी क्रान्तिकारी प्रभाव उत्पन्न कर सकेगा।



एक रोगी का मनोरंजक विवरण

[ले०—वैद्यरत्न पं० शिव शर्मा आयुर्वेदाचार्य, बम्बई]

बम्बई के प्रसिद्ध ऐलो पैथिक मासिक पत्र "इण्डियन मेडिकल डाइजस्ट के सितम्बर १६५१ के अंक में एक महत्वपूर्ण लेख छपा था जिसका शीर्षक था "An interesting case of sub acute bacterial En docard ills" इसका शाब्दिक अर्थ है "ईषत्तीव्र कीटाणुज अन्तर्हृत्पटल प्रदाह (के रोगी का मनोरंजक विवरण" वास्तवमें यह लेख मनोरंजक और महत्वपूर्ण है। लेखक बम्बई के ही एक डाक्टर हैं। उनके कथन के अनुसार यह हृद्रोग पेनिसिलिन के युग से पहिले सदा ही मारक सिद्ध होता था। केवल आधुनिक प्रगति को ही यह श्रेय है कि नवीनतम औषधोपचार द्वारा इस असाध्य रोगी की जान बचगई। परन्तु इस रोगी को जब उसी रोग का दूसरा आक्रमण हुआ। जो कि उपर्युक्त लेख के प्रकाशन के ३-४ महीने के पश्चात् ही होगया) तब यह नवीनतम ए० टी० बायाटिक औषध सर्वथा निष्फल हुई और देशके उच्चतम हृद्रोगविशेषज्ञों ने रोगी के बचने की आशा त्याग दी। इस अवस्था में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रारम्भ की गई।

प्रस्तुत लेख में क्रमशः (१) मेडिकल डाइजस्ट के लेख का सारांश (जिसमें कि रोगी के पहिले आक्रमण का इतिहास और उच्चतम ऐलो पैथिक चिकित्सा द्वारा उसके स्वस्थ होने का वर्णन है। (२) उस लेख के प्रकाशन अनन्तर रोगी के दूसरे आक्रमन का विवरण, (३) और उसमें डाक्टरी चिकित्साकी निःशेष असमर्थता तथा आयुर्वेद द्वारा उसको पुनः जीवन दान देने का विवरण ये तीनों विषय लिये गये हैं।

"मेडिकल डाइजस्ट" के लेख का सारांश निम्नलिखित है—

"एक समय था जब ईषत्तीव्र हृत्प्रदाह का रोग विनिश्चय रोगी के जीवन की आशा पर पानी फेर देता था, परन्तु पेनिसिलिन के आगमन के पश्चात् सम्पूर्ण चित्र उत्साह जनक बन गया है।

मैं यहां संक्षेप में आपको अपने एक २५ वर्षीय विवाहित युवक रोगी की कथा बतलाता हूँ जिसको दुर्भाग्यवश एक

व्याधि का अनुभव करना पड़ा। यह पेनिसिलिन ही थी जिसने इसकी जान बचाली।

७ अगस्त १९४९..........शीत के साथ हल्का ज्वर..........तरल या ठोस आहार निगलने में पीड़ा..........गलशोथ उपजिह्विकार्य क्रुद्ध..........५ दिन सल्फा प्रयोग, चतुर्थ दिवस ज्वर ९९। पेनिसिलिन सम्मिलित की गई २००,००० इकाई प्रातः सायं.......... ज्वर पूर्ववत्..........फिनाइन इञ्जैक्शन और पैल्युड्रिन की टिकिया दिन में तीन बार चार दिन तक..........मूत्र में वसा रक्त वृक्कांश और पूय का अभाव। गलश्लेष्मा में न्यूमो कॉक्कस प्रतिश्याय के कीटाणु और स्ट्रेप्टोकॉक्कस विरिडांसकी उपस्थिति। विषम तापमान, रात्रिस्वेद। ६ वर्ष पुरानी हृदय की एक अप्राकृतिक नाद अब भी श्रोत्र गोचर। २५ अगस्त को पुनः पेनिसिलिन आरंभ, कुछ फल नहीं, तापमान १०१ तक। १५ सितम्बर १९४९ को हृद्गति चित्र लिया गया—विनिश्चय हृद्रोग। ईषद्रक्त विकृति। रक्त तल छट प्रमाण ४०, वसामेह परन्तु मूत्र में रक्त और पूय का अभाव। सम्पूर्ण क्षेत्र में केवल एक वृक्कांश। चिकित्सा-पेनिसिलिन डीसोडियम ५००,००० इकाई का इंजेक्शन प्रति ४ घंटा पेशी द्वारा, होमी सेन्निन कालाएरन, प्रोटोकेसीन, लिवोजन सब मिलाकर दिन में तीन बार जल या मौसमी रस के साथ। यकृतसत्व के इंजैक्शन (अन्तर्देशीय) कैंपोलीन तथा विटामिन बीकंप्लैक्स। बहुत बढ़िया परिचारिकाएँ, बहुत सुपाच्य आहार शय्या में पूर्ण विश्राम..........शैयामें बैठना तक बन्द पुस्तक और समाचार पत्र पढ़ना बंद, रेडियो सुनना बंद। दिनमें किसी समय थोड़ी देर के लिये कुछ चुने हुए सम्बन्धी और मित्रों को मिलने की आज्ञा। अत्युच्च योग्यताकी दिन रात की परिचारिकाएँ।

शैयामें लेटे हुए वक्षस्थल का एक्सरे-चित्र कोई दोष नहीं। सायंकाल तापमान १०० नाड़ीगति १०० से १२० तक श्वास-गति २४/२२ सितम्बर पेनिसिलिन की दैनिक मात्रा २००,००० इकाई जिसमें प्रोकेन पेनिसिलिन ४००,००० इकाई (जलीय) दिन में दोबार। यह ५ अक्तूबर तक। तथापि गले में दर्द के साथ तापमान वृद्धि। पेनिसिलिन की चोष्य टिकियाँ लेने और गले में पेनिसिलिन छिड़कने पर भी कभी गला स्वस्थ नहीं हुआ। ३० सितम्बर को रक्ततल छट गति ३५ मि.। वर्द्धमान

पाण्डु। तापमान वृद्धिपूर्ववत्। पेनिसिलिन दैनिकमात्रा वढाकर २,८००,००० करदी गई। १० अक्टूबर को पेनिसिलिन के साथ दिनमें दो वार ½ ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसीन भी सम्मिलित करदी गई। सब मिलाकर ३४ ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसीन दी गई। सब निष्फल। तापमान ९६ नाडी गति ८४ से ८६ तक, श्वास गति २० रक्तलछट १८ मि०। १८ नवम्वर से २३ नवम्वर तक पेनिसिलिन की मात्रा घटाकर २,८००,००० इकाई से ८००,००० इकाई कर दी गई। रोगी सुधार पर। हृद् रोगी शैय्या में विश्राम, शनैः शनैः क्रमशः वढने की आज्ञा। थोडा कमरे में फिरने की आज्ञा। मोटर में जाने की तदनन्तर सैर करने की आज्ञा। २८ नवम्बर से ५ दिसम्वर तक चिकित्सा—पेनिसिलिन (ड्यूरासिलिन) फार्टिफाइड ४००,००० इकाई कैपोलॉन विटामिन वी कम्प्लैक्स। रोगी साधारण तथा स्वस्थ परन्तु गलसोथ कभी २ गल पीडा सहित पूर्ववत्। १० जनवरी १९५० को रोगी को उपजिह्विकायें (टांसिल) कटाने के लिये अस्पताल ले जाया गया परन्तु हृद्रोग का इतिहास देखकर संमोहक औषधि नहीं दी गई। वापस घर पर................ ....प्रतिश्याय नाशक वैक्सीन का प्रयोग—गलशोथ में अत्यधिक लाभ (११ एप्रिल १९५०) चलने फिरने में पूर्ण स्वतन्त्रता।

मैडिकल डाइजस्ट में प्रकाशित करने के अतिरिक्त इस लेख के पत्रक भी वितीर्ण किए गये।

ऊपर उद्धत लेख का सारांश यह है कि इस रोगी का सौभाग्य था कि उसने पेनिसिलिन के युग में जन्म लिया और डाक्टरी में हृद् रोग विज्ञान यदि इतना उन्नत न होता और पेनिसिलिन की खोज न होती तो रोगी कभी वच नहीं सकता था।

जो मैं नीचे लिखने लगा हूं उसमें इस लेख के योग्य लेखक पर कोई भी आक्षेप अभीष्ट नहीं क्योंकि उसने उस औषधि की सहायता से जो आधुनिक चिकित्सा में उन्नति की चरम कृति समझी जाती है एक ऐसे रोगी की सच्ची कथा अपने इस विश्वास के साथ लिखी है कि इसके विना उस भयंकर व्याधि से रोगी का छुटकारा नहीं था।

यह लेख प्रकाशित होने के चार मास पश्चात् रोगी को इसी व्याधि का पुनराक्रमण हुआ। वही पेनिसिलिन चिकित्सा फिर की गई। परन्तु कीटाणु पेनिसिलिन सहिष्णु। वन चुके थे और रोगी

असहिष्णु । उधर तो हृदय में पूयाणु जन्य शोथ से बढ़ा हुआ तापमान पेनिसिलिन से नीचे नहीं उतरता था उधर यह औषध रोगी को असह्य घबराहट और शिर और शंखों पर "सर्पणवत्" झन झनाहट उत्पन्न कर देती थी। यह समझा गया कि यह प्रति क्रिया, वह विषके कारण हो अथवा असहिष्णुता के प्रोक्केन पेनिसिलिन के प्रोक्केन भाग के कारण होगी। अतएव सादी पेनिसिलिन ही आरंभ की गई। इसके चौबीस घण्टे में आठ इन्जेक्सन देने पड़ते थे, परन्तु ऐलोपैथी के आगे और कोई दूसरा नहीं था। दुर्भाग्यवश रोगी में पेनिसिलिन के प्रति भी असहिष्णुता आचुकी थी। साथ ही उसकी यकृत् क्रिया भी क्षीण थी और उसमें व्याधि विष प्रभाव भी पर्याप्त था इसलिये साल्फाड्रग्ज दी ही नहीं जा सकती थी। निश्चय किया गया कि पेनिसिलिन के प्रत्येक इंजेक्सन से १५ मिनिट पहिले एक इंजेक्सन असहिष्णुता नाशक औषध एण्टिस्टीन का दिया जाय इसके साथ लीवर एक्स्ट्रेक्ट तथा आवश्यकता पड़ने पर रोगी को संभालने के लिये कोरामाइन के इंजेक्सन भी मिलते ही थे। इसका अर्थ यह था कि प्रायः प्रत्येक घंटे के पश्चात् एक सूई रोगी के शरीर में चुभती थी। परन्तु पेनिसिलिन असहिष्णुता काबू में नहीं आई और रोगी की अवस्था अनिष्ट की ओर गिरती चली गई। इस समय डाक्टरों का एक मत था "रोगी असाध्य है। मृत्यु समीप है"।

तब आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ की गई अन्तिम प्रयत्न के रूप में। बृहद् वात चिन्तामणि रस, स्वर्ण वङ्ग, शिलाजतु, नागार्जुनाभ्र तथा आसव चतुष्टय अर्जुनारिष्ट, दशमूलारिष्ट कुमार्यासव, अश्वगन्धारिष्ट, प्रायः यही औषध दिये गये। पेनिसिलिन आदि सर्वथा बन्द कर दिये गये। तापमान (१०४) था, पेनिसिलिन बन्द करते ही और भी ऊपर चढ़ जाने का भय था परन्तु आयुर्वेदिक चिकित्सा के आरम्भ करते ही वह उतरना आरंभ हो गया।

पांच दिन में ज्वर उतर गया। १५ दिन के पश्चात् (आयुर्वेदिक चिकित्सा से गिनकर) हृद्गति चित्र लिया गया। हृदय पूर्ण कार्य कर रहा था और रोगी पूर्ण तया भय से बाहर था। अब १९५५ है। इस चार वर्ष में रोगी को एक तीव्र वेग मलेरिया का हुआ एक अन्य तीव्र ज्वर फ्लू का, परन्तु हृदय पर कोई दुष्प्रभाव किसी व्याधि का नहीं पड़ा। वह पूर्णतया स्वस्थ है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा का महत्त्व

[ले०—श्री कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री आ० वे० रत्न
आयुर्वेद धुरीण स्वर्णपदक प्राप्त देहली]

आयुर्वेदावतरणम्:—इस चराचर जगत् को उत्पन्न करने से पूर्व ब्रह्मा ने समग्र आयुर्वेद का स्मरण किया। इसके अनन्तर सर्व प्राणियों की पीड़ा का प्रतीकार करने के लिये प्रजापति आदि प्रमुख महानुभावों ने इस आयुर्वेद का प्रचार कर इसकी पुष्टि कर लोकोपकार किया। "यथाऽस्म भगवान् काश्यपः—"स्वयम्भु ब्रह्मा प्रजा सिसृक्षु प्रजानां पालनार्थं मायुर्वेद मेवाग्रेऽसृजत् सर्ववित् ततो विश्वानि भूतानि। इति (काश्यपे विमानस्थाने)

सुश्रुतोऽपि "अनुत्पाद्यैवप्रजाः श्लोक शत सहस्र मध्याय सहस्र ञ्च कृतवान् स्वयम्भू" इति च (सु० सू० अ० १)

तथा—ब्रह्माप्रोवाच, ततः प्रजापति अधिजगे, तस्मादश्विनौ अश्विभ्यामिन्द्र इति। सर्वप्रथम आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा ने प्राप्त किया जो सर्वज्ञान राशि का स्मरण समूह था।

यदाह चरकः—त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधेयं पितामह, "इति च० सू० अ० १। ब्रह्मा सकल वेदों का ज्ञाता था अतः उसे आयुर्वेद का ज्ञान भी स्वतः ही हुआ, वहाँ किसी गुरू की आवश्यकता न थी। ब्रह्मा को ज्ञान केवल स्मरण मात्र से ही हुआ था यतः यह आयुर्वेद नित्य है अनादि होने से स्वभाव सिद्ध लक्षण से, भाव स्वभाव नित्य होने से।

नित्यत्वञ्चायुर्वेदस्यापरापर सन्तान योगात्। तदिद मा युर्वि ज्ञानम् शाश्वतं पुण्यं स्वार्यं यशस्यमायुष्यं वृत्ति करञ्च। उक्तञ्च काश्यपीये "किं नित्योऽनित्य इति (नित्य इति ब्रूयः) कुतः? आर्ष वचन प्रामाण्याद् विना शिष्वात् साध्यासिद्धेः देश काल सामान्यात् इति।" स्पष्टम्।

परम्परा प्राप्त्य आयुर्वेद स्यावतरणिका संक्षेपेण यथाऽह धन्वरिशिष्येभ्यः "ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापति अधिजगे, तस्मादश्विनौ अश्विभ्यामिन्द्रः इन्द्रादहं मयात्विह प्रदेयमथिभ्यः प्रजाहित हेतोः। इति शल्य तन्त्रियानां सम्प्रदायः।

अन्यच्चाष्टाङ्ग हृदये—ब्रह्मा स्मृत्वायुषोवेदं प्रजापति मजिग्रहत् सोऽश्विनौ तौसहस्त्रा क्षं सोऽत्रि पुत्रादिकान् मुनीन्

तेऽग्निवेशादिकांस्तेतु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे"

इति काय चिकित्सकानाम् सम्प्रदायः। ये उक्त दोनों सम्प्रदाय प्राचीन काल से प्रचलित हैं। आयुर्वेद की उत्पत्ति का वर्णन करने के अनन्तर यह जानना युक्त है कि इसकी प्रवृत्ति का प्रयोजन क्या था? इसका वर्णन करते हुए महर्षि चरक कहते हैं "प्रयोजनञ्चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षण मातुरस्य विकार प्रशमनञ्च" यह प्रायः देखा गया है कि प्रजा जब उत्पन्न होती है वह स्वस्थ तथा नीरोग ही होती है तत्पश्चात् प्रज्ञापराधादि हेतुओं से वह रोग ग्रस्त हो जाती है, अतः प्रजा के हितार्थ आयुर्वेद का प्रादुर्भाव स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षार्थ तथा व्याधित व्यक्ति का रोग शान्त करना ही इस आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन है। देह की धातुओं की विषमता को सम करना इसका मुख्य उद्देश्य है। उक्तञ्चः—धातुसाम्य क्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम् "तथा च संग्रहेः—रोगस्तु दोष वैषम्यं दोष साम्यमरोगता" इति, आधुनिक पाश्चात्य पद्धति में भी दो प्रयोजन के भेद मानते हैं। स्वास्थ्य रक्षण विभागकानाम Preventive medicine and Hygiene. रोग नाशक का नाम curative medicine है।

आयुर्वेद से भिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां संसार में प्रचलित दृष्टि गोचर होती हैं परन्तु इन सब में रोग व रोगी की परिचर्याका ही अधिकतर विचार किया गया है, इससे भिन्न आयुर्वेद में आयु के सम्बन्ध में विचार होता है इतना ही नहीं वरन् इस शास्त्र के अध्ययन मनन तथा उपयोग से प्राणियों की दीर्घायु होती है, अतः इसे आयुर्वेद कहा है। चरम में आयुर्वेद की निरुक्ति का वर्णन अधोलिखित है—हिताहितं सुखं दुःखं आयुस्तस्य हिताहितम्। मानञ्च तच्च यत्रोक्त मायुर्वेदःस उच्यते। इति इससे यह स्पष्ट होता है कि हित और अहित सुखी होने से सुख दुःखी होने से दुख। इस प्रकार चार भेद आयु के कहे और जिसमें आयु के मान का वर्णन हो सके उसे आयुर्वेद कहा है। आयु क्या है? इसको शरीर इन्द्रिय मन तथा आत्मा के संयोग से जो उपलक्षित काल है उसे आयु कहा है। उक्तञ्च चरके सू० अ० १)।

शरीरेन्द्रिय सत्त्वात्म,
संयोगो धारि जीवितम्।
नित्य गश्चानुबन्धश्च,
पर्यायैरायु रुच्यते। इति॥

आयुर्वेद आयुके लिये हित तथा अहित

द्रव्य गुण कर्म का विचार करता है। उक्तञ्च चरके—

यतश्चायुष्याप्य नायुष्याणि च द्रव्य गुण कर्माणि वेदयत्यतोप्यायुर्वेदः। इति इन सब उक्तवक्तव्यों से आयुर्वेद की महत्ता तथा सर्व जन हितकारिता प्रत्यक्ष सिद्ध है। इतनाही नहीं वरन आयुर्वेद में आत्मा सम्बन्धी विचारों का संकलन करते हुए प्राणियों के लिये ऐह लौकिक तथा पार लौकिक वृत्तियों का भी विशेष रूप से वर्णन किया गया है जो अन्य किसी पद्धति में है ही नहीं अतः इसे सर्वोपरि माना गया है–यथा चोक्तम्—धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् आरोग्यम् मूल मुत्तमम् इति" इससे यह सिद्ध होता है कि धर्मादि चतुर्वर्गकी प्राप्ति आरोग्यतासे प्राप्त होती है। वह आरोग्यता आयुर्वेद के अध्ययनादि से ही हो सकती है। अधुना यहां यह दर्शाना युक्त प्रतीत होता है कि चिकित्सा शास्त्र का प्रादुर्भाव करके मनुष्य को सर्व प्राणियों से उत्कृष्ट स्वीकार करते हुए "पुरुष" को ही चिकित्सा में अधिकृत माना है। अतः यहां, पुरुष क्या है ? इस प्रश्न को संक्षेप में दर्शाते हैं उक्तञ्च चरके:—खादयश्चेतना पष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः। चेतना धातु दप्येकः स्मृतः पुरुष संज्ञकः "पुनश्च धातु भेद ने चतुर्विंशतिकः स्मृतः। मनो दशेन्द्रियाण्यर्था प्रकृतिश्चाष्ट धातु की" अर्थात्—खादि (आकाशादि) पञ्च और चेतना (आत्मा) सहित पुरुष कहा गया है, यहां चेतना कहने से समनस्क आत्मा का ग्रहण होता है। "खादि" ग्रहण से पञ्चेन्द्रियों का ग्रहण किया गया है, यह वैशेषिक दर्शन तथा चिकित्सा शास्त्र विषयक "पुरुष" है। सुश्रुतेऽपि—"पञ्च महाभूत शरीरि समवायः पुरुषः" इति। ऐसा कहा है। पुरुषस्य व्युत्पत्तिमाह-पुरि शरीरे शेते इति। इस व्युत्पत्तिसे 'आत्मा' को पुरुष संज्ञक माना है—उसे ही चेतना (आत्मा) माना है। आयुर्वेद शास्त्र में षडधातुज पुरुष को ही स्वीकार किया है। यथा चोक्तम् सुश्रुते–भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नाऽस्ति चिंता चिकित्सिते" इति वह षड्धातुज पुरुष पुनः साख्य दर्शन के मतसे चतुर्विंशति भेद से कहा है—यथा चरके—पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिक स्मृतः। मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्ट धातु की"। अर्थात्—मन दशइन्द्रियां तथा पञ्च इन्द्रियों के अर्थ यह सोलह विचार और पञ्च महाभूत बुद्धि व्यक्त महाङ्कारस्तथाष्टमः। यह अष्ट प्रकृति कही हैं। यह २४ तत्वों का समवाय चेतना

सहित २५ वां पुरुष कहा है। चतुर्विंशति तत्वों में सर्व प्रथम "मन" कहा है, उस मन के लक्षण चरक में कहे हैं— यथा—लक्षणं मनसो ज्ञानस्या भावो भाव एव च। सति ह्यात्मेन्द्रियार्थानाम् सन्निकर्षेण वर्तने। वै वृत्या न्यनसो ज्ञानम् सान्निध्या-त्तवर्तते। अणुत्व मथ चै कत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ" इति। ज्ञान का भाव वा अभाव मनोगमक होता है, मनकी विवृतिसे इन्द्रियों को ज्ञान नहीं होता और मनका इन्द्रियों के सामीप्य होने से होता है। अणुत्व और एकत्व यह मनके दो गुण कहे गये हैं। अतः युगपद् ज्ञानानुदय से मन अणु तथा एकत्व सिद्ध होता है।

मनोविषयमाहः–चिन्त्यं विचार्य मुह्यं च ध्येयं संकल्प मेव च। यत्किञ्चिन्मन-सोज्ञेयं तत्सर्वं ह्यर्थ संज्ञकम्॥ इन्द्रियाभि-ग्रह कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः।,अहोविचार-अतत परंवुद्धिः प्रवर्तते॥ अर्थात् चिन्त्यादि जो भी कर्म हैं वे मनके ही ज्ञेय होते हैं, वे अर्थ संज्ञक कहे हैं। इन्द्रियों में मनका स्थान प्रमुख है तथा अपने को निग्रह करना भी मनका ही कर्म है। अर्थात् अनिष्ट विषय से रोकना भी मन से ही होता है, और मन गुणान्तर युक्त सद्विषयान्तर से नियमन करता है। यदुक्तम्—विषय प्रवणं चितमधृति भ्रंशान्नशक्यते। नियन्तु महितादर्थान् धृतिर्हि नियमात्मिका॥ (शा० अ० १) इससे हेतु भूत धृति से मन आत्मा को नियमित करता है। उप-युक्त वक्तव्य आयुर्वेद में ही प्राप्त हो सका है। आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों में कहीं प्राप्त नहीं हो सकता, अतः आयुर्वेद सर्वोपरि है।

लौकिक दृष्टि से यदि देखा जायतो आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा पर विचार करने से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि "मलेरिया" ज्वर से डाक्टर लोग कुनैन का प्रयोग तो निःशंक होकर करते हैं परन्तु उसके पश्चात् भावी परिणाम को देखकर उनके भी देवता कूच कर जाते हैं, अर्थात् कुनैन के खाने से रोगी की इन्द्रियें अकर्मण्य होकर अन्त में घात शुष्क गति हो जाती है। इतना ही नहीं वरन् आजकल जो डाक्टर इंजेक्शन "हरेक रोगी की पर मोत्कृष्ट औषधि मानकर उसका प्रयोग करते हैं उनसे प्रस्तुत रोग शान्त न होकर अन्य भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे रोगी यमालय के लिये शीघ्र प्रयाण करता है। पेनिसिलिन का टीका एक तीन मास के कच्चे को लगाकर शीघ्र काल-कवलित कर दिया गया, पूछने पर डाक्टर

महोदय निरुत्तर रूठ कर चले गये। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण समाचार पत्रों से नित्यप्रति श्रुति गोचर होते हैं। इतना ही नहीं आजकल राजयक्ष्मा निरोध के लिये शासन द्वारा गच्चों को B. C. G. के टीकों के प्रयोग करने पर बड़े वेग से आग्रह कर रहा है परञ्च इसका परिणाम जो कुछ भी हो रहा है उसमें यह स्पष्ट है कि यक्ष्मा को संख्या अधिक हो रही है।

बी० सी० जी० के टीके पर आक्षेपः—श्री आनन्दगिरि शास्त्री "राजयक्ष्मा विशेषज्ञ" लिखते हैं कि बी० सी० जी० के सम्बन्ध में मैं समझता हूँ कि जिन व्यक्तियों के अन्दर राजयक्ष्मा के कीटाणु नहीं होते उनको उक्त बी० सी० जी० के टीके लगाकर उनके अन्दर यक्ष्मा के कीटाणु प्रविष्ट किये जा रहे हैं। आहार विहार के उल्लंघन से उपद्रव उत्पन्न होने पर और कृशता हो जाने पर जैसे अन्य यक्ष्मा के कीटाणुओं वाले व्यक्तियों को "यक्ष्मा" आक्रमित कर लेता है। वैसे ही उनको भी अपने घेरे में ले सकेगा। यह सम्मति योग्य तथा यक्ष्मा विशेषज्ञ पाश्चात्य डाक्टरों के साथ वार्तालाप करके निश्चित की गई है।

स्ट्रेप्टोमाइसीन के विरुद्ध आक्षेपः—

ब्रिटिश मैडिकल रिसर्च कौंसिल लन्दन ने एक विज्ञप्ति निकाली है। जिससे चिकित्सा गृहों में कुछ गड़बड़ सी मच गई है कि यह औषधि जो कि टी०बी० के कीड़ों को मारने में प्रयोग की जाती है। कभी २ इन्हें पोषक सिद्ध होती है। उन्होंने ऐसी सूचना देने से पूर्व एक ऐसे रोग रोगी का ज्ञान प्राप्त किया जो टी०बी० से प्रमाणित था और उस पर स्ट्रैप्टोमाइसिन का प्रयोग किया गया था।

इससे टी० बी० वृद्धियुक्त हुए। अतः उसका प्रयोग बन्द करना पड़ा। कौशल का कथन है कि टी० बी० के कीटाणु इस औषधि के प्रयोग से करोड़ों की संख्या में बढ़ जाते हैं। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति की यस्वतथ्यदरियां आज तक प्रचलित हुई हैं। कुछ ही समय के अनन्तर वह दोषल तथा संदिग्ध सिद्ध हुई हैं। एक दोष इनमें यह है कि इन पद्धतियों द्वारा चिकित्सा करने से धन का अधिकतर अपव्यय होता है, अतः यह हेय है। अधुना आप आयुर्वेद की चिकित्सा प्रणाली की ओर ध्यान पूर्वक विचार करें तो यह विदित हो जायेगा कि सर्व प्रथम वैद्य अपने रोगियों को अपनी प्रजा और पुत्र की तरह मान कर उसकी परिचर्या में तत्परता दर्शाते हैं। वैद्य प्रायः दयालु तथा उदार सन्तोषी अपने

यशकी आकांक्षा से समागत जनता का तन मन धन से उपचार कर आरोग्यता प्रदान करने का यत्न करते हैं। यहां उपदेश द्वारा आयुर्वेद के पढ़ाने वाले शिष्यों को सम्बोधन किया जाता है "उक्तं च सुश्रुते—कि" द्विज गुरुदरिद्र मित्र प्रव्रजितोपनन न साध्व नाथा भ्युपगतानां चात्म धोधवानामिव स्व भेषजैः प्रति कर्तव्यमेव साधु भवति। व्याधशाकुनिक पतित पाप कारिणां च न प्रतिकर्तव्यं। एवं विद्याप्रकाशते मित्र यशोधर्मार्थकामांश्च प्राप्नोति। (सु अं० ३ स्पष्टम्, जिस पद्धति में इस प्रकार के आदेश हों क्या वह कभी निष्फल यासंदिग्ध हो सकती है? कदापि नहीं आयुर्वेद में चिकित्सा के लिये आठ अंग प्रसिद्ध हैं, जिनके दो सम्प्रदाय पूर्व वर्णन किये गये हैं उनमें से एक शल्यतन्त्र काम चिकित्सा है। प्रथम विभाग आधुनिक शासन की असावधानी से तथा पूर्व शिक्षा के अभाव से वैद्यों ने उसे ग्रहण करने में आलस्य किया अतः उस शल्यादि कर्म में अनभिज्ञ ही रहे। परन्तु द्वितीय विभाग काम चिकित्सा में आज भी पाश्चात्य विज्ञों से वैद्य किसी प्रकार भी कम नहीं है। कई बार देश में संक्रामक रोगों का प्रकोप हुआ था जिसमें ब्रिटिश शासकों ने अपनी रिपोर्टों में मुक्त कण्ठ से वैद्यों की कृति की प्रशंसा की थी, यह जानकर अधिक प्रसन्नता होगी कि आधुनिक धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में सहस्त्रों ही नहीं अपितु लाखों की संख्या में जनता प्रतिदिन लाभ उठा रही है।

आयुर्वेद की पद्धति सर्वांग पूर्ण होते हुए भी शासन की सहायता न पाकर अधूरी ही प्रतीत होती यदि हमारे केन्द्रीय शासक इस ओर ध्यान दें तथा जितना रुपया विदेशी चिकित्सा में व्यय करते हैं उसका दशमांश भी देशी चिकित्सा पर व्यय करें तो देश का महान उपकार हो सकता है।

पूर्वकाल में राजा लोग अपनी रक्षा एवं जनता के हित के लिये वैद्यों की नियुक्ति करते थे। कहा है:—

'राजा राजगृहासन्ने
प्राणाचार्य निवेशयेत्'

आजपाश्चात्य चिकित्सा के प्रभाव से प्रभावित होकर आंग्ल भाषा भाषी शासक स्वदेशोन्नति के व्याज से विदेशीय औषधियों पर करोड़ों रुपये व्यय करके स्वदेशी का ढोल पीटते हुए दृष्टि गोचर हो रहे हैं। जबकि यह स्पष्ट ही कहा है "यस्य देशस्य योजन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्" वाग्भट ने देखा जाय तो जब

ईस्ट इण्डिया कम्पनी सर्वप्रथम भारत में आई और अपने साथ शवशः अंग्रेजी सेवा को साथ में लाई, उनकी रक्षा तथा स्वास्थ्य के लिये अंग्रेजी औषधियों और डाक्टरों को भी लाया गया। इसके पश्चात् भारत में शनैः शनैः जैसे उनका पदार्पण अधिक होता गया तो उन्होंने मेडिकल विद्यालय आदि खोल कर जनता में इस प्रकार अपने स्वार्थ के लिये किया। यह उनकी बुद्धिमता का परिचय है।

परन्तु हमारे शासक इस ओर ध्यान ही नहीं देते यह हमारा दुर्भाग्य है अथवा शासन का ? आयुर्वेद में चिकित्सा के चार भेद माने गये हैं। उक्तश्च चरके युक्ति व्यपाश्रपं संशोधनोपशमने चेष्टाश्च इष्टफलाः। आहारौषधद्रव्याणां योजना च० चि० अ० ११)। अर्थात् (१) संशोधन (२) संशमन (३)अहार (४) अचार पाश्चात्यवेता इन चारों का इस प्रकार नामकर्ण करते हैं।

१. संशोवनः— Eliminatin or Redical treament.

२. संशमन—Salative or conseruative treatment.

३. आहार—Dictetic treatment.

४. आचार—Regimenal treatment.

संशोधन से शस्त्र कर्म पञ्चकर्म। आलेपनादि लेपनादि, यह संशमनार्थ है। आहार में षड्रस मुक्त पथ्यादि आहार है। आचार में काय षाड्मनः कर्म चेष्टाश्च दृष्टफलाः। यह प्रायः मुक्ति व्यपाश्रय होता है तथा दैव व्यपाश्रय मन्त्रौषधि प्रयोगाश्च। इनउक्त चार भेदों का प्रयोजन रोग निग्रह के कारण मानते है।

आधुनिक पाश्चात्पवेत्ता डाक्टर नाम धारी बिना औषध के गुणदोष जाने ही जैसे आंगल कम्पनियों की पेटेण्ट मडिसन्स आती है उन्हीं का रेग्टप्राणियों पर करते है। परन्तु इसके परिणाम का उन्हें ज्ञान नहीं होता है। परन्तु आयुर्वेद, वैद्य को बिना द्रव्य के गुण दोषों के ज्ञात किये उनके प्रयोग की आज्ञा नहीं देता। जो बिना जाने प्रयोग करने का साहस करते हैं उन्हें नरक गामी कहा है। यथा चरके—

यो भेषज मविज्ञाय
प्राज्ञामानी प्रयच्छति।
त्यक्तधर्मस्य पापस्य
मृत्यु भूतस्य दुर्मतेः॥
नरो नरक पाती
स्यात्तस्य संभाषणादपि॥ इति

जो प्राज्ञमानी (मूर्ख) औषध के गुण दोष को न जान कर रोगी को देता है ऐसे अधर्मी तथा पापी मृत्युभूत दुर्बुद्धि के साथ बोलने वाला व्यक्ति भी नरक गामी होता है। अतः बिना औषध परिज्ञान तथा शास्त्रज्ञान से जो रोगी की चिकित्सा करता है वह गर्हित यथा त्याज्य कहा है।

औषध वही कही गई है जो आरोग्य दे। वही वैद्य श्रेष्ठ है जो रोगों से मुक्तकरे। सम्यक प्रकार से किया हुआ प्रयोग कर्म की सिद्धिकृत होता है, सर्व गुणों से युक्त ही कर्म की सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। अतः आयुर्वेद में श्रद्धा तथा विश्वास रख कर चतुर्पाद समन्वित वैद्य यश का भागी होता है। इतिशम्

समीर पन्नग रस—कूपीपक्व स्वर्ण घटित

[ले०—वैद्य मार्तण्ड श्री बाँकेलालजी गुप्त, प्राणाचार्य, इटावा]

समीर पन्नग के द्रव्यक

स्वर्ण वर्क दो तोला, शुद्ध पारद ८ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला, शुद्ध मल्ल ८ तोला, शुद्ध मशिल ८ तोला, शुद्ध हरताल तबकी (उत्तम) ८ तोला।

निर्माण विधि

प्रथम पारद को खरल में डाल कर उसमें थोड़ा थोड़ा स्वर्ण वर्क डालकर खरल करें। और धीरे २ सभी वर्क उसमें मिला दें। उसके मिल जाने पर नीम्बू का स्वरस डालकर एक दिन खरल करें। दूसरे दिन नीम्बू का रस निकाल कर गरम पानी डालकर मर्दन करें। थोड़ी देर बाद गरम पानी से दो तीन बार धोकर नीम्बू के रस से उत्पन्न आम्लता को धो देना चाहिये। इसके उपरान्त पानी के अंश को कपड़े से सूखा कर एक मोटे वस्त्र से पारद छान दें। अब इसमें शुद्ध आवलासार गन्धक डाल कर कज्जली करें। जब अच्छी प्रकार से कज्जली बन जाय तब शेष तीनों औषधियाँ प्रथक प्रथक खरल में डाल कर घोटलें। फिर कपड छन कर कज्जली में मिश्रित कर तीन चार घण्टे अच्छी प्रकार खरल करें। इसमें तीन भावना तुलसी के रस की और तीन भावना अडूसे के स्वरस की देकर शुष्क कर लें। इस

पदार्थ को कपड मिट्टी की एक आतसी शीसी में डाल कर वालुका यन्त्र में चढावें। इसे चौवीस घण्टे लकड़ी की अग्नि दें। प्रथम अग्नि चार पाँच घण्टे हल्की देकर बाद में मध्यम अग्नि देते रहें। तेज अग्नि न दें। शीशी का मुँह खुला रहने दें। चौवीस घण्टे अग्नि देने के पश्चात् भट्टी को स्वयं ठण्डी होने दें। जब स्वयं शीतल हो जाय तब शीशी सावधानी पूर्वक निकाल कर उसे तोड़े और परम रसायन समीर पन्नग रस प्राप्त करें। यह रस देखने में लालीमायुक, कृष्ण वर्ण का और चमकदार होगा। तोड़ने में कठिन होगा।

मात्रा

इसकी मात्रा साधारणतः १/२ रत्ती से १ रत्ती तक है अवसर विशेष पर बलानुसार दो रत्ती तक दे सकते हैं। साधारणतः मात्रा प्रातः सायं देनी चाहिये। परन्तु आवश्यकतानुसार ३/२, १/२ घण्टे उपरान्त भी दी जा सकती हैं, पर कफ का श्राव होने पर मात्रा देना बन्द कर देना चाहिये एवं थोड़ी ही देनी चाहिये।

अनुपान

पान का स्वरस, अधरक का स्वरस, वांसा स्वरस, मक्खन, सुवाधा, मधु आदि के साथ इसे सेवन करा सकते हैं

प्रभाव

शास्त्रों के अनुसार इस रस में मल्ल का मिश्रण होने से यह स्वल्प, उग्र एवं उष्ण वीर्य है। मल्ल के अन्य योग, पञ्चभूत मल सिन्दूर, मल्ल भस्म, मल्ल पुष्प आदि सभी उग्र प्रकृति के होते हैं, परन्तु यह समीर पन्नग रस उग्र नहीं है। और इसी कारण इसकी मात्रा दिन में दो चार तक देने में हानि नहीं रहती। यह रस उत्तेजक तथा बलवर्धक है। पाण्डु एवं शीत पूर्वक ज्वर के उपरान्त होने वाली निर्बलता, लोह भस्म के साथ देने से दूर होती है। पक्षाघात की जीर्ण अवस्था, अपतानक अढतन्त्रक, जीव्हा स्तम्भ, अर्पित, हनुस्तम्भ आदि में भी लाभप्रद है। कफ प्रधान रोगों में तो यह परम लाभकर है। त्रीदोष, निमोनिया, सन्धीवाद, उन्माद, काश, स्वास, आदि रोगों को शीघ्र शमन करता है। कफ का श्राव कराता है।

समीर पन्नग, मल्ल सिन्दूर, एवं पंचसूत रस में मल्ल का मिश्रण है। अतः तीनों के गुण धर्म में साधर्म्य एवं वैशिष्ट भी पाया गया है। परन्तु मल्ल सिन्दूर अत्यन्त तीक्ष्ण, विस्फोटक व श्लेष्मिक कला पर तीव्र असर करने वाला है। पंचसूत रस इस से कम उग्र है। तथा आरम्भ

में श्लेष्मिक कलाओं पर कम हानि पहुँचाता है। तब समीर पन्नग रस इन दोनों से कम तीव्रता युक्त और कम स्फोटोत्पादक है।

समीर पन्नग रस स्वास वाहिनी और फुस्फुस कोषों की श्लेष्मिक कला पर शोथ उत्पन्न न कर कफ का श्राव कराता है और दोष के शमन होने पर उनको बल भी देता है। समीर पन्नग रस द्वारा नलिका के अन्तर भाग में उत्पन्न पुष्ट व्रण का फात्मक या वातात्मक होने पर कफ का श्राव होकर नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण योग्य चिकित्सक समीर पन्नग रस को जीर्ण काश और कफादि के रोगों में सेवन कराकर आयुर्वेद का सिक्का बैठाते हैं।

मल्ल सिन्दूर से कफ का शोषण होता है अतः कष्ट और स्वास वाहिनियाँ शुष्क हो जाती हैं। पंचसूत रस से संचित कफ की दुर्गन्धि कम होती है एवं जलद्रव्य में रूपान्तर होकर कफ कम हो जाता है। तथा समीर पन्नग रस से स्वास वाहिनी और फुस्फुस कोष उत्तेजित होकर कफ छूट जाता है और कफ का श्राव हो जाता है। इसलिये जहाँ कफ का श्राव कराना अभिष्ठ हो वहाँ इसी रसायन का प्रयोग कराना चाहिये। कफज का वातज स्वास काश में समीर पन्नग का उपयोग लाभकारी होता है। इससे कफ निकल कर काश स्वास निकल कर स्वतः ही ठीक हो जाते हैं। उरस्ताप तथा फुफ्फसमूल में समीर पन्नग न देकर पंचसूत रस का प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि पंचसूत से कफ का रूपानन्तर होकर शूक्ष्म हो जाता है। जबकि समीर पन्नग स्वयं पतला कर निकालता है।

वात, कफ मूड़्ष्ठ स्वास रोग में समीर पन्नग रस का उपयोग उत्तम रहता है। क्योंकि यह कफ को निकाल देता है। पंचसूत रस का उपयोग इसमें इतना उपयुक्त नहीं है। इस रोग में समीर पन्नगरस ½ रत्ती से १ रत्ती सुहागे के फूले के साथ मिला मधु में चटावें। इसमें ऊपर मुल्हटी फरेरेका छिलका, मिश्री तथा वासातर का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये। श्वास के कम न होने पर यही क्वाथ दो तीन बार आधे २ घन्टे उपरान्त पिलावे। यह क्वाथ स्वयं श्वास के वेग को शान्त करता है। और कफ को पतला कर निकालता है। इसके साथ समीर पन्नग का योग हो जाने से यह अधिकगुण प्रद हो जाता है। वेग की शान्ति के उपरान्त एक एक मात्रा प्रातः सायं पान के स्वरस

के साथ देने से श्वास वाहिनियों से कफ निकल जाता है और उनको आन्तरिक शक्ति भी मिलती है।

पुरानी खांसी का प्रकोप अनेक कारणों से होता है। यह प्रायः सभी ऋतुओं में पाई जाती है। जिसने ऋतु अथवा अवस्था में ही दोष कुपित हो जाते हैं। कभी कभी व्याधि कुछ काल तक दोष के धातुओं में लीन हो जाने पर शान्त हो जाती है और अवसर पाकर पुनः आक्रमण करती है। शीतल वायु में रहना, शील वाले मकानों में रहने आदि कारणों से कफ सुईष्ट काश हो जाता है। यह काश यदि तुरन्त नष्ट हो जावे तब तो ठीक रहता है अन्यथा फिर सामान्य कारणों के मिल जाने पर पुनः काश का आक्रमण हो जाता है। इसका उपाय शीघ्र होना चाहिये। अन्यथा थोड़ा ही शीत का असर होने पर यह रोग त्रास देता रहेगा और रोगी की पीवनी शक्ति क्षीण होती जायगी।

ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाने पर अधिकाधिक सावधानी रखने पर भी रोग से मुक्ति नहीं होती क्योंकि दोष अत्यन्त सूक्ष्म अंश बीज रूप से शरीर में स्थिर हो जाते हैं। यथार्थ में इस समय पहलीवार दोष पुष्ट होकर कास की उत्पत्ति हुई उसी समय इन सब का विशिष्ट सम्मिलिन हुआ फिर उस सम्मिलन के कारण दोष दूष्य संयोग का परिणाम शारीरिक घटक पर होता है और इसी कारण बार बार वही लक्षण उत्पन्न होता है।

विपरीत कारणों से उत्पन्न शारीरिक परिस्थिति में दोष दूष्य संयोग दबा हुआ रहता है। और थोड़ी सी भी अनुकूलता मिलने पर अपना प्रभाव उसी प्रकार प्रकट कर देते हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में ताप से जली हुई घास के बीज पृथ्वी में छिपे रहते हैं पर वर्षा ऋतु का पानी पाकर पुनः हरी घास उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार यह रोग प्राकृतिक बन जाता है। जीर्णकास में श्वास नलिका श्वास प्रणाली श्वास वाहिनियों का जाल और फुफ्फुस कोषों की श्लेष्मिक कला सभी पुष्ट हो जाते हैं। श्लेष्मिक कला में कुछ अग्रता आती है या सूक्ष्म व्रण हो जाते हैं। अतः इनमें कफ संचय होने पर उपचार किये जाने पर कफ स्राव कठिन हो जाता है। अतः इस बीज का नष्ट करना आवश्यक है।

प्राकृतिक रोग और कई प्रकार के होते हैं। इनमें एक चर्म रोग भी है। बाल्यावस्था में होने वाला चर्म रोग कितने ही रोगियों को उम्र भर परेशान करता

रहता है। यह कभी किसी रूप में एक स्थान पर होता है तो कभी दूसरे रूप में दूसरे स्थान पर होता है। इनकी खुजलाने की रीति चलने की शैली मन्दता, अस्थिरता, मानसिक अवस्था, एवं वर्ताव आदि में कुछ उतावला पन रहता है। ऐसे जीर्ण रोग में एक प्रकार की विष्टिता प्रतीत होती है एवं कास और चर्मरोग क्रमशः आक्रमण करते रहते हैं। जब चर्मरोग बलवान तब खांसी कम रहती है अथवा नहीं भी रहती और जब चर्मरोग दब जाते हैं तब आन्तरिक दो से कफ शुष्क होकर बलवान बन जाता है। त्वचा पर स्फोट रूप से होने वाले लक्षण और भावी कफ के लक्षण दोनों एक ही प्रकार के दोष दूष्य विकृति से उत्पन्न होते हैं। इस तरह कफ और कफवात प्रकोप से उत्पन्न इन विकारों में समीर पन्नगरस अति उपयोगी है। इसे दिन में एक वार ही देना चाहिये। वह भी पूरी मात्रा में। इसे बार बार न दें तथा अन्योषधियों के साथ न दें। अन्यथा इसके कार्य में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

यह रसायन वातज आक्षेप के लिये अति उत्तम है। तथा स्तम्भ, संकोच और शूल आदि नाशक है। त्वचारोग, जीर्ण पक्षाघात, अपतानक, अपतन्त्रक, ग्रीहा स्तम्भ, इन्द्रग्रह, अर्दित, धनुष्कंद, आदि हैं, वात रोग जिसमें कफ का दोष भी हो, नष्ट हो जाते हैं। कफ प्रधान उन्माद रोग में भी यह वात कफ का शासन कर रोग को दबा देता है।

रस। जीर्ण में पित्त श्राव कम होकर कफ में श्राव अधिक हो जाता है। ऐसे में समीर पन्नग रस का प्रयोग उत्तम रहता है। उदर में जड़ता अन्न विद्वेष, उल्टी, मुख में मीठापन, चिपचिपा थूक, उदर में वात संचय, आदि लक्षण हो तब समीर पन्नग रस अच्छा लाभ करता है।

विशूचिका रोग में जब वमन एवं विरेचन अधिक हो, शक्ति क्षीण हो गई हो, हाथ पैर में शीतलता हो ऐसी अवस्था में सोंठ और कायफल की शरीर में मालिश कराई जाती है अथवा कपर्द भस्म की पोटली बनाकर समस्त शरीर पर फेरनी चाहिये। हाथ पावों के तलवों पर ही सागर तेल मलना उचित है और समीर पन्नग रस १ चावल से २ चावल, मांडूर भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, एवं प्रवाल पिष्टी के साथ मिलाकर तुलसी एवं अदरख स्वरस और शहद के साथ १०-१० मिनिट पर ४-५ खुराक देने से लाभ होता है।

शरीर गरम हो जाता है इसके बाद में सूत शेखर रस संजीवनी रस देने से पूर्ण लाभ होता है।

समीर पन्नग रस उतेजक और बल वर्द्धक रसायन है। अपना अनुभव हमने स्वर्ण घटित समीर पन्नग रस का हजारों रोगियों पर अनुभव किया है। इनमें श्वास, सनिपात, वातज, विशूचिका, एवं प्रसूत रोग पर विशेष लाभ मिला है। इससे यदि कुछ वैद्य बन्धु लाभान्वित हो सके इससे लिख रहा हूँ।

श्वास रोग

यह कैसा भी हो, इसमें समीर पन्नग रस (स्वर्ण घटित) १ रत्ती, शुहागे का फूला २ रत्ती, बाँसा स्वरस १ तोला, अदरख का रस ६ माशा, शहद १ तोला मिला कर दिन रात में दो तीन मात्रा देने से अवश्य लाभ होता है। श्वास रोग को समूल नाश करने के लिये प्रथम रोगी को स्नेहन, स्वेदन, और वमन यह तीनों कार्य करा देने चाहियें। इसके पश्चात प्रातः सायं समीर पन्नग रस (स्वर्ण घटित) १ रत्ती, सुहागा १ रत्ती को मक्खन दो तोला मिला कर चटाने से पुनः श्वास के वेग का भय नहीं रहता। जब श्वास का दौरा उठता हो तब समीर पन्नग रस, सुहाके का फूला, अडूसे का स्वरस, अदरक का स्वरस, और शहद मिलाकर दें। बीच में दौरा के समय श्वास रिपु की दो २ मात्रायें बराबर जल में मिला कर दें। इससे तीव्र वेग भी शान्त हो जाता है और श्वास नलिका साफ होकर रोगी शान्ति अनुभव करता है।

सन्निपात

सन्निपात की अवस्था में जब रोगी को श्वास उत्पन्न हो गई हो या गले में कफ का प्रभाव प्रतीत होता हो उस अवस्था में समीर पन्नग रस २ रत्ती, एवं सुहागे का फूला ४ रत्ती, अडूसे का स्वरस १ तोला, के साथ चटावें। इससे कफ निकलने लगेगा यदि न निकले तो १ घन्टा उपरान्त उपरोक्त एक मात्रा पुनः दे। इससे श्वास का उपद्रव शान्त हो जायगा। सनिपात में जब रोगी के पसीना अधिक आने लगे व नाड़ी शिथिल प्रतीत हो उस समय समीर पन्नग रस ½ रत्ती मृत संजीवनी अर्क के साथ घिसकर पिलाने से लाभ प्रतीत होता है।

वातरोग

कफज वात रोगों में समीर पन्नग रस १ रत्ती, सोंठ का चूर्ण एक रत्ती, मक्खन में मिलाकर दें। यह आमवात में भी लाभप्रद है। पाण्डु ज्वर आदि के

कारण उत्पन्न निर्बलता के कारण उत्पन्न रक्तल्पता में समीर पन्नग रस कूपीपक्व स्वर्ण घटित १ रत्ती को लोह भस्म (उत्तम) १ रत्ती के साथ मिलाकर देने से निर्बलता एवं रक्ताल्पता धीरे २ नष्ट हो जाती है।

मानव की सर्व श्रेष्ठ चिकित्सा पद्धति

[ले०—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० नित्यानन्दजी शास्त्री, अमरोहा]

नहीं कामना राजपाट की
स्वर्ग और अपवर्ग न चाहूँ।
केवल चाह यही है प्रभुवर ?
रोगी जन का कष्ट मिटाऊं॥

आयुर्वेदोऽमृतानाम्

यह त्रिकाल सत्य है कि संसार में सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धतियों में आयुर्वेद सर्व श्रेष्ठ है। यह कोई कोरी कल्पना अथवा अपने पूर्वजों प्रति अंध विश्वास ही नहीं अपितु उस सच्ची साधना के प्रति श्रद्धाञ्जलि मात्र है जोकि रज और तम से निर्युक्त महर्षियों के द्वारा सहस्त्रों वर्षों से कल्पी जाती रही है।

'रजस्तमोभ्यां निर्मुक्ता स्तपोज्ञान बलने ये।
येषां त्रैकाल ममलं ज्ञान मव्याहतं सदा॥'

"आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते
तेषां वाक्य मशंसयम्।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते
कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः॥

वस्तुतः आयुर्वेद प्रचारक महर्षियों का ज्ञान त्रिकाल सत्य है, जबकि आज की चिकित्सा पद्धतियों की लेबोरेटरियों का प्रयोग केवल प्रत्यक्ष पर आधारित है एवं जिनके अनुसंधान कर्त्ता पैसे से खरीदे जा सकते हैं। यहां रज और तमका प्रधान्य है। इसके ठीक विपरीत आयुर्वेद का प्रथम सिद्धान्त नात्मार्थं नापि कर्मार्थं मथभूतदयां प्रति, वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमति वर्तते॥ आज की चिकनी चुपड़ी पद्धतियों के सर्व सर्वाओं के गर्दन नीचे झुकाता है। जहां पर धनी ही उत्तम चिकित्सा प्राप्त कर सकते हैं "यस्य देशस्य यो जन्तु स्तज्जं तस्यौषधं हितं" आयुर्वेद का यह पुनीत उपदेश कोई प्रोपेगण्डे का नारा ही नहीं है अपितु चिकित्सकों का अनुभव है। भारत की चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेदिक) इतनी सरल एवं निरुपद्रव है जो कि प्रत्येक रोगी

को विना किसी उपद्रव के लाभ ही करती है जबकि दूसरा चिकित्सा विधियों की औषधियां अपना दूसरा उपद्रव भी साथ २ पैदा कर देती है।

इस सम्बंध में ऐलोपेथिक की सुप्रसिद्ध अमृत सम लाभकारी औषधि पैनिसिलीन को ही लीजिये। इसके इंजेक्शन से कई रोगियों को इतनी तीव्र (Vrticoria शीत पित्त) उछलती है कि रोगी चिकित्सक को खूब पेट भर कोसता है। दूसरे, जिन रोगियों को कभी इंजेक्सन नहीं लगा उन्हें प्रथम वार लगाते ही ऐसा हृदयावरोध का सा आक्रमण होता है कि चिकित्सक हक्का वक्का रह जाता है। एक वार का नहीं वीसों वार का देखा तमाशा है।

साधारण ज्वर में जिसका अभीतक कोई निदान नहीं हुआ ऐलोपेथिक चिकित्सक डायफोरेटिक मिक्श्चर देते हैं जबकि वह देते देते ही वमन ला देता है एवं ज्वर भी नहीं उतरता। इसके ठीक विपरीत आयुर्वेदिक चिकित्सक अपने ज्वरार्त रोगी को सुदर्शनार्क देकर संतुष्ट ही नहीं अपितु ठीक भी कर देते हैं।

कहते हैं कि आयुर्वेद का निदान केवल ढकोसला है। उनके पास तीन अंगुली छोडकर माइक्रोस कोफ एवं एक्सरे जैसी स्पष्ट निदान कारिणी कोई वस्तु नहीं यह परम भयावह वात है। इन यन्त्रों के पीछे करोड़ों रुपये खराब करके निदान किया जाता है जिनसे वेचारे निरीह एवं अकारण भूत जीवों को ढूंढा जाता है। यदि इतना अधिक व्यय केवल रोगी की चिकित्सा में (आयुर्वेदिक रीत्या) कर दिया जाय तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि भारतवर्ष जैसे तीन देशों की जनता को स्वास्थ्य लाभ कराया जा सकता है। उदाहरणार्थ आप ग्रहणी के रोगियों को ले लीजिये जिसके लिये डाक्टर साहब ने दो हजार रुपये का माइक्रोस्कोप रख छोड़ा है। दूसरे ये लोग अमीविक Ameebit Disentry में स्वीकार करते हैं, इसके लिये जीवाणु मारने के लिये करोड़ों रुपयों की व्ययसाध्य लेवोरेटरियों ने अनेक दवाइयें निकाली हैं यथाः—
१. इन्ट्रोग्वानेर्डान Entroguonidine.
२. इन्ट्रोक्युनोल Entroquinal.
३. स्टोवार्सल Stovarsal. ४. फार्मासिवाजोल ५. कार्वनट्रीन एवं इमेटीन के इंजेक्शन। किन्तु क्या कोई डाक्टर बन्धु "इस दवा से मैं ग्रहणी को समूल कर दूंगा" ऐसा कह सकता है? जबकि ठीक इसके विपरीत हमारा एक छोटा सा

आयुर्वेदिक चिकित्सक भी ताल ठोक कर यह दावा ही नहीं कर सकता अपितु प्रतिदिन पर्पटी के अल्प मूल्यसाध्यक कल्प विधान से सहस्त्रों रोगियों को जीवन-दान देता है एवं रोग को पुनः चैलेञ्ज देता है कि यदि तुम में शक्ति है तो आजाना। इसमें भी यदि कल्प मठ्ठे के साथ कराया गया हो तो पुनः सोने में सुगन्ध का सा अनुभव होता है। यथाः—

न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्,
न तक्र दग्धाः प्रभावन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं हिताय तथा,
नराणां भुवि तक्र माहुः॥

यह है आयुर्वेद पद्धतियों से ठीक हुए रोगी के रोग के अपुनर्भव की बात जोकि आज की चिकित्सा पद्धतियों को शेखचिल्ली की कहानियों की भांति जान पड़ती है। एक रोग की चिकित्सा करते हैं दूसरे रोग को निमन्त्रण देते हैं। यथाः—

निमोनिया के बाल रोगी में एम. बी. ६९३ या सियाफोल या सल्फा डाइजीन निर्विवाद आशुलाभप्रद है। किन्तु यदि सत्यता से देखिये तो इन औषधियों से ठीक हुए बच्चे ऐसे कितने बचे है जिन्हें बाद में यकृत या वृक्क का रोग न हुआ हो। मैं समझता हूँ कि ७४% बच्चों को Cirrtiosis of liver सिरोसिस आफ लीवर यकृद्दाल्युदर जो कि आजकल एक कठिन एवं असाध्य बाल रोग है एवं Nephrits नेफारटिस वृक्क शोथ इनसे अवश्य हो जाता है।

इसके विपरीत आयुर्वेद के वृहत् कस्तूरी भैरव, मृगशृङ्ग, लक्ष्मीविलास, मृङ्गाक रस से ठीक किया हुआ रोगी दूसरे किसी भी रोग से पीडित होते ही नहीं अपितु पुनः निमोनिया का भी भय नहीं रहता। जबकि सल्फाइड्रन का रोगी १५ दिन बाद पुनः आकर डाक्टर को नमस्ते कर लेता है। क्या रोगों के अपुनर्भव की क्षमता रखने वाले आयुर्वेद विज्ञान के सामने कोई पद्धति ठहर सकती है? कदापि नहीं।

कहते हैं कि विदेशी पद्धतियां क्षयपर अच्छे अच्छे आविष्कार करके रोगियों को जीवन दान दे रही है।

स्टैप्टो माइसीन, पास टीबी जाइड, आइसोनिको टिनिक, एसिड हाइ जाइड। आदि के प्रयोग से कुछ समय को रोग दब जाता है मिटता नहीं दिन दिन क्षयके रोगी तो और बढ रहे हैं। दसों रोगी मैंने ऐसे देखे हैं कि जिन्हे स्टेप्टो माइसीन देने पर मुँह से न्यून रक्त आता है एवं मूत्र से

इसके विपरीत एल्ब्यूमीन आने लगता है। इसके विपरीत जय-मंगलरस, स्वर्ण मालती वसन्त च्यवनप्राश एवं मुक्ता के प्रयोग से स्थिर लाभ होता है। यह मैं मानता हूँ कि रोगी को आरम्भ में एक आध मास तक इन औषधियों से कोई विशेष लाभ नहीं होता जब कि इञ्जेक्शनादिक से शीघ्र ही लाभ जंचने लगता है। परन्तु इन आयुर्वेदिक औषधियों का लाभ स्थायी होता है। सत्य पूछिये तो प्राचीन काल में यक्ष्मा के रोगी अंगुली पर गिने जाने योग्य थे किन्तु अब जैसे २ नये आविष्कार होते गये ऐसा घर नहीं जहां यक्ष्मा रोगी न हो। यदि आज आयुर्वेद का स्वस्थ वृत ठीक प्रकार से पालन किया गया होता तो यक्ष्मा ही क्या कोई रोग जनता के सामने न आता।

Prevention is better than cure प्रेवेंशन इज बेटर देन क्योर, चिकित्सा से अच्छा यह है कि रोग ही पैदा न हो, यह पाश्चात्यों का केवल थोथा नारा है वस्तुतः इसका विधान आयुर्वेद में है। जो पाण्डु रोगी पचासों लीवर एक्स ट्रैक्ट एवं मेकालीन (विटामीन बीं १२) इञ्जेक्सनों से लाभ नहीं पाते वे केवल लोह भस्म एवं लोहासव से बेसनी रोटी घृत के साथ (४० दिन कल्प से) लेकर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करते हैं, यह वैद्यों का प्रति दिन का सत्य अनुभव है।

इसके अतिरिक्त नपुसकता एवं प्रमेह की ऐलोपेथिक में कोई गारण्टी की चिकित्सा नहीं केवल पैराण्डीन के इञ्जेक्सनों में रोगी के दाम कटते हैं लाभ तो भविष्य के गर्भ में रहता है। जब कि आयुर्वेद इन रोगों के लिये त्रिबंग जैसी अनुपम औषधियों एवं अनेक जादू के समान प्रभाव करने वाले वाह्यालेप (तिला) हैं जिनके बल पर वृद्ध भी नव यौवन प्राप्त करते हैं। यही नही सन्निपात की चिकित्सा में नाडी क्षीण होने पर मल्ल सिंदूर जितना लाभ करता है उसका ½ भाग भी कोरा मीन या ग्लुकोज सैलाइन इञ्जेक्सन लाभ नहीं करता पुनः किस वैभव के सामने विदेशी चिकित्सा पद्धति डींग हांक कर आयुर्वेद को नीचा दिखाना चाहती है केवल यहां तो यही बात है कि जिसको पिया चाहे वही सुहागिन। गवर्नमेण्ट की अदूर दर्शिता के कारण एवं अनुभव हीनता के कारण ही इतनी व्ययसाध्य चिकित्सा पद्धति को जनता के ऊपर लाद रही है।

अब जरा इनके सज्जनों की बात

सुनिये, वस्तुतः सर्जरी (शल्य चिकित्सा) क्रियात्मक चिकित्सा है। इसका सम्पूर्ण विधान सर्जर सुश्रुत ने लिखा है जो स्पष्ट है। उसमें शस्त्रों का इतना सुन्दर विवेचन एवं शल्य कर्म विधान लिखा है कि पाश्चात्य चिकित्सकों को भी नतमस्तक होना पड़ता है। जैसे नासा संधान को भी इण्डिया मे थड के नाम से पुकारते हैं। प्राचीन शल्य शास्त्रियों के विधान से प्रमाणित होकर अमेरिका के फुल ब्राइट छात्र वृत्ति लेकर संस्कृत के विशेष अध्ययन को पूना विश्व विद्यालय में आये हुए डाक्टर मोटर ने वहां आयुर्वेद विद्यालय में गत वर्ष एक सुन्दर संस्कृत में भाषण दिया था जिसके शब्दों से भारतीय सर्जरीकी श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

मैं आशा करता हूं कि अपने वैद्य बन्धुओं को सरकार पूर्ण स्वतन्त्रता एवं आर्थिक सहायता प्रदान करे तो पुनः प्राचीन काल जैसा ही सर्जरीका युग आ सकता है। यह तो सर्व विदित है कि राजा भोज के मस्तिष्क का आप्रेशन भी प्राचीन शल्य शास्त्रियों द्वारा बड़ी सफलता से हुआ था जोकि आज के सर्जरों के सामने एक समस्या है। इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि आयुर्वेद सर्व श्रेष्ठ विश्वकी राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के योग्य है।

आयुर्वेद

[ले०—श्री मूलचन्द्र वहड शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
गोल्ड मेडलिस्ट, लक्ष्मणगढ़]

आयुर्वेद का अतीत अतीव सुन्दर है। आजकल की प्रचलित सभी चिकित्सा प्रणालियों में आयुर्वेद अपना सर्व प्रथम स्थान ही नहीं रखता बल्कि यों कहिये कि आयुर्वेद ही अन्य चिकित्सा प्रणालियों का मूल है। यहीं से यूनान व यूरोप के दूसरे हिस्सों में चिकित्सा पद्धति का प्रसार हुआ है। वर्तमान एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति भी इसी आयुर्वेद से निकली है। अब भी हमारे चरक में सैकड़ों वर्षों तक रिसर्च की सामग्री मौजूद है और इसी सामग्री के बल पर महर्षि चरक का यह दावा है—

"यदिहास्ति तदन्यत्र
यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्"

प्राचीन इतिहासों में आयुर्वेद की उत्कर्षता के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है वह आपसे छिपा नहीं है। अष्टांग आयुर्वेद द्वारा हम हर प्रकार के रोगों का मुकाबला करते आये हैं। हमने पीड़ित रोगियों के जीवन की हर तरह से रक्षा की है। हमारी कार्य चिकित्सा अब भी किसी चिकित्सा पद्धति से पीछे नहीं है। रही शल्य शालाक्य की बात वह भी वाग्भट्ट के समय तक हमारे लिये हस्तामलक वत था। अब भी आन्ध्र प्रदेश में ऐलोपेथिक चिकित्सा द्वारा न ठीक होने वाले नेत्र रोगों की चिकित्सा कुशल वैद्यों द्वारा सफलता पूर्वक की जाती है। रसायन और वाजी करण में संसार की कोई भी चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के सामने टिकने का साहस नहीं कर सकती। चीन देश के सुप्रसिद्ध यात्री ह्यान चांग ने इस बात पर आश्चर्य प्रगट किया है कि रसायन शास्त्री नागार्जुन ने रसायन सेवन से ही अपनी उम्र कितनी बढा ली थी। वृद्ध महर्षि च्यवन ने भी रसायन सेवन से ही पुनः युवावस्था प्राप्त कर ली थी। इस सत्य को कोई चुनौती नहीं दे सकता।

आयुर्वेक पद्धति की वैज्ञानिक उपयोगिता व्यावहारिक सरलता, प्राकृतिक अनुकूलता तथा आर्थिक दृष्टि से मितव्ययिता को बड़े बड़े विद्वान् हमेशा से मानते आये हैं। यहां तक कि आयुर्वेद के विरोधियों ने भी इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, किन्तु हम लोगों के आलस्य और अकर्मण्यता के कारण आज दुनियां की दृष्टि में वही चमकता हुआ आयुर्वेद हतप्रभ हो रहा है। इस समय हम लोग उस असीम स्रोत के पास रह कर भी पिपासाकुल हैं, जिस अमृतमय स्त्रोत से सारा संसार अपनी प्यास बुझा सकता है। इस समय हमारी चिकित्सा पद्धति की दुरवस्था के कई कारण हैं जिनमें मुख्य ये हैः—

१. राज्याश्रयका अभाव।

२. ऐलोपेथिक के लिये सरकार का अनुचित पक्षपात।

३. ऐलोपेथिक चिकित्सकों द्वारा अनर्गल विरोधी प्रचार।

४. वैद्यों के सार्वभौम संगठन का अभाव।

५. आयुर्वेद विश्वविद्यालय की कमी।

६. कायचिकित्सा के अलावा अन्य अवशिष्ट चिकित्सा अंगों का (जैसे शल्य

शालाक्य कौमार भृत्य प्रभृति तंत्रादि) वैद्यों द्वारा प्रयोग में न लाना।

११वीं शताब्दी से आज तक अर्थात् मुसलमानों और अंगरेजों के शासन काल से आयुर्वेद को दबाने का प्रयत्न किया। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये विदेशी चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहित करने के लिये लगाये जाते हैं। हमें यह न भूलना चाहिये कि अंग्रेजों ने करोड़ों रुपये की औषधियां हिन्दुस्तान में मंगवाकर अपना व्यवसाय खोल रखा है। अपने डाक्टर एजेण्टों द्वारा इस गरीब देश का शोषण किया जा रहा है। डाक्टरों के द्वारा आयुर्वेद के प्रति किस तरह विष वमन किया जा रहा है और सरकार आयुर्वेद को लेकर ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली को किस तरह अधिक प्रसारित करने के लिये सतत प्रयत्न कर रही है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सरकारकी कुनीति है।

सरकारकी योजना चिकित्सा क्षेत्र से आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियां को निकाल फेंकना एक भयंकर षड्यन्त्र है। स्वास्थ्य मंत्राणी ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि हिन्दुस्तान के लोगों को स्वस्थ बनाने के लिए सिर्फ ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति ही सफल सिद्ध हो सकती है। सरकारी समिति ने एक चालीस वर्षीय योजना बनाई है जिसके अनुसार भारत में असंख्य डाक्टर और नर्से तैयार की जायेंगी और वे इस संख्या में तैयार की जायेंगी कि दूसरी चिकित्सा पद्धतियों के लिये कोई क्षेत्र ही न रहे। आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों के लिए इस रिपोर्ट का कहना है कि "जिस रूप में ये चिकित्सा पद्धति या व्यवहार में आ रही है उस रूप में उनका मूल्य आंकना सम्भव नहीं है। सरकारी कमेटी की रिपोर्ट में यह बतलाया गया है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें सिर्फ ऐलोपैथिक जैसी वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति से ही हल हो सकती हैं, क्योंकि सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं अनागत बाधा प्रतिषेध जो कि भावी चिकित्सा पद्धति के महत्वपूर्ण अंग होने वाले हैं वर्तमान देशी चिकित्सा पद्धतियों में नहीं है। वर्तमान काल में चिकित्सा पद्धतियों ने चिकित्सा शास्त्र के ऐसे महत्वपूर्ण अंगों को भी उपेक्षित कर रखा है जैसे प्रसवविद्या नारीरोग विज्ञान उन्नत शल्यतन्त्रादि। साथ में ही कमेटी की यह भी राय है कि ऐसी कोई चिकित्सा पद्धति उन लोगों के जो इसकी शरण में आये हैं सर्वोत्तम चिकित्सा व्यवस्था नहीं दे सकती है जो

कल्पना और व्यवहार में प्रगतिहीन हो तथा जो संसार के वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं के अनुसंधानों एवं अन्वेषणों के साथ साथ न चल सकती हो। कमेटी ने सिफारिश की है कि देशी चिकित्सा पद्धतियों का सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सहायता के संगठन में यदि कोई भाग रहे तो क्या रहे, यह प्रान्तीय सरकार निर्णय करे।

तथा प्रान्तीय सरकार यह सोचे कि किन शर्तों पर इन पद्धतियों के अनुसार चिकित्सा करने की आज्ञा दी जा सकती है। तथा इस बात पर भी विचार करे "क्या अस्थायी तथा स्थाई रूप में वे उन्हे अपनी चिकित्सा सहायता सम्बन्धी योजनाओं में सम्मिलित कर सकती है। अन्त में कमेटी ने ब्रिटिश फार्मोकोपिया के प्रयोगों, विशेषतया इञ्जेक्शनों और विषमिश्रित औषधियों के प्रयोगों की व्यवस्था रोगियों के लिये करने का अधिकार सिर्फ एैलोपेथिक रजिस्टर्ड प्रेक्टिशनर्स को ही होना चाहिये इसकी शिफारिश की है। कमेटी की रिपोर्ट आयुर्वेद एवं आयुर्वेदिक चिकित्सकों को स्पष्ट चुनौति दे रही है। यदि हम चाहते हैं कि हम और हमारा आयुर्वेद जीवित रहे तो यह उसी हालत में सम्भव है जबकि हम आलस्य को छोड़कर कठिन परिश्रम एवं संघर्ष के लिये तैयार हो जांय। इस समय जबकि भारत में शासन सत्ता अपनी ही हो रही है हमें आयुर्वेद को फिर से वैज्ञानिक धरातल पर रखना होगा। यदि आपने तनिक भी अवहेलना की तो निश्चय ही हमारा और हमारे आयुर्वेद का नामोनिशान मिट जायेगा और हम अपनी भावी सन्तति के सामने इसके लिए उत्तरदायी होंगे। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने क्षुद्र वैयक्तिक स्वार्थों को त्यागकर कमेटी द्वारा बोये हुए विष बीजों को अंकुरित होने के पूर्व ही उखाडदें। इसी में हमारा श्रेय एवं इसी में हमारा अस्तित्व है।

सरकारी सौतेली नीतिको नजर में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने ही पैरों पर खड़े हों। आयुर्वेद की दुरवस्था के कारणों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के बाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि आयुर्वेदोन्नित के लिये सिर्फ दो ही बातों की जरूरत है। पहली यह है कि हम वैद्योचित गुणों से युक्त, योग्य, मार्मिक विद्वान तैयार करें और दूसरी वैद्यों का सार्वभौम संगठन।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय

पहली बात के लिये हमें अपनी आयुर्वेद शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा,

जिसमें योग्य विद्वान तैयार कर सकें। नींव के कमजोर होने से जिस तरह ऊपर का मकान कमजोर रहता है उसी तरह शिक्षा की कमी रहने से योग्य विद्वान तैयार नहीं हो सकते। इस ध्येय को कार्यान्वित करने के लिये एक निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय All India Ayurveda University की जरूरत है जब तक विश्वविद्यालय नहीं होगा हमारी शिक्षा शक्ति केन्द्रित नहीं हो सकती। हमारा पाठ्यक्रम एक स्तर का नहीं रह सकता। दुःख का विषय यह है कि अभी तक इस तरह की कोई University नहीं है जो विशुद्ध आयुर्वेदीय तरीकों से छात्रों को अष्टांगायुर्वेद की शिक्षा दे रही हो। कम से कम एक केन्द्रिय यूनिवर्सिटी होने के बाद हमारे लिये यह आवश्यक हो जायगा कि हम भारतवर्ष के सब प्रान्तों में उस यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध आयुर्वेद महाविद्यालयों Colleges की स्थापना करें। इन कालेजों में अष्टांग आयुर्वेद के सैद्धान्तिक शिक्षा Theoritical training के साथ २ क्रियात्मक शिक्षण Practical Training की भी व्यवस्था रहनी चाहिये। कालेज के साथ २ अन्तरंःपधालयों Indoor Hospitals का होना भी नितान्त आवश्यक है। जिसमें रोगियों की दैनिक परिचर्या, उन पर किये जाने वाले पञ्चकर्मों का ज्ञान और जीर्ण रोगों में दिये जाने वाले पर्पटी प्रभृति दीर्घकालीन कल्पों का विद्यार्थियों को सम्यग् ज्ञान हो सके। कालेज के रसायनशाला विभाग में हर प्रकार की भेषज कल्पना कूपीपक्व रसायन घृत तेल आसव और अरिष्टों का निर्माण करना भी सिखाया जावे। अनुसंधान के लिये एक प्रयोगशाला Laboratory भी इन कालेजों में अवश्य रहनी चाहिये जिसमें रोगी के मल मूत्र कफ रक्त आदि का सम्पूर्ण परीक्षण हो सके तथा भेषज कल्पना में औषधियों के मूल तत्वों का अन्वेषण किया जा सके। पंसारियों की गली सिड़ी दवाइयों पर विश्वास न कर कोलेज के आश्रित आयुर्वेदोद्यान में अच्छी २ वनस्पतियों का उत्पादन बढ़ाकर वनस्पति शास्त्र की सहज ही में उन्नति की जा सकती है। पाठ्य पुस्तकों के अलावा अवशिष्ट आयुर्वेद साहित्य का अवलोकन छात्रगण कोलेज के बृहत् पुस्तकालय में कर सकें। साथ ही यह भी सम्भव हो सकेगा, कि विश्वविद्यालयों से विशिष्ट विद्वान् एवं स्नातकों को पुरस्कृत कर उनकी नवीन आयुर्वेदीय रचनाओं एवं कृतियों के प्रकाशन

से आयुर्वेद के साहित्य भण्डार को परिवर्धित किया जाय। ऐसे कोलेजों के होने से पाठ्यक्रम सार्वदेशिक रूप से अलग २ पाठ्यक्रम प्रचलित होने से शिक्षा के आदर्श में जो विषमता आगई है, उससे देश को सहज ही में बचाया जा सकता है। अच्छी २ शिक्षण संस्थाओं के खुलने से आयुर्वेद शिक्षा का प्रचार बहुत बढ़ जावेगा। और इससे उन लोगों के उद्योग में अनायास ही रुकावट आजायेगी, जो परिक्षाओं का ढ़कोसला कर सस्ती पदवियों को बाँटने का व्यापार सा कर रहे हैं। एकसा शिक्षाक्रम होने साथ ही कालेजों में परिक्षाएँ भी एक सी हो जाने लगेंगी। अब भिन्न संस्थाएँ और विद्यालय अधिक पदवियों की संख्या न बढावें यही उचित है। देश में अधिक पदवियों की भरमार होने से जनता को असली और नकली पदवी समझने में अड़चन पड़ती है। विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के आठों अङ्गों (शल्य शालाक्य) में विशेष योग्यता प्राप्ति की व्यवस्था भी रहनी चाहिए। ताकि हर एक विषय के विशेषज्ञ Skeeialisto तैयार हो सकें। ऐसे विश्वविद्यालय से निकले हुए स्नातक आयुर्वेद के प्रति जनता में श्रद्धा बढ़ावें एवं अपनी कुशल चिकित्सा द्वारा आयुर्वेद को उन्नत मस्तक करने में बहुत ज्यादा सहायक सिद्ध होंगे।

वैद्यों का सार्वभौम संगठन

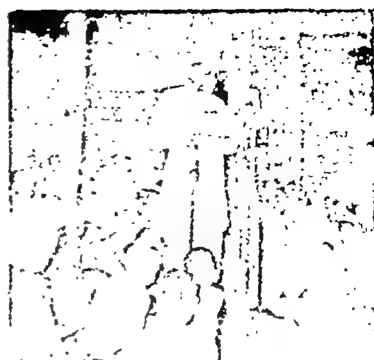
दूसरी बात जो आयुर्वेदोद्धार के लिये जरूरी है, वैद्यों का सर्वभौम संगठन। इस संगठन के जमाने में "संघे शक्ति कलौ युगे" के मन्वन्तर में संघ शक्ति संप्रदान किये विना अथवा पूर्ण एवं सुदृढ़ संगठन किये विना किसी भी समाज में न तो स्थिरता ही आती है, और न उसे प्रभाव शाली स्वरूप ही प्राप्त होता है।

संगठन वही स्थायी और दृढ़ होगा जो नीचे से ऊपर बढ़ेगा। हमारे जयपुर राज्य वैद्य सम्मेलन द्वारा गांव तहसील निज़ामत और केन्द्रीय सभाओं के रूप से संचलित संगठन प्रस्तुत प्रशंसनीय है। इस तरीके से संगठित होने पर हमारे सभी देहाती और नागरिक वैद्य बन्धु एक सूत्र में बन्ध सकेंगें। हमारा पारस्परिक संपर्क बढ़ने लगेगा। हम सबको परस्पर में निजत्व की अनुभूति होगी। किन्तु पाठकों के सिर्फ संगठन की रूप रेखा से ही संगठन मजबूत नहीं हो सकेगा। संगठन मजबूत होगा हम सब की लगन से। हम सबों के निस्वार्थ सच्चे कार्य से हम वैद्य सम्मेलन को दृढ़ और सुसंगठित देखना चाहते हैं, ताकि हम



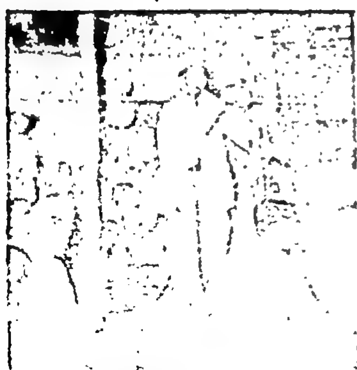
उद्‌घाटन भाषण करते
मानतीय श्री भोगीलालजी पंड्या





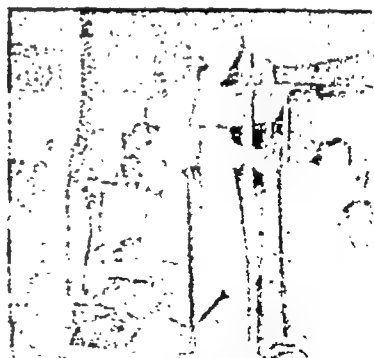
स्वागत भाषण करते
श्री रघुनाथदासजी बाँगड़





अन्थ में दीगई ओजस्वीनी कविता का पाठ करते
कवि श्री कुञ्जविहारी व्यास





अभिभाषण
वै० श्री गंगानरणजी

लोग उसकी छत्र छाया में अपने आपको सुरक्षित रख सके। महानुभावों! मैं आपको याद दिलाना अपना फर्ज समझता हूँ कि कोई भी संगठन तब तक मजबूत नहीं हो सकता जब तक शासन की भावनएं पूर्ण रूप जागृत न हो जांय। हम अपने संगठन की आज्ञा को अटल और अचल समझ उसकी पूर्ति को आत्म सम्मान समझना चाहिए। यह वांच्छनीय है, कि हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ, व्यक्तिगत सम्मान, और व्यक्तिगत अभिमान को उसीके स्वार्थ सम्मान और अभिमान से सम्मिलित करदें।

सज्जनों! आयुर्वेद के लिए यह क्रान्ति का समय है। शान्ति के समय की अपेक्षा क्रान्ति के समय में प्रत्येक मनुष्य की जुम्मेदारियां बहुत बढ़ जाती हैं। यही उक्त उपयुक्त समय है, जबकि आयुर्वेद के लिए कुछ किया जा सकता है। यदि अब भी हम आलस्य और प्रमाद में पड़े रहे तो अपने भविष्य अपनी उन्नति और आयुर्वेद के उत्कर्ष को भारी धक्का पहुँचेगा। यह समय व्यक्तिगत द्वेषों के कारण लड़ाई झगड़ा कर संगठन को कमजोर करने का नहीं, बल्कि हमारी कर्त्तव्य शीलता की परख करने तथा अपना उत्तरदायित्व सम्मेलन का है। ऐसे समय सम्मेलनों के प्रति देश के प्रति और आयुर्वेद के प्रति वैद्यों का क्या कर्त्तव्य है यह प्रत्येक वैद्य को सोचना और निश्चय करना चाहिए। और उस निश्चय के अनुसार अपने संगठन को अग्रसर करना चाहिए।

कार्यकर्त्ताओं से

कार्यकर्त्ताओं के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक है। अभी सम्मेलन में बहुत से कार्यकर्त्ताओं का चुनाव होता है। बहुत से लोग पद लालसा में उस समय स्वीकृत तो कर लेते हैं, परन्तु कार्य के समय, समय नहीं दे सकते। फल यह होता है, कि कागजों में नाम तो बहुतों का छपा करता है, परन्तु एक दो कार्यकर्त्ता ही पिसते रहते हैं, और किसी तरह काम ढकेलते हैं। जिसका जिस पद पर चुनाव हो वही यदि उसका भार सम्भालने के लिए तैयार है, तब तो उसे स्वीकार करे, अन्यथा संस्था को हानि पहुंचाने का कारण न बने। एक बात और है। यदि हमें सम्मेलन से प्रेम और सम्मेलन चलाना है, तो उसके लिए इतना फंड इकट्ठा कर लेना चाहिए जिससे इसका काम अच्छी तरह चल सके। अवैतनिक मान्य कार्यकर्त्ताओं पर निरीक्षण और सिद्धान्त स्थिर करने मात्र का बोझ डालना चाहिए। शेष

कार्य सम्पादनार्थ वैतनिक कार्यकर्ता होने चाहिए। यदि अवैतनिक कार्यकर्ताओं को क्लर्क और चपरासी का कार्य करना पड़ा, तो सब काम चौपट होकर रहेंगे। एक बार फंस जाने के बाद फिर उसकी प्राप्ति का वे नाम भी न लेंगे।

अन्त में मैं आप सबसे अपील करता हूं, कि आप अपने तन मन धन से आयुर्वेद की सेवा में लग जांय। अपने संगठन को मजबूत बनायें। अलग २ संगठन करने से कोई लाभ नहीं है। बिखरी हुई शक्तियां स्वतः ही कमजोर होती हैं। उनका संगठन ही कार्य साधन में सहायक हो सकता है। कार्य तभी होगा जबकि हम हम एक झण्डे के नीचे एकत्रित होकर आयुर्वेद की सर्व तो मुखी उपयोगिता को सिद्ध कर देंगे। भगवान् धन्वन्तरि अपने सत्प्रयत्नों को सफल बनावें।

क्षय रोग और आयुर्वेद

[ले०—वैद्य श्री मंगलदासजी स्वामी आयुर्वेदाचार्य, जयपुर]

क्षय रोग का प्रादुर्भाव बहुत प्राचीन समय से है। आयुर्वेद के आर्षग्रन्थों और ऋग्वेद, अथर्ववेद के सूत्रों में इसका वर्णन है। आयुर्वेद के सिद्धान्त से क्षय को आठ महारोगों में स्थान दिया गया है। यह बीमारी आरम्भ से ही उलझन भरी होने के कारण कृच्छ्रसाध्य मानी गयी है।

सामान्यतः आज से ५० वर्ष पूर्व हमारे देश में यह रोग बहुत ही कम मात्रा में होता था। कारण, उस समय हमारा रहन सहन तथा आहार-विहार अधिकांशतः प्राकृतिक दशा में था। रेलों की वृद्धि, कल कारखानों की स्थापना, नगरों में अत्यधिक जन समुदाय का निवास, ढाबे होटलों में खाना, अनियमित ढंग से काम करना—ये सब ऐसे कारण हैं, जिनसे मनुष्य का जीवन और आहार-विहार अस्वाभाविक बन गया है। जैसे-जैसे इन कारणों की वृद्धि होती गयी, नवीन सभ्यता के प्रसार के साथ साथ कुछ ऐसी बातें प्रचलित होने लगी, जिनका प्रचलित होना इस देश की जलवायु को देखते हुए कतई उपयुक्त नहीं था। पर दिखावट व अन्धानुकरण की प्रवृत्ति से शिक्षित समुदाय

इसमें अग्रणी हुआ। "गतानुगतिको लोकाः"--इस लोकोक्ति के अनुसार अन्य मनुष्यों ने भी यह अनावश्यक ढंग अपनाना शुरू किया। इन सब हेतुओं से जीवन में अस्वाभाविक कर्मों का आधिक्य होने लगा। जीवन में जितनी अस्वाभाविता बढ़ती है जीवनीय शक्ति पर उतना ही विपरीत प्रभाव पड़ता है। रेल की यात्रा, बड़े नगरों में रहने के स्थान, होटल-ढाबे, खोमचे वाले, मिल की नौकरी, खानों व कारखानों की नौकरी, सेठों की गद्दियाँ, राजकीय दफ्तर, सिनेमाघर, आधुनिक शिक्षा व उसके उपशभूत छात्रावासादि ये सब जीवन को अनियमित बनाने के प्रमुख हेतु हैं।

छोटी आयु में विवाह, भोजन की सामग्री—घी, दूध, दही, अन्न, शाक आदि—का शुद्ध न मिलना, संकीर्ण निवास स्वास्थ्य रक्षा का अज्ञान, अनियमित भोग वासना की वृद्धि, भोग की प्रवृत्तियों को प्रबल करने वाले साहित्य का अधिक प्रकाशन, अनुपादेय विज्ञापनों का प्राबल्य, मिथ्या वीजाकरण औषधियों का प्रचार—ये सब कारण ऐसे हैं जिनसे मनुष्य-शरीर की स्वाभाविक शक्ति की न्यूनता होती है। मेरी समझ में हमारे देश में क्षय-वृद्धि के ये ही कारण मुख्य हैं। हम जितने ही स्वाभाविक रहन-सहन से दूर हटते जायेंगे, हमारा खान पान और प्रवृत्तियाँ जैसे-जैसे जीवनीय शक्ति को न्यून करने की ओर अग्रसर होंगी, हम उतने ही क्षय के शिकार होते जायेंगे।

हमने पचास वर्षों में क्या उन्नति की है, इसका अनुमान बच्चों के जीवन और हमारी औसत आयु व मृत्यु से किया जा सकता है। हम जब तक अपने जीवन को स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के अनुसार संचलित नहीं करेंगे, तब तक हम अपने शरीर को ठीक स्थिति में स्वस्थ नहीं रख सकते।

क्षय के हेतु

जिन कारणों का क्षय की वृद्धि या प्रसार के हेतु रूप में ऊपर उल्लेख किया गया है, वे ही क्षय के हेतु भी कहे जा सकते हैं। किन्तु आयुर्वेद ने इनका वर्गीकरण अन्य रूप से किया है। एक एक हेतु का टटोलने से न मालूम हेतुओं की संख्या कहां तक पहुंचे? हेतु हजारों की संख्या में होते हुए भी शरीर पर जिस तरीके से जैसा प्रभाव डालते हैं, उनका उसी प्रकार से वर्गीकरण करवा सकते हैं।

आयुर्वेद ने क्षय के अशेष हेतुओं को चार वर्गों में विभक्त किया है यथा—

१. वेगरोध, २. क्षय, ३. साहस और ४. विषमाशन।

वेगरोध—

वेगरोध का प्रधान अभिप्राय मल मूत्र, अपान वायु के वेगों को अनवरत रोकते रहना है। वैसे शरीर में जृम्भा, छींक, अश्रु, भूख, प्यास, हर्ष, अवसाद, निद्रा, मैथुन आदि और भी वेग हैं, पर उनका वैसा महत्व नहीं है, जैसा कि मल मूत्र, अपान वायु के वेगों का है। ये वेग प्रतिदिन प्रति मनुष्यों में दिनरात में कई बार होते हैं। शरीरस्थ वात धातु इन कर्मों का उत्पादक है। वस्ति में मूत्र का इतना भाग एकत्रित हो जाय कि उसका निकलना आवश्यक हो। इसी तरह उण्डुक में इतना मल एकत्र हो जाय कि उसका बाहर निकलना आवश्यक हो जाय। इसी तरह अन्न की पक्वावस्था होने पर बृहदन्त्र व मलाशय के संबंधित भागों में प्रसारित होने वाले वायु का, जो मलीय भाग में गैस के रूप में उत्पन्न होता है, बाहर निकलना आवश्यक है। ये सब मल-मूत्र व अपान के स्वाभाविक वेग हैं। मलादिकों की यह प्रवृति उन अवयवों तथा तत्रस्थ वातादि दोषों की साम्यावस्था के कारण होती है। यदि हम इस प्रवृति के होते ही मल-मूत्रादि का त्याग कर दें, तो उस अवयव का स्वाभाविक कर्म व तत्रस्थ दोषों की स्वाभाविक क्रिया उचित रूप में बनी रहेगी।

आप पशु-पक्षियों के जीवन की तरफ ध्यान दें। वे इन कर्मों को बड़ी सतर्कता से सम्पन्न करते हैं। उन्हें अपने इन कर्मों को रोकने की आवश्यकता नहीं होती। पर मनुष्य ने अपनी स्थिति बहुत बदल ली है। कुछ ऐसी स्थितियाँ भी हैं, जिनमें विवश हो मनुष्य इनका अवरोध करता है। जैसे सभा-सोसाइटी का काम, सिनेमा, स्कूल-कॉलेज का समय, रेल की यात्रा आदि ऐसी स्थितियां हैं जिनमें वेगरोध का अवसर प्राय, आता ही रहता है।

बहुत से नौकरी पेशे वाले व्यक्ति काम के बोझ के कारण यह देखते रहते हैं कि अब काम खत्म होता है, फिर तसल्ली से ही निबटेंगे। कोई ऐसा ख्याल कर लेते हैं कि इतना-सा काम और कर-लें, फिर मल मूत्र त्याग करेंगे। वे इस तरह धीरे धीरे अपनी आदत बदलते रहते हैं। उन्हें यह पता नहीं कि उन अवयवों तथा

वहाँ काम करने वाले तत्वों में कितनी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। बिना नौकरी पैसे वाले भी बहुत से व्यक्ति, जो अपने घर काम के स्वामी होते हैं, काम के लालच के कारण वेगों की उपेक्षा करते रहते हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि स्वाभाविक वेग-प्रवृत्ति में वेग का दबाव अत्यधिक नहीं होता। वह तो इशारामात्र है। स्वास्थ्य के सिद्धान्तों से अपरिचित व्यक्ति इस प्रकार की वेग-प्रवृत्ति को सामान्यशंका समझ उसको रोकने में कुछ भी विचार नहीं करते। परिणाम यह होता है कि शरीर की शुद्धि करने वाले वस्ति, मलाशय मूत्र-प्रणाली के अवयव अपनी कार्य प्रणाली धीरे धीरे छोड़ते जाते हैं।

इन अवयवों को प्रेरणा देने वाला अपान व समान वायु भी बार बार अपनी गति का अवरोध होने से अनुलोम गति को छोड़कर प्रतिलोम गतिवाला बन जाता है। इससे मनुष्य के शरीर में से समय पर बाहर निकलने वाले तत्व बाहर न निकल कर उन स्थानों में ही रुके रहते हैं। शरीर में न पहुँचने योग्य चीजें इस हेतु से शरीर में पहुँचती रहती है विकृत गैसें रसवाही और उदकवाही स्त्रोतों से पहुँचे हुए नवीन बनने वाले शारीरिक परमाणुओं को निर्बल करती रहती है। इससे तुरन्त किसी प्रकार का रोग व्यक्ति को मालूम नहीं होता, किन्तु उसकी पाचन प्रणाली की क्रिया में धीरे २ अव्यवस्था बढ़ती रहती है। भोजन में से जितना सार भाग खींचना चाहिए, उतना नहीं खींचता। मल में स्नेह का भाग अधिक रहने के कारण आँतों में उपलेप होने लगता है। कोष्ठ की ठीक शुद्धि नहीं होती। इससे मानसिक उल्लास व शारीरिक स्फूर्ति जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं रहती। ओज का निर्माण कम हो जाता है। शरीर के प्रमुख अंगों की क्रिया शक्ति धीरे २ मंद होने लगती है। व्यक्ति असावधान रहता है।

वह इन सामान्य से होने वाले परिवर्तनों पर विशेष ध्यान नहीं देता। ध्यान देता भी है तो चूर्ण चटनी के प्रयोग कर वेगों की अनुपादेय प्रवृत्ति को बढ़ाना प्रारम्भ कर देता है शरीर की यह स्थिति रोगों के उत्पन्न होने में अत्यन्त सहायक हो जाती है। जिस प्रकार पर्याप्त खाद व कर्षण से खेत की बीज ग्रहण-शक्ति प्रबल की जाती है, उसी तरह वेगरोध का परिणाम शरीर की गंदगी को खाद दे देकर रोग रूपी बीज ग्रहण करने के लिए उर्वरा

भूमि की तरह बना देता है। इस वेग-रोध रूपी हेतु में उन सब सामान्य कारणों का समावेश हो जाता है, जो आज की सभ्यता में अनेक रूपों में दिन २ मानव समाज में स्थान पाते जाते हैं। वेगरोध के अनुबन्ध से विकृत वातादि दोष ऊर्ध्व अधः तिर्यक् गति से शरीर के विभिन्न भागों में प्रसरित हो रोग उत्पन्न करते हैं। वेगरोध रूपी क्षय हेतु का यह प्रथम वर्गीकरण है।

क्षय

वेगरोध की तरह दूसरा वर्गीकरण क्षयरूप हेतु का है। क्षय से अभिप्राय सामान्यतः शारीरिक तत्वों की कमी से है। शरीर में किन्हीं कारणों से शरीर के आवश्यक अङ्गों का न्यून हो जाना या धीरे धीरे न्यून होते जाना 'क्षय' शब्द का वाच्यार्थ है।

आयुर्वेद ने क्षय को दो रूप में विभाजित किया है। अनुलोम क्षय और प्रतिलोम क्षय अनुलोम क्षय का अर्थ है इसकी न्यूनता या विकृति के कारण उत्पन्न होने वाला क्षय, क्योंकि रस की न्यूनता के कारण आगे की धातुओं (रक्त, माँस, मेद, अस्थि मज्जा व शुक्र) का पोषण रुक जाता है। रक्तादि धातुओं का सम्यक् पोषण न होने से माँस पेशियों में शैथिल्य, स्नायुओं में शैथिल्य तथा धातुगत ऊष्मा व स्नेह की कमी होती है। क्रमशः इनकी कमी का जैसे २ आधिक्य होता जाता है वैसे ही वैसे व्यक्ति क्षय रोग के समीप पहुंचता जाता है।

प्रतिलोम क्षय में शुक्र अत्यधिक क्षय होने के कारण विवर्धित वायु शुक्र के समीपस्थ मज्जादि धातुओं की न्यूनता करती है। शुक्र ही ओज का निर्मापक है। शुक्र के क्षय से ओज का निर्माण रुकजाता है। ओज के निर्माण की कमी से ओज गत स्नेह व तेज का सम्पूर्ण शारीरिक धातुओं से सम्पर्क टूट जाता है। इससे रक्तादि धातुओं में स्नेह व ऊष्मा की कमी होने लगती है और अनुलोम क्षय की तरह ही धीरे धीरे प्रतिलोम क्षय से भी धातुओं का शोषण व शैथिल्य उत्पन्न होता रहता है। इस प्रतिलोम क्षय को "शुक्रोजः स्नेह संक्षयः" नाम से भी हो जाता है। इस नाम करण में स्पष्ट ही शुक्र—ओज—स्नेह की न्यूनता का दिग्दर्शन किया गया है। शरीर का वजन व उपचय इन्हीं के अधीन है। रक्तादि धातुओं में स्नेह का सम्यक भाग पहुंचने से ही मनुष्य शरीर का गुरुत्व व उपचय स्थिर रहता है।

आप ध्यान दें, तो ज्ञात हो जायगा कि बाहर दुनियां में भी अन्नादि व फलादि में जो उचित गुरुत्व है, वह स्नेह के ही आश्रित है। जिन द्रव्यों में स्नेह कम पहुँचता है, वे अपने परिमाण में उचित होते हुए भी वजन में हलके रहजाते हैं। कितने लम्बे मनुष्य में कितना वजन होना चाहिए, इसका निष्कर्ष यही है कि उतने लम्बे शरीर में (रक्त, मास मेद, अस्थि, मज्जा आदि) धातु अमक परिमाण में स्नेह सहित होने चाहिएँ। अन्यथा परीक्षण उचित होते हुए भी वजन उतना नहीं होगा। मतलब, आयुर्वेद ने क्षय का सामान्य ही अध्ययन किया हो, सो बात नहीं। आयुर्वेद ने क्षय के उचित हेतुओं की तहतक पहुँचने की सफल शोध भी की थी यह जोर देकर कहा जा सकता है।

यह जो उभयात्मक क्षय का निर्देश आयुर्वेद ने किया है, इसमें हम उन सब हेतुओं को समाविष्ट कर सकते हैं, जिन २ से शारीरिक धातुओं में कमी होती है। फिर भी आयुर्वेद का दृष्टिकोण इस हेतु में यही है कि जिन हेतुओं से प्रधानतया स्नेह, शुक्र व ओज का विनाश हो, वे हेतु ही क्षयात्मक हेतु माने जाने चाहिएं।

शुक्र और ओज तथा स्नेह का क्या संबंध है, इसका विवेचन यहां नहीं किया जा सकता; पर क्षय हेतु को ठीक समझने के लिए ओज की जानकारी आवश्यक है। ओज का विवरण चरक सूत्रस्थान 'कियन्तः शिरसीय' अध्याय में व सुश्रुत में 'धातु-मल-क्षय-वृद्धि विज्ञानीय' प्रकरण में अवश्य देखना चाहिए।

स्वस्थ तथा वयस्क व्यक्तियों का आप, ओज को आधार मान कर परीक्षण करें, तो आपको ज्ञात होगा कि आज के भारतीय मानव वर्ग का कितना अधिक भाग ओज हीन या ओज क्षय से युक्त है। सुश्रुत का यह निर्देश विशेष ध्यान देने योग्य है—

"अभिघातात् क्षयात् कोपात्
शोकात् ध्यानात् श्रमात् क्षुधः।
ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो
धातु ग्रहण निःसृतम्॥
तेजः समीरितं तस्मात्
विस्रंसयति देहिनः।"

यहां ओजः क्षय के प्रमुख हेतु व उसके क्षय होने का क्रम बतलाया गया है। ओजः क्षय की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं। उनका (१) बलविस्रंसन, (२) बल-व्यापद् और (३) बलक्षय नामों से उल्लेख किया गया है। वैद्य समुदाय यह तो

सम्यक् जानता ही है कि आयुर्वेद में 'बल' शब्द विशेष अर्थ का द्योतक है और वह प्रकरण-विशेष में ओज के लिए उपयुक्त होता है; जैसा कि महर्षि सुश्रुत निर्देश करते हैं।

"बललक्षणं, बलक्षयलक्षणं चात् ऊर्ध्व-मुपदेक्ष्यामः। तत्र रसादीनां धातूनां यत् परं तेजस्तत् खलु ओजस्तदेव बलमुच्यते स्वशास्त्रसिन्द्धान्तात्।"

सु० सू० स्था० अ० १५

इसी का आगे समर्थन करते हुए वे पुनः कहते हैं—

"त्रयोदोषा बलस्योक्ता
व्यापद् विस्त्रंसनक्षयाः।"

वैसे बल का सामान्य अर्थ शक्त्युत्कर्ष है। शरीर के सम्पूर्ण यान्त्रिक अवयवों के समुचित कार्य का ही नाम "बल" है। पर यहां बल शब्द का 'ओज' के विशेष अर्थ में प्रयोग किया है। इस प्रयोग का कारण यह है कि रसादि धातुओं के तेज को यथावत् बनाये रखने में ओज ही परम सहायक है। सम्पूर्ण धातुओं में उचित तेजोंऽश रहने से ही शरीर के हृदय, मस्तिष्क, वृक्क, फुस्फुस, स्नायु प्रणाली, माँसपेशी रसस्त्रोत, धमनी, शिरा, यकृत्, प्लीहा, लसीका-स्त्रोता, आमाशय, मलाशय आदि सब यन्त्र अपने अपने कार्य को यथोचित रूप से करते हैं, जिससे उपचय तथा बल की उत्पत्ति होती है। जैसा कि संग्रहकार कहते हैं—

"जीवनीयौषधक्षीर
रसाद्यास्तत्र भेषजम्।
ओजोवृद्धो हि देहस्य
तुष्टि पुष्टि बलादेयः॥

जिस तरह ओज के लिए बल शब्द का प्रयोग है, उसी तरह अन्य तन्त्रकारों ने ओज के लिए तेज, रस, जीवित शोषित, प्राकृत श्लेष्मा आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसा कि इस वाक्य में कहा गया है।

"धातूनां तेजसि रसे
तथा जीवित शोषिते।
श्लेष्माणि प्राकृते
वैद्यैरोजः शब्दःप्रकीर्तित॥"

जीवित शोषित शब्द का प्रयोग ओज के लिए महर्षि आत्रेय ने किया है।

"हृदि तिष्ठित यत्
शुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम्।
ओजः शरीरे संख्याति
तन्नाशान्नाविनश्यति॥"

चरक ने ओज के अपर व पर भेद से दो विभाग किये हैं। उपर्युक्त लक्षण

पर ओज का है। अपर ओज अर्धाञ्जलि परिमाण में और पर अष्ट बिन्दु परिमाण में माना गया है। अपर ओज का सम्बन्ध सम्पूर्ण धातुओं से है। पर ओज का सम्बन्ध हृदय से विशेष है। प्राकृत श्लेष्मा के लिए ओज शब्द का प्रयोग भी चरक ने किया है। जैसा कि इस श्लोक से स्पष्ट होता है—

"प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा विकृतो मल
उच्यते सचैवौजः स्मृतः काये।"

(सू० स्था० अ० १७)

इस कथन से प्रतीत होता है कि आचार्यों ने स्नेह और शीत भाग का आधार ओज को माना है। इसी से "अष्टाङ्गहृदय" के स्थानों पर 'अष्टाङ्गसंग्रह' में "श्लेष्मा स्नेह ओजः" इस तरह विशेषार्थ एक शब्द का प्रयोग किया है।

इसी [illegible] शुक्र, स्नेह एवं रूप हेतु के भाव से निर्दिष्ट [illegible] का समावेश भी हो जाता है। [illegible] शीत [illegible], [illegible] बल धातु, [illegible], [illegible], [illegible] व [illegible] के [illegible] से [illegible] हैं। जैसा कि [illegible] कहते हैं—

[illegible]
[illegible]

"अष्टादशप्राणमेदः [illegible]
[illegible] अनुलोमाचारात्।"

"अनुलोमाचारात्" पद पर विशेष ध्यान दीजिए। यह पद निर्देश कर रहा है कि दोष, धातु, मल व ज्ञानेन्द्रियों के स्वाभाविक गुण व इनकी क्रिया (व्यापार) की चर्चा ही इसका अर्थ है। उपर्युक्त एक हेतु से समाधान होने वाले ये सब प्रकार के एक भिन्न कारणों से होते हैं, इसका भी चरक निम्न विशद रूप में निर्देश करते हैं—

"[illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible]।
[illegible]॥"

इससे विशद व्याख्या की आवश्यकता नहीं है, [illegible] इससे [illegible] हो जाती है। [illegible] के [illegible] [illegible] आदि [illegible], [illegible] का [illegible] हो जाता है। [illegible] का [illegible] है, [illegible] भी [illegible] के ही [illegible] है,

जैसा कि ऋग्वेद व अथर्ववेद में विविध कीटाणुओं के लिए विविध प्रकार के भौतिक नाम विशेषों का व्यवहार किया गया है। इस तरह आयुर्वेद "क्षय" रोग का क्षयरूप यह दूसरा हेतु निर्देश करता है।

साहस

क्षय का तीसरा हेतु साहस है। साहस का अभिप्राय स्कीय शारीरिक व मानसिक शक्ति से अधिक श्रम करना है। पूर्वकाल में शस्त्र विद्या के अध्ययन तथा उपयोग के कारण शारीरिक साहस का अधिक अवसर आता था। इसलिए "युद्धव्ययनभाराध्व" आदि साहस के हेतुओं का चरक ने उल्लेख किया है। आज के समय में युद्ध कला का अभ्यास हमारे देश में सर्वथा बन्द है। उसकी जगह अन्य प्रकार के दुस्साहस के रूप दिखलाई पड़ते हैं। जैसे पैसे के लोभ से मिलों में, कारखानों में तथा खानों में दिन रात की दो दो पालियों में काम करना, साधारण दैनिक काम करने के समय में या काम के अतिरिक्त समय में भी काम करना, रोगी होने के बाद पूर्ण बल प्राप्त किए बिना पुनः श्रमासाध्य कामों में लग जाना इत्यादि शरीर तथा मनके साथ न देते हुए भी परिस्थिति की विवशता से शारीरिक व मानसिक श्रम करने का आजकल अनेक रूप सामने आते हैं। नौकरी, मजदूरी तथा नियत ड्यूटी के काम सभी इसी रूप के हैं।

शारीरिक श्रम की तरह मानसिक श्रम के भी ऐसे बहुत उदाहरण मिलते हैं, जिनमें शक्ति से अधिक श्रम किया जाता है। इसके दो मुख्य क्षेत्र हैं—(१) परीक्षा तथा (२) क्लर्की। छात्र व आफीसियल कर्मचारी बहुत ऐसे मिल सकते हैं, जो मानसिक शक्ति उल्लंघन कर परीक्षा के लोभ तथा नौकरी की विवशता से श्रम करने को बाध्य होते हैं। शक्ति से अधिक भार उठाना, शक्ति से अधिक चलना, शक्ति से अधिक बोलना—ये भी अयथावत आरम्भ हैं। न्यून शक्ति वाले शरीर व मन से अधिक काम करने की जितनी भी स्थितियां हैं, वे सब साहस रूप हेतु के अंतरगत हो जाती हैं।

आरम्भ में कुछ दिनों तक किसी प्रकार के खास रोग के चिह्न नहीं प्रतीत होते, पर शरीर व मन क्लिन्न और थके हुए रहते हैं। श्रम की अधिकता के कारण शारीरिक शक्ति का दैनिक निर्माण जितना होता है, उसकी अपेक्षा खर्च अधिक हो जाता है। व्यय की यह प्रति दिन की

अधिकता शरीर की संचित शक्ति को न्यून से न्यून तर करती जाती है। इस पर भी मनुष्य सचेष्ट न हो तो आगे जाकर उसको क्षय का शिकार होना ही पड़ता है। यदि आज क्षय रोग से मरने वालों के आंकड़े इकट्ठे किये जांय, तो इस साहस रूप हेतु से क्षय ग्रस्त होने वाले व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या अनुपात में सामने आ जायगी। आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार क्षय के हेतुओं का यह साहस रूप तीसरा वर्गीकरण है।

विषमाशन

क्षय के हेतुओं का चौथा वर्गीकरण है विषमाशन। विषमाशन का अभिप्राय खान-पान की अव्यवस्था है। आयुर्वेद ने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। ऋतु-भेद, अवस्था भेद तथा प्रकृति भेद से भोजन-सामग्री का बड़ी उत्तम रीति से विश्लेषण किया है। सात्म्य द्रव्य, ओक सात्म्य द्रव्य, असात्म्य द्रव्यों का विभाजन कर तथा भोजन करने की आवश्यकता का काल, भोजन के पदार्थों का वर्गीकरण, प्रथम कैसा भोजन हो और मध्य में कैसा, किस प्रकृति वाले को कैसा भोजन उपादेय है और कैसा अनुपादेय, भोजन के पात्र, भोजन के निर्माण, भोजन की स्वकीय पाचन शक्ति की मात्रा, भोजन के सम्यक् पाचन के सहायक हेतु, भोजन के असम्यक् पाक के कारण, किस प्रकार के भोजन पर किस प्रकार को पेय, जल के भेद, जल के शुद्धा-शुद्ध का विवेचन, मद्य, सुरा, सीधु, राग, खण्ड, फाण्ट, अम्ल रस, यूप, पय आदि विविध पेयों का विवेचन सब खान-पान के विचार में समाविष्ट हैं।

आज भोजन में जिन विविध विटामिनों का विश्लेषण किया गया तथा किया जा रहा है, वे विटामिन जिन-जिन द्रव्यों में अधिक मात्रा में मिलते हैं, उन द्रव्यों में से अधिकांश का भोजन-द्रव्यों में समावेश आदि से सहस्रों वर्ष पूर्व आयुर्वेद ने कर दिया था। आयुर्वेद वैज्ञानिक है या नहीं, इस प्रकार का उत्तर चाहने वाले आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली के द्वारा प्रसूत विटामिन द्रव्य-संग्रह को चरक व सुश्रुत में निर्दिष्ट या जन्म सात्म्य द्रव्य, जीवनीय, बृहणीय- दीपनीय, बल्य, वयः स्थापनीय द्रव्यों के साथ मिलान कर निश्चय करें कि उनका यह अनुसन्धान (रिसर्च) आयुर्वेद से कितना आगे बढ़ सका है?

अन्न-पान के विषय में अधिक न लिख इतना ही पर्याप्त समझता हूँ कि चरक के मात्रा शितीय, यज्जः पुरुषीय,

आत्रेय भद्र का पीय, विविधा शितीय आदि अन्न-पान विधायक अध्याय में जितना विवेचन है, इससे अधिक विवेचन अन्यत्र शायद ही हो। इन अध्यायों में निर्दिष्ट किये हुए नियमों का उल्लंघन कर जो खान-पान किया जाय, वह सब विषमाशन के अन्तर्गत है। विरुद्ध भोजन में भी संयोग-विरुद्ध, मात्रा-विरुद्ध देश-विरुद्ध, काल-विरुद्ध, प्रकृति-विरुद्ध—ये अनेक स्थितियाँ हैं। विदग्ध भोजन का अभिप्राय विदग्धावस्था को प्राप्त हो जाना है। विदग्ध परिपाक रस-विकृति का निमित्त है। इससे रस विदग्ध होकर रक्तादि धातुओं में अम्लता को उत्पन्न करता है—जिससे उन धातुओं की विकृति के साथ-साथ तज्जन्य रोगों की उत्पति होती है।

समय से पूर्व भोजन करना अकाल भोजन है और समय को उल्लंघन कर भोजन करना अतिकाल भोजन है। पूर्व भोजन का सम्यक् परिपाक बिना हुए ही पुनः भोजन कर लेना अजीर्ण भोजन है। अभी भोजन किया है और वह पच्यमान अवस्था में है, उसी स्थिति में पुनः भोजन कर लेना भोजन पर भोजन है। खान-पान की इन अव्यवस्थाओं का परिणाम पाचन प्रणाली के काम को अव्यस्थित करना है। अतः खान-पान की सब भूलें विषमाशन में सम्मिलित करली गई हैं। चरक ने विमान स्थान के प्रथम अध्याय में भोजन के आठ आयतन बताये हैं। इनकी निम्न संज्ञाएं हैं—

(१) प्रकृति (पदार्थ का स्वाभाविक गुण-धर्म)।

(२) कारण (स्वाभाविक गुण-धर्म-सम्पन्न द्रव्यों का संस्कार)।

(३) संयोग (दो या बहुत से सजातीय, विजातीय, समगुण, विपरीत गुण द्रव्यों का एकीकरण)।

(४) राशि (आहार में जितने विभिन्न द्रव्य हैं, उन सबका मिलाकर परिमाण)।

(५) देश (जो पदार्थ जिस प्रदेश में होते हैं या जहाँ जिनका उपयोग होता है, उन दोनों स्थानों को अर्थात उत्पत्ति—स्थान व उपयोग—स्थान दोनों को देश नाम से व्यक्त किया गया है)।

(६) काल नियत (ऋतु अनुसार) आवस्थिक (बाल्यादि अवस्था तथा रोग—विशेष में पूर्वरूप, रूप, उपद्रव, साध्य, कष्टसाध्य, असाध्य अवस्थाएं)।

(७) उपयोग—संस्था (आहा रोपयोगी नियम क्या खाना, कैसे खाना, कब

खाना, कब नहीं खाना, क्या नहीं खाना, कैसे नहीं खाना, इन सब विधियों का निर्देश उपयोग संस्था नाम से किया गया है।

(८) उप भोक्ता (भोजन करने वाला)।

इन पाठों आयतनों के समुचित समन्वय से भोजन की उचित अवस्था मानी जाती है। इन आयतनों की जो अव्यवस्था हो, वही 'विषमाशन' है। संक्षेप में ऊपर निर्दिष्ट भोजन की सब विषमताओं का इन आयतनों की अव्यवस्था में समावेश हो जाता है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति देश की वर्तमान भोजन प्रणाली पर ध्यान से दृष्टिपात करे, तो तुरन्त ज्ञात हो जाय कि आज का हमारा भोजन वास्तविक भोजन है या विषय भोजन।

देश के मानव वर्ग को सामान्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। ये विभाग इस प्रकार होंगे:—(१) सम्पन्न (२) साधारण, (३) गरीब। सम्पन्न वर्ग जरूरत से अधिक पदार्थों की प्राप्ति के कारण विषमाशन करता है। साधारण व गरीब श्रेणी के लोग अपनी परिस्थिति के कारण भोजन की समुचित व्यवस्था नहीं कर पाने के कारण विषमाशन के चक्कर में पड़ते हैं। कुछ मन चले बाबू पाश्चात्य प्रणाली के अन्धानुकरण के कारण विषमाशन के जाल में उलझते हैं। इस तरह देश का अधिकांश मानवसमुदाय अज्ञान तथा दरिद्रता के कारण भोजन की समुचित व्यवस्था से वञ्चित हो विषमाशन द्वारा क्षय को निमन्त्रण देता है।

आयुर्वेद-शास्त्र उपर्युक्त इन चतुर्विध हेतुओं से ही क्षय की उत्पत्ति मानता है और उसका यह मानना सर्वथा उचित भी है।

कीटाणु और त्रिदोष

क्या उपर्युक्त हेतु चतुष्टय ही क्षय के उत्पन्न करने में वास्तविक कारण है? यदि हाँ, तो फिर आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली की शोध क्या मिथ्या है, जो प्रतिदिन क्षयग्रस्त रोगियों के कीटाणुओं की परीक्षण करती है। वैज्ञानिक प्रणाली ने तो टी० बी० (ट्यूबर्किल बेसेलाई) कीटाणुओं को क्षय का प्रमुख कारण माना है। रोगी की श्लेष्मा में, मल में, रस-वाहक ग्रन्थियों में इन कीटाणुओं के झुण्ड के झुण्ड उपलब्ध होते हैं। जब प्रत्यक्ष परीक्षा द्वारा क्षय के कीटाणुओं का निश्चय हो चुका, तब क्षय को एकान्ततः कीटाणुजन्य ही क्यों न माना जाय?

आयुर्वेद-पद्धति से जिन चार हेतुओं का उल्लेख ऊपर किया गया है, उन हेतुओं में कीटाणुओं का स्पष्ट निर्देश कहीं नहीं है। केवल क्षयसंग्राहक चरक-निर्दिष्ट हेतुओं में भूतोपघात का निर्देश है। फिर आयुर्वेद के ये हेतु चतुष्टय सीधे क्षय के उत्पादक भी नहीं हैं। अपितु इनसे प्रकुपित वातादि दोष ही क्षय के वास्तविक उत्पादक हैं। वातादि दोषों का कीटाणुओं की तरह प्रत्यक्ष भी नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में उभय पक्ष में से किस को ठीक माना जाय, यह विचारणीय प्रश्न प्रत्येक बुद्धिवादी व्यक्ति के सामने आये बिना नहीं रह सकता। इसका उत्तर देने की अपेक्षा कि अमुख हेतु क्षय का उचित कारण माना जाना चाहिये, दोनों हेतुओं का उचित विश्लेषण करना अधिक संगत रहेगा।

क्षय में कीटाणु होते हैं, यह ठीक है पर कीटाणु होने से ही कीटाणुओं से क्षय उत्पन्न होता है यह कहना संगत नहीं क्यों कि कीटाणुओं की शोध करने वाले जब यह भी कहते हैं खि केवल क्षय के कीटाणु पहुंचने मात्र से ही भय हो जायगा यह निश्चित नहीं। क्यों कि परिक्षण द्वारा बहुत से ऐसे मनुष्यों में क्षय के कीटाणु पाये गये हैं जो क्षय से आक्रान्त नहीं थे। सामान्यतः बहुत से स्वस्थ्य मनुष्यों में भी क्षय के कीटाणु मिलते रहते हैं। जब क्षय के कीटाणु शरीर में पहुँचे हुए हैं, पर वह व्यक्ति क्षय रोग से ग्रस्त नहीं होता, तो कीटाणु ही क्षय के उत्पादक है, इसका व्यभिचार स्पष्ट ही सामने आ जाता है। व्यभिचारी हेतु को एकान्ततः हेतु नहीं कह सकते।

जब यह प्रश्न कीटाणुओं को क्षयोत्पादक मानने वालों से किया जाय कि महानुभाव जब क्षय के कीटाणु शरीर में पर्याप्त संख्या में मिलते हैं, फिर भी वह मनुष्य क्षय से मुक्त रहता है, तब आपके कीटाणु-हेतु की क्या सार्थकता हुई? उत्तर मिलता है कि अभी इस व्यक्ति के शरीर में रोग निवारक शक्ति प्रबल है। धीरे-धीरे जब यह शक्ति न्यून हो जायगी, तब इन कीटाणुओं का प्रभाव अवश्य होकर रहेगा इस उत्तर से एक बात और सामने आती है कि कीटाणु तब तक रोग उत्पन्न करने में समर्थ नहीं जब तक कि शरीर की रोग निवारक शक्ति न्यून ने हो जाय। इससे कीटाणुओं की अपेक्षा रोग निवारक शक्ति प्राधान्य हुई। शरीर में पर्याप्त रोग निवारक शक्ति है, तो क्षय

कीटाणुओं की कोई शक्ति शरीर पर असर नहीं कर सकती। शरीर की रोग निवारक शक्ति ही यदि क्षीण हो जाय, तो कीटाणु अपनी करामात दिखाने में विलम्ब नहीं करेंगे। इससे एक नया प्रश्न फिर सामने आता है कि रोग निवारक शक्ति किससे या किन कारणों से कम होती है ?

क्या क्षय के कीटाणु शरीर में रह कर रोग निवारक—शक्ति को कम करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर भी यही मिलेगा कि कीटाणु ही एक मात्र रोग निवारक शक्ति को न्यून करें ऐसी बात नहीं क्यों कि परीक्षणों से सिद्ध है कि एक पूर्ण शारीरिक सम्पन्न व्यक्ति में कीटाणु मिलते हैं पर उसकी रोग निवारक-शक्ति में कोई न्यूनता नहीं दिखाई देती। इससे सिद्ध है कि बिना अन्य कारणों के अकेले कीटाणु रोग निवारक-शक्ति पर कुछ असर नहीं डाल सकते। रोग निवारक शक्ति को कम करने वाले हेतुओं का विवेचन होने पर वे ही कारण सामने आवेंगे जिनका चरक "व्यायामोऽशनम् चिन्ता" इत्यादि व्याक्यों द्वारा किया है। अपौष्टिक भोजन मलेरिया, न्यूमोनिया आदि व्याधियों के प्रबल आक्रमण तथा व्याधिग्रस्त अवस्था में उचित उपचार की कमी, पाण्डु, कास, रक्तपित, अग्नि माद्य आदि रोग विशेष कर दीर्घ कालीन अनुबन्ध, गन्दी हवा, गन्दे स्थान में निवास, शक्ति से अधिक श्रम, अतिमैथुन, भय, चिन्ता, शोक का अनुबन्ध, विविध प्रकार की नशीली उत्तेजक वस्तुओं का अतिमात्रा में या अनवरत उपयोग आदि जितने भी हेतु आधुनिक प्रणाली में जो रोग नाशक-शक्ति को न्यून करने के लिये निर्देश किए गये हैं क्या वे चरक निर्दिष्ट हेतुओं से तथा वेगरोधादि वर्गी कृत हेतु चतुष्ट्य से भिन्न हैं।

क्या आधुनिक प्रणाली के इस हेतु समुदाय का उपर्युक्त चार हेतुओं में समावेस नहीं हो जाता ? इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि विभिन्न हेतुओं से पहले शरीर की स्वाभाविक रोग-निरोधक-शक्ति का पर्याप्त ह्रास हो जाने पर क्षय कीटाणुओं को क्षय उत्पन्न करने का भी अवसर मिलता है। इसका अर्थ यह करना असंगत नहीं है कि क्षय के कीटाणु रोगोत्पत्ति करने में प्रधान हेतु न होकर केवल सहायक कारण है। जब तक अन्य हेतुओं से शरीर में क्षय के कीटाणुओं को काम करने योग क्षेत्र पैदा नहीं कर दिया जाता तब तक अकेले कीटाणुओं की

कोई महत्ता नहीं है। अभिप्राय यह हुआ कि क्षय रोग कीटाणु मात्र से उत्पन्न नहीं होता। हां क्षय की अवस्था बदलने पर कीटाणु भी हो जाते हैं। कीटाणुओं को अनुबन्ध और भी कई व्याधियों में होता है। जैसे—हृद्रोग, नासारोग, शिरोरोग, उपदंश, शुक्रदोष, कुष्ठ आदि में। आयुर्वेद इन रोगों की अवस्था विशेष में कीटाणुओं की उत्पत्ति व अनुबन्ध स्वीकार करता है। इस तरह क्षय में भी अवस्थान्तर से कीटाणु का अनुबन्ध होता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि क्षय की कोई कीटाणु विहीन अवस्था नहीं। क्षय की अवस्था कीटाणु विहीन भी होती है। आरम्भ में अर्थात पूर्वावस्था में प्रत्येक क्षय रोगी के कीटाणु मिलें, यह नियम नहीं है।

पाश्चात्य चिकित्सकों ने विविध प्रकार से रोगियों की परीक्षा की है, उनमें सभी प्रकार की स्थितियां सामने आती हैं। जैसे कीटाणु मिलते हैं पर क्षय नहीं, क्षय है पर कीटाणु नहीं, कीटाणु हैं तथा क्षय भी हैं। अतः सब तक का परीक्षित परिणाम यह है कि क्षयरोग की प्राथमिक अवस्था के पश्चात् प्रायः क्षयरोगी में टी० बी० मिलते हैं। आरम्भिक अवस्था कीटाणु विहीन ही होते हैं क्षय का आरम्भ है और कीटाणु नहीं तब स्वतः सिद्ध होता है कि क्षय के उत्पन्न करने का वास्तविक हेतु कीटाणुओं से भिन्न है। यदि कीटाणुओं को रोगोत्पादक माना जाय तो एक और भी विप्रतिपत्ति उपस्थित होती है कि कीटाणुओं से उत्पन्न होने वाले रोगों की एक ही—सी अवस्था क्यों नहीं रहती। कारण, जब कीटाणु शरीर में पहुंच गए और उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर रोग उत्पन्न कर दिया तो वह रोग अधिकांशत एक ही अवस्था का होना चाहिये। क्योंकि कीटाणुओं की क्रिया, जिससे रोगोत्पत्ति होती है, एक—सी है। अतः उसका परिणाम भी एक—सा ही होना व रहना चाहिये। पर बात ऐसी नहीं है। टाइफाइड, चेचक, इनफ्लुएन्जा, मलेरिया, न्यूमोनिया, प्रसूत, हैज़ा, आमातिसार, फिरंग रोग, सुजाक, कुष्ट आदि रोग, जिनको वैज्ञानिक—प्रणाली कीटाणु जन्य रोग मानती है, सब व्यक्तियों में एक स्थिति नहीं होनी। विभिन्न मनुष्यों में उनका भिन्न-भिन्न रूप व भिन्न-भिन्न अवस्था सामने आती है। जब एक मात्र इन रोगों के हेतु कीटाणु ही हैं तो इनसे उत्पन्न होने वाले रोगों में विविधता नहीं होनी

चाहिये। क्योंकि एक कीटाणुओं में कोई नित्य सम्बन्ध नहीं है। इनका जन्म और मरण—पोषण वाहक होता है। शरीर में पहुंचने पर वे अपनी विषाक्तता से रोगोत्पत्ति करने का कार्य करते हैं इस दशा में रोगों की विविधता युक्ति संगत नहीं है।

विषमज्वर (मलेरिया) के दस रोगी लीजिए। उनकी ज्वरोष्मा (टेम्परेचर) भिन्न-भिन्न होगी। किसी को भयंकर शिरोर्ति है, तो किसी को पीठ की भयंकर वेदना है। किसी को मलावरोध है, तो किसी को अतिसार। किसी को वमन का दौरा है, तो किसी में अनवरत उत्क्लेश। किसी को तालुशोष है, तो किसी को भयंकर तृष्णा। किसी को अत्यन्त स्वेद है, तो किसी को स्वेद का नाम भी नहीं। किसी को अत्यन्त शीत लगता है, तो किसी को सामान्य कँपकँपी। किसी को ज्वर चार घण्टे रहता है, तो किसी को सोलह घण्टे। जब मलेरिया अणुयुक्त एनोफेलिस मच्छरी के काटने तथा उसके द्वारा पहुँचे विष के कारण होता है, तो ये सब विषमताएँ किन कारणों से होती हैं।

एनोफेलिस मच्छरी किसी को कम काटे, किसी को अधिक ऐसा भी नहीं होता। इस मच्छरी में—किसी में विष कम हो किसी में अधिक यह भी नहीं होता। मलेरिया पैदा करने वाले ये मच्छर जहां होते हैं, वहाँ प्रायः एक से ही होते हैं। और इनके काटने में भिन्नता नहीं होती। पर रोग की उत्पत्ति तथा स्थिति में भिन्नता रहती है। मलेरिया के ये कीटाणु जो मनुष्य को काटते हैं उनमें से साठ को मलेरिया होता है और ४० को नहीं होता। उपर्युक्त विभिन्न लक्षण तथा रोग के होने न होने की विषमता जब इस हेतु के साथ है, तब मानना पड़ेगा कि रोग की उत्पत्ति तथा उसकी अवस्था के भेद इस हेतु से भिन्न और भी कोई हेतु हैं। ये हेतु कौनसे हैं, उनको निश्चयात्मक रूप से जान लेने तथा मान लेने पर सम्भव है, कीटाणुवाद के पोषक भी इस भ्रान्ति से छुटकारा पा जाएँ कि अमुक-अमुक रोग कीटाणुजन्य ही होते हैं।

रोग की चिकित्सा हेत्वनुबन्धी होती है। जैसा कारण हो तदनुरूप उसका प्रतिकार होता है। आधुनिक क्षय की चिकित्सा से भी यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि क्षय की चिकित्सा मलेरिया की तरह टी० बी० को नष्ट करने के लिए न की जाकर शरीर की प्राकृतिक शक्ति को विवर्धित करने को

ही की जाती है। यदि शरीर की स्वाभाविक शक्ति चिकित्सा से विवर्धित हो जाय तो रोगी क्षय से छुटकारा पा जाता है। टी० बी० शरीर में उसी तरह मौजूद रहते हैं। इस चिकित्सा क्रम का साफ परिणाम भी यही है कि क्षय की निवृत्ति, कीटाणु सापेक्ष न होकर शारीरिक रोग-निवारक शक्ति की अपेक्षा रखती है। अतः क्षय रोग एक मात्र कीटाणु से ही उत्पन्न होता है, यह न तो उचित रूप में सिद्ध ही होता है और न निश्चित ही है।

अब आयुर्वेद के क्षय-हेतु का परीक्षण कीजिए। आयुर्वेद सब रोगों की उत्पत्ति धातुवैषम्य से मानता है। धातुवैषम्य का मुख्य अभिप्राय वात, पित्त और कफ का वैषम्य है। आयुर्वेद के ये त्रिदोष स्थिति व कर्म के भेद से स्थूण, धातु, मल और दोष शब्दों में कहे जाते हैं। इनकी साम्य (स्वाभाविक) और वैषम्य (क्षय, वृद्धि, आवरण अस्वाभाविक) दो अवस्थाएँ हैं। साम्यावस्था स्वास्थ्य का कारण है और वैषम्य-अवस्था रोगों का कारण है।

वातादि त्रिदोष शरीर के प्रत्येक परमाणु में व्याप्त हैं। शरीर का अशेष क्रिया कलाप इनसे संबंधित हैं। खान-पान-रहन सहन के अनौचित्य तथा देश, काल की विपरीत स्थिति से वातादि दोषों का स्वास्थ्य रक्षक स्वाभाविक संतुलन बिगड़ जाता है। स्वभाविक अवस्था में जिन गुण धर्मों व क्रियाकलापों के द्वारा ये शरीर का निर्माण करते हैं, उनमें अनवस्था होने पर इनका यह कार्य रुक जाता है। इसी का नाम "वैषम्य अवस्था" है। दोषों की यह वैषम्यावस्था ही अशेष रोगों के उत्पादन का एकान्ततः हेतु है। दोषों के विषम बनाने के अनन्त हेतु हैं। पर आयुर्वेद ने इनको निज और आगन्तुक भेद से दो भागों में विभक्त कर दिया है। जिन कारणों से वातादि दोष चय, प्रकोप प्रसरण स्थानसंश्रय, अभिव्यक्ति अवस्थान्तर इन षड्विधि अवस्थाओं में होते हुए रोग उत्पन्न करते हैं, वे सब हेतु निज नाम से व्यवहृत हैं। चयादि अवस्थाओं के बिना सहसा अभिघात विषयुक्तवात कीटाणु आदि जिन हेतुओं से वातादि दोषों में विषमता होकर रोग उत्पन्न होता है, उनका नाम आगन्तुक हेतु है। इस तरह ये निज और आगन्तुक हेतु दोषवैषम्य के जनक हैं।

दोषों का स्वरूप, उनकी साम्यावस्था के गुण, धर्म, व्यापार, शरीर में दोषों की स्थिति, उनके विकृत करने के हेतु इन सब

का विशद विवेचन यहाँ किया जाना शक्य नहीं। सामान्यतः संक्षेप में इतना ही कहना संगत है कि आयुर्वेद उपर्युक्त रूप से वातादि दोषों की विषमता को ही रोगोत्पादक हेतु मानता है और सर्वथा संगत भी है कारण आयुर्वेद ने धातुसाम्य (त्रिदोष की समावस्था) को स्वास्थ्य का प्रमुख कारण इसलिए माना है कि शरीर में प्रतिदिन होने वाली कमी की पूर्ति, नवीन शरीर का निर्माण, अन्नादि विविध आहार को रक्तादि धातुओं की शकल में बदलना, मल, मूत्र, स्वेद आदि अनुपादेय वस्तुओं का शरीर से बाहर निकलना, रस, रक्त, उदर, लसीका, श्वास शुक्र आदि के वहन करने वाले स्रोतों का निवारण रखना, मस्तिष्क, हृदय, फुस्फुस, वृक्क, यकृत्, प्लीहा, क्लोम, उण्डुक, आमाशय, पाकाशय, मलाशय, वस्ति, शिरा, धमनी, स्नायु, पेशी आदि यन्त्रों को स्वस्थ क्रिया सम्पन्न रखने आदि शरीर की अशेष आवश्यकताओं की पूर्ति दोषों की साम्यावस्था के आश्रित हैं।

आज का विज्ञान जिसको "शरीर की रोगनिवारक शक्ति" के नाम से व्यवहृत करता है उसकी शक्ति का उत्पादन व स्थैर्य दोषों की साम्यावस्था के आश्रित है। स्वाभाविक दशा का नाम ही रोगनिवारक दशा का नाम ही रोगनिवारक शक्तिसंपन्न अवस्था है। दोष वैषम्य से शरीर का स्वाभाविक संतुलन नहीं रहता। इसका सर्व प्रथम प्रभाव यह होता है कि शारीरिक रोग निवारक-शक्ति में कमी होने लगती है। कारण—दोष वैषम्य से स्रोतों का तथा अन्य शारीरिक यन्त्रों का काम गड़बड़ा जाता है। चाहे जो रोग उत्पन्न हो, चाहे जिस हेतु से हो, उसका सर्वप्रथम सीधा प्रभाव शरीर की निर्माण क्रिया पर होगा। दैनिक निर्माण का कार्य, जो दैनिक क्षय की पूर्ति कर शरीर की स्वाभाविक शक्ति को स्थिर रखने में काम आता है, दोष वैषम्य होते ही यह निर्माण-कार्य शिथिल हो जाता है। हेतु विशेष के कारण दोषों का जिस प्रकार का वैषम्य विशेष होता है तदनुरूप ही शरीर की स्वाभाविक स्थिति में तथा शरीरस्थ निर्माणकारी यन्त्रों के कार्यों में कमी-वेशी होती है। जिस प्रकार की यह कमी-वेशी होगी तदनुसार ही शरीर-निर्माण या शरीर की रोग-निवारण क्षमताओं में न्यूनाधिकता होगी।

आयुर्वेद के वर्गीकृत हेतुचतुष्ट्य वेगरोधादिक हैं। ये धातुवैषम्य से शरीर का स्वाभाविक व्यापार न्यून हो जाता है।

स्रोत निवारण नहीं रहते। शरीर की दैनिक शुद्धि में अनवस्था हो जाती है। पाचनयन्त्र अपना कार्य यथावत् नहीं करता। इससे शरीर का दैनिक निर्माण कम हो जाता है और ओज की कमी होने लगती है। शरीर का स्वाभाविक तेज, स्फूर्ति और स्नेह घटते जाते हैं और शरीर रोग का क्षेत्र बन जाता है।

जबतक पुनः धातुसाम्य नहीं होता तबतक शरीर का रोग से छुटकारा नहीं हो सकता। आयुर्वेद की चिकित्सा का यही मूल मन्त्र है। वह सीधा रोग को ही (कीटाणुओं का ही) नष्ट करने का उपाय नहीं करता। वह तो घोषणा करता है कि:— "धातुसाम्यक्रिया चोक्ता
तन्त्रस्यास्यप्रयोजनम् ।"

अर्थात् धातुओं को साम्यावस्था में लाना ही आयुर्वेद-शास्त्र का क्रियाकर्म (चिकित्सा) है। रोगोत्पत्ति दोष-वैषम्य से है तो रोग निवृत्ति दोष सम्य से होगा। जब शरीर की उत्पत्ति वातादि प्रधान शुक्रशोणित से है और शरीर की विकृति या रोग धातुवैषम्य से है, तो शरीर का पुनः स्वस्थ होना धातुसाम्य पर निर्भर है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त जब दोषों का शरीर से सम्बन्ध है, तो त्रिदोष की रोग कारणता में क्या शंका रह जाती है? अतः आयुर्वेद का युक्तियुक्त त्रिदोषवाद ही रोग का प्रमुख कारण है, यह कहना असंगत नहीं।

कीटाणुवाद की तरह आयुर्वेद के त्रिदोषवाद में व्यभिचारदोष नहीं आ सकता। क्योंकि त्रिदोष शरीर में नित्य रहने वाले पदार्थ हैं। उनका शरीर के साथ नित्य सम्बन्ध है। शरीर के समस्त क्रियाकलाप के वे आश्रय हैं। खान-पान आदि से शरीर पर जो असर होता है सबसे प्रथम उसका सम्बन्ध इन त्रिदोषों से होता है। अतः त्रिदोषों को प्रकुपित करने के कारणों की विचित्रता और रोगों की प्रकृति, आयु, बल, शरीर सम्यत्, कोष्ठाग्नि की स्थिति, देश, काल आदि के कारण दोष-प्रकोप की विभिन्नता उचित है। आश्रयभेद, दोषों का गतिभेद, उपचार के औचित्य-अनौचित्य से पुनः रोगों में परिवर्तन होते रहना भी संगत है। कीटाणुओं की न तो यह स्थिति है और न उनका इस रूप का शरीर के साथ सम्बन्ध ही है। इस तरह कीटाणु तथा त्रिदोष में से कौनसा रोगोत्पादक हेतु ठीक है, यह निर्णय प्रत्येक विचारशील व्यक्ति कर सकता है।

क्षय की पहिचान तथा भेद

ज्वर, अतिसार, प्रतिश्याय, पाण्डु, अर्श, ग्रहणी, रक्तपित्त आदि और रोगों की तरह क्षय की तुरन्त अभिव्यक्ति नहीं होती। अतः उत्पन्न होते ही क्षय की पहिचान करना अत्यन्त दुरूह है। ऊपर के विवेचन से यह बात तो ध्यान में आ ही गयी होगी कि क्षय का रूप बहुत दिनों में धीरे धीरे बनता है, दोषों की चयात्मक विषमता व उनकी बहुत मन्द गति से होने वाली क्षीणावस्था का न तो रोगी को ही आरम्भ से पता लगता है और न ही डॉ० वैद्य तथा हकीम को क्षय की शुरुवात बहुत विभिन्नताओं के साथ होती है। रोगग्रस्त होने वाला व्यक्ति पर्याप्त समय तक उपेक्षा में रह कर यह समझ ही नहीं पाता कि वह किसी रोग से ग्रस्त है या नहीं। कारण, क्षय का आरम्भ विभिन्न-हेतु भेदों से भिन्न-भिन्न रूप का होता है। और उन विभिन्नताओं के कारण किसी का प्रतिश्याय रहता है तो किसी को मन्द कास। किसी को पाचन का काम मन्द होता है, तो किसी को कुछ-कुछ ऊष्मा थोड़े समय के लिए बढ़ती-सी ज्ञात होती है। किसी में आलस्य, किसी में थकान, किसी में क्लान्ति, किसी में उपचय का अवरोध आदि अनेक नाना भावों से इसका आरम्भ होता है। रोगी रोग की प्रथमावस्था तक अपने को किसी खास बीमारी का शिकार न समझता हुआ समय गंवा देता है।

जहाँ तक मेरा सामान्य ज्ञान है, प्राथमिक अवस्था में बहुत ही कम रोगी चिकित्सक के पास पहुँचते हैं। यदि पहूँचते हैं तो उच्च श्रेणी के या समझदार माध्यमिक श्रेणी के बहुत थोड़े व्यक्ति। उन पहूंचने वालों को अपने शरीर के काम में कुछ गड़बड़ी का ही अनुभव होता है। वे उस गड़बड़ी को या उसी स्थिति को चिकित्सक के सामने रखते हैं। उस स्थिति में बहुत ही कम चिकित्सकों का ध्यान इस बात पर पहुंचता है कि इसको क्षय रोग आरम्भ हो गया है। कारण, उस समय तक ज्वर या कास का अनुबन्ध नहीं बनता है। क्षय की इस पूर्वावस्था में क्षय को पहचान लेना बिना विशेष अनुभव के नहीं हो सकता। आयुर्वेद में इस पूर्वावस्था के लक्षण विशेषों का निरूपण अवश्य किया है, जैसा कि संग्रहकार निर्देश करते हैं।

'रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं क्षवः।
प्रसेको मुखमाधुर्यं सदनं वह्निदेहयोः॥

स्थाल्यमत्रान्नपानादौ शुचावप्यशुचीक्षणम।
हृल्लासच्छर्द्यरुचिरश्नतोऽपि वलक्षयः॥

पाण्योरवेक्षा पादस्य,
शोफाऽक्ष्णोरतिशुक्लता।
बाह्वो प्रमाण जिज्ञासा,
काये वैभत्स्य दर्शनम्ः॥

स्त्रीमद्यमांस प्रियता.........................
नखकेशातिवृद्धिश्च ....

दोषों का वैपम्य उपर्युक्त लक्षणों द्वारा रोगी व चिकित्सक को सचेष्ट करता है कि क्षय की बीमारी होने का उपक्रम हो गया है। ये सब के सब लक्षण किसी रोग में उत्पन्न हों, यह बात नहीं। यह विभिन्न स्थितियों में आरम्भ होने वाले विभिन्न लक्षणों का संग्रह है। सामान्यतः प्रतिश्याय का अनुबन्ध, मुंह में पानी आना या मुंह में उपलेप, काष्ठाग्नि में धात्वाग्नि की कमी, ये क्षय की पूर्वावस्था के प्रथम लक्षण हैं। आँखों की सफेदी यह क्षय के आरम्भ का विशेष लक्षण है। क्षय का आरम्भ होने पर मानसिक क्षेत्र में भी परिवर्तन होता है। वह व्यक्ति भोजनार्थ परोसे हुए ठीक दशा के भोज्य द्रव्यों को भी अपवित्र, अनुपादेय समझता है। उसको इस प्रकार की भ्रान्ति होने लगती है। मतलब, मन में भ्रम और शरीर में प्रतिश्याय, मुहं की स्वाभाविक स्थिति में परिवर्तन, शरीरस्थ कोष्ठ-धातु-मलाग्नियों की न्यूनता, आंखों की सफेदी—ये होने वाले क्षय के प्रमुख लक्षण हैं। इन लक्षणों के प्रतीत होते ही वैद्य को सावधानी से रोगी को संभाल लेना चाहिये। ये लक्षण सामने आने के बाद वैद्य को यह जानने की जरूरत नहीं कि इसके शरीर में टी० बी० है या नहीं। अधिकांशतः इस अवस्था में टी० बी० नहीं मिला करते हैं। तो भी क्षय क्षेत्र बनना आरम्भ हो गया, इसमें संदेह करने की जरूरत नहीं।

इन लक्षणों में ज्वर, कास, स्वर भेद आदि कोई भी लक्षण सम्मिलित नहीं है। कारण क्षय की आरम्भिक अवस्था में इनका नाम—निशान भी नहीं रहता। यही कारण है कि रोगी और चिकित्सक दोनों इस पूर्व रूपावस्था में असावधान रह जाते हैं। इस अवस्था के बाद जब क्षय का रूप बन जाता है, शरीर में क्षय की स्थिति स्थिर हो जाती है, तब पीनस श्वास-कास, असंताप, ज्वर आदि की अभिव्यक्ति होती है। इस दूसरी अवस्था के प्रमुख लक्षण तीन हैं:—अंसपार्श्वाभिताप, हाथ पैरों में दाह और ज्वर। यथाः—

"अंसपार्श्वाभितापश्च
संतापः कर पादयोः।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति
लक्षणं राजयक्ष्मणः॥"

भोजने तीन लक्षण इस रूप में निर्देश किया है।

"कासो ज्वरो रक्तपित्तं
त्रिरूपं राजयक्ष्मणि।"

अंसपार्श्वादि द्वितीयावस्था के प्रारम्भिक लक्षण हैं। कास ज्वर रक्तपित्त–ये द्वितीया वस्था के अंतिम लक्षण हैं। भोज के निदिष्ट लक्षणों की अभिव्यक्ति के पश्चात् व्याधि तृतीयावस्था में परिणत होने लगती है। इस अवस्था के आरम्भ होने के पश्चात् क्षय की चिकित्सा होना असम्भव है। आयुर्वेद के सिद्धांतानुसार हम क्षय की पहिचान उपर्युक्त लक्षणों से अच्छी तरह कर सकते हैं और इस पहिचान में किसी प्रकार की भूल होना बहुत ही कम संभव है।

क्षय के अन्य भेद

आधुनिक वैज्ञानिक क्षय के आश्रयभेद से कई भेद मानते हैं। जैसे फुफ्फुस का क्षय, अन्त्रक्षय, अस्थिक्षय, गण्डमालक्षय, शुक्रप्रणालीक्षय, क्षतजक्षय आदि। आयुर्वेद ने भी क्षय की इन सब स्थितियों को सम्यक् जान लिया था। आयुर्वेद ने इनकी संज्ञाएं भिन्न-भिन्न रूप में की हैं। उनके सिद्धांत से दोषों के प्रसरण की शरीर में तीन गतियाँ हैं:—ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्। कोई रोग एक गतिजन्य होता है; जैसे अतिसार, हृदि आदि। कोई रोग उभय गतिजन्य होता है, जैसे रक्त पित्त, विसूचिका आदि। कोई रोग त्रिविध गतिजन्य होता है; जैसे क्षय। जैसा कि संग्रहकार कहते हैं:—

"पीनसश्वासकासांसमूर्धास्वरज्वरो-
ऽरुचिरूर्ध्वम्।
विट्स्रंसं ससंशोषो अधः।
छर्दिस्तु कोष्ठगे,
तिर्यक्स्थे पार्श्वरुग्दोषे,
सन्धिगे भवति ज्वरः"।

दोष ऊर्ध्वाङ्गों का आश्रय लेकर क्षयोत्पत्ति करेंगे तो उस क्षय में पीनस, श्वास, कास, स्कन्ध, मस्तिष्क, स्वर प्रणाली में दर्द और अरुचि इन लक्षणों की प्रधानता रहेगी। यह फुफ्फुस और गण्ड मालाक्षय हैं। अधः अंगों का आश्रय लेकर क्षय उत्पन्न करेंगे तो उसमें मलका पतला पड़ जाना या गाढ़ विट्कता रूप लक्षण की प्रधानता होगी। ज्वर आदि और लक्षण भी रहेंगे। यह अन्त्र

क्षय है। संधियों में आश्रय लेकर शेष क्षयोत्पत्ति करेंगे तो उसमें ज्वर की प्रधानता होगी। शेष लक्षणों का अनुबन्ध भी रहेगा। यह सन्धि प्रदाह तथा अस्थि क्षय जन्य क्षय है। तिर्यक स्त्रोतों में आश्रय ले क्षयोत्पत्ति होगी तो उसमें पार्श्वताप-रूप लक्षण की प्रधानता होगी। यह शुक्र प्रणाली का क्षय है। दोषों के आश्रय भेद से क्षय की ये विभिन्न अवस्थाएँ बनती हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान इनके विशेष लक्षणों द्वारा सहज ही किया जा सकता है। इन के अतिरिक्त हेतु भेद से और भी विभिन्न भेद शोषानुबन्धी क्षय के आयुर्वेद ने निर्देश किये हैं।

"व्यवाय शोक स्थाविर्य,
व्यायामाध्वोपवासतः।
व्रणोरः क्षत पीड़ाभ्यां,
शोषानन्ये वदन्ति हि" ॥

(सुश्रुत अध्याय ४१/३)

व्यवाय (अधिक स्त्री-सहवास), शोक, बुढापा, शक्ति से अधिक अनवरत श्रम, अधिक चलना, गुस्से से या अन्य हेतुओं से भोजन न करना, व्रण और उरः क्षत के कारण उपचय विनष्ट होकर शोष अर्थात् क्षय होता है।

इन सब की पहिचान के लिए भी इनके विभिन्न लक्षण निर्देश किए गए हैं। उनके द्वारा इनके भेद ज्ञान होने में आशंका नहीं रहती। उपर्युक्त क्षय की सब स्थितियों को समझने के लिए चिकित्सक को सम्यक् शास्त्रीय ज्ञान व विभिन्न अवस्थाओं के रोगियों का अनुभव होना आवश्यक है।

कौड़ी दाम-सुनैहरा काम

[ले०—कवि विनोद, वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य,
अमृतधारा भवन, देहरादून]

गोदन्ती हरिताल बहुत साधारण वस्तु है और सस्ती भी बड़ी है। जिन दिनों मैं छोटा सातवीं श्रेणी में पढ़ता था, एक व्यक्ति ने मेरे सामने इसको चूल्हे में फेंक दिया और श्वेत मृदु भस्म होगई। उसी दिन से मुझे भस्में बनाने का अनुराग हो गया और पढ़ाई में भी अमृतसर हिन्दू सभा हाई स्कूल के

छात्रावास के पिछले आंगन में धूनी रमाये रहता था।

इस बहुत सस्ते द्रव्य को वैद्यगण बहुत नहीं बर्तते हैं। इसकी विशेषता यह है कि जिस चीज के साथ इसकी भस्म की जाती है उसमें वैसे ही गुण भर जाते हैं यूंही आग में डाल देने से भी जो भस्म होती है वह भी बड़ा काम करती है। जम्मू में एक बार मैलेरिया अधिक फैल गया था। एक साधु बहुत प्रसिद्ध होगये—धूनी रमाये रखते थे। जो कोई आता धूनी की राख की पुड़िया बना कर दे देते। लोग स्वस्थ होने लगे। फिर पता लगा कि वह धूनी में गोदन्ती हरताल को डाल रखते थे और उसकी भस्म को राख के साथ मिला जुला कर देते थे। आराम राख से नहीं वरन् गोदन्ती भस्म और विश्वास से होता था।

गोदन्ती की भस्म किसी भी वस्तु में रखकर ८, १० सेर की अग्नि में रख देने से बहुत उत्तम भस्म बन जाती है। गुण में अन्तर होता जाता है। इसकी मात्रा प्रायः एक रत्ती से ३ रत्ती तक है। वैद्य अपनी बुद्धि से अनुपान निश्चित करे, सुनिये:—

१. गोदन्ती हरताल को सामान्य रूप से घीक्वार के पट्ठे में रखकर अग्नि में रख देने से भस्म बन जाती है। यह ज्वरों और उदर विकारों में गुणकारी है।

२. गोदन्ती हरिताल ५ तोले को एक पाव प्याज की लुगदी में रखकर अग्नि दें तो यह भस्म संग्रहणी के लिए बड़ी गुणप्रद है। इसका सेवन दही के मट्ठे के साथ किया जाता है।

३. चूना कलई नीचे ऊपर देकर मिट्टी के सकोरे में बन्द करके आग दे दें तो यह भस्म पाचन को लाभदायक है। जिन्हें दूध न पचता हो वे दूध के साथ इसको सेवन करें। जो बालक दूध फैंकते हैं उन्हें शहद के साथ दो चार चांवल भर चटा देनी चाहिये।

४. मैनफल की लुगदी बना कर उसमें गोदंती हरिताल रख कर भस्म करें तो उससे गलगण्ड (घेंघा) दूर होता है। पान में रख कर खिलादें और पान के रस में मिला कर घेंघे पर लेप भी कर दिया करें। लेप के ऊपर सीसे का बारीक पत्रा करके बांधदें तो और भी उत्तम है।

५. सत्यानासी में यदि भस्म की जाय तो यह बालकों के प्रायः सभी रोगों को दूर करती है यथा—खांसी, नजला, जुकाम, ज्वर, उब्बा, बालग्रह, अपाचन आदि।

यह भस्म बड़ों को भी दी जा सकती है। इतना ध्यान रखिये कि जिस व्यक्ति को यह भस्म सेवन करायी जाय वह दूध घी का सेवन न करे, यद्यपि किंचित दूध मिश्रित चाय सेवन की जासकती है। गर्म चाय से खुलकर पसीना आता है। ज्वर भी दूर होता है। सौंफ तथा अजवायन के क्वाथ के साथ सेवन करने से निमोनिया परे रहता है और पीड़ाएं भी दूर होती हैं।

६. गोदन्ती हरिताल की डली दो तोले, संखिया ६ माशे। संखिये को नींबू के रस में ५ घंटे तक खरल करके गोदन्ती की डली पर लेप करदें और दो प्यालियों में वन्द करके कोयलों की आंच पर एक घंटे तक रखदें। ठंडी होने पर पीस कर रखलें। इसकी मात्रा दो चावल से चार चावल तक है।

शहद के साथ खाने से कुष्ठ को लाभ होता है और मक्खन में रखकर आतशक के रोगी को दिया करें। साथ ही कफज खांसी और श्वास रोगी में भी दे सकते हैं। गठिया में भी लाभदायक है।

७. गोदन्ती को एक शिकोरे में डाल कर ऊपर से आक का दूध इतना डाल दें कि गोदन्ती की डली भीगी रहे। फिर आग देदें। यह भस्म भी कफज कास, श्वाँस, नजला, जुकाम, कफज ज्वर इत्यादि को लाभ प्रद है।

८. पांच तोले गोदन्ती को नीम के आधसेर पत्तों की लुगदी में रख कर २०-सेर की अग्नि में भस्म करके रक्खें। यह शीत वीर्य्य हो जाती है। पित्त के तथा जीर्ण ज्वरों में और विषय ज्वर में भी वहुत लाभ करती है। इसको वनफशा, बजूरी, नीलो-फर आदि के शर्वत से अथवा दूध के साथ सेवन करें।

९. आक (मदार), धतूरा और बाँसा के पत्ते (सब आध सेर) लेकर लुगदी बनालें। इसमें ५ तोले गोदन्ती रख कर भस्म करलें। यह कास और श्वास की राम बाण औषधि है।

१०. एक पाव जंगली प्याज को ५-तोले गोदन्ती के मध्य में रख कर भस्म करलें। पुरानी खाँसी को गुण कारी है।

११. कीकर के पत्तों की आध सेर लुगदी में ५ तोले हरिताल रखकर १५ सेर की अग्नि में भस्म करलें। यह भस्म सब प्रकार के ज्वर के अतिरिक्त हर प्रकार के रक्त पित्त को लाभदायक है। नकसीर, मुख से रक्त आना, प्रदर, मूत्र में रक्त आना, मूत्र कृच्छ्र आदि रोग दूर होते हैं।

१२. एक शिकोरे में गोदन्ती हरिताल ५ तोले, बिरोजा तर १५ तोले बकरी का दूध आध सेर डाल कर ३० सेर की अग्नि में फूक लें और तदनन्तर सब को पीस कर रखें। इसको बकरी के दूध अथवा आमले के जल के साथ स्त्री के श्वेत प्रदर के लिए और गाय के दूध के साथ धातु स्राव के लिए सेवन करायें। सोजाक के पीछे जो धातु स्राव रहता है वह भी दूर होता है।

१३. गोदन्ती हरिताल, तबकी हरिताल एक-एक तोला लेकर मूलीपत्र के रस- घृत कुमारी के गूदे और कंडयारी के रस दस दस तोले में खरल करके केले के तीन तोले बीज की लुगदी में रख कर ५ सेर की अग्नि में फूक लें। यह भस्म श्वास रोग के लिए बड़ी उत्तम है।

१४. गोदन्ती एक तोले को कच्चे और हरे आमलों की लुगदी में रख कर अग्नि देदें। यह भस्म श्वेत प्रदर (ल्यु-कोरिया और सोजाक को लाभदायक है।

१५. करंजवा, गिलोय, नीम के पत्ते और चिरायते के दस दस तोले क्वाथ में ५ तोले गोदन्ती को खरल करके टिकिया बना कर १५ सेर की अग्नि में फूकलें। यह भस्म मलेरिया के लिए रामबाण है।

१६. एक हांडी में घीकवार का दो सेर गूदा डालें। उसमें अजवायन दो तोले फिर नौशादर एक तोला, तदन्तर फिटकड़ी एक तोला रख कर ऊपर ८ तोले गोदन्ती रखदें। उसके ऊपर दो तोले अजवायन और बिछाकर दो सेर गूदा घीकवार का और डालदें और कपड़ौटी करके ३० सेर की अग्नि दें। यह भस्म अमृत तुल्य है पसीना लाकर ज्वर को उतार देती है तथा निमोनिया एवं प्लुरिसी को रामबाण है। बच्चों के डब्बा रोग के लिए भी गुणकारी है।



उरस्तोय या उरःक्षत

[ले०—श्री कविराज रवीन्द्रचन्द्रजी चौधरी बी० ए० काव्यतीर्थ, एल० ए० एम० एस० भिषगरत्न, प्रिन्सिपल, श्रीसनातन धर्म आयुर्वेद विद्यालय व औषधालय मिर्जापुर (उतर प्रदेश)]

Pleura उरस्त, उरोधरा या फुस फुसीया कला का प्रद्याह या व्रणशोथ (Inflammation) को Pleurisy वा Pleuritis कहते हैं।

परिणाम के विचार से इसको प्रधानतया Dry Pleurisy और wet Pleurisy वा Pleurisy with Effusion ये दो भाग किया जाता है। Dry Pleurisy में केवल fibrinous diposit होता है परन्तु wet pleurisy वा pleurisy with Effusion में pleura के थैली में पानी जम जाता है। कभी कभी इस पानी के बजाय pus या मवाद आजाय तो इसको Empyema या Puralent pleurisy कहते हैं।

निदान वा Aeliology:—Dry Pleurisy के कारणों को हिसाब से Primary वा प्रथमिक और Secondary का परिणामज ये दो भागों में भाग किया जाता है। Premary Dry Pleurisy उस Pleurisy को कहते हैं, जिसमें ठंड आद्र हवा या गीला कपड़ा इत्यादि कारणों से बिना कोई दूसरा रोग होते हुये वा दूसरा रोग होने के पहिले होता है। Secondary Pleurisy:—दूसरे रोगों के कारण जैसे Labar, Preumonia, Lung collape Pulmonary tuberculosis का Nephritis वा उरःप्रदेश में कोई अभिघात के कारण होता है। २० से ४० साल उम्र में यह रोग ज्यादातर होता है।

विकृत शरीर

साधारणतया सूजन या प्रद्याह स्वल्प जगह पर सामित रहता है। किन्तु कभी कभी विस्तृत स्थान पर भी यह प्रद्याह हो सकता है। उरोधरा, उरस्य या फुस फुसीया कला का परिसरीय, भाग (Porietal cayer) अथवा पर्याशय भाग (Uisecral layer) आक्रान्त हो सकता है। किन्तु नियमित रूप से दोनों भाग आक्रान्त होते हैं। व्रणशोथ का प्रद्याह के फल स्वरूप कला के तल पर feiria

संचित होकर एक अप्रकृत कला (False membrana) बन सकती है।

आरोग्य पथ पर कला के दोनों भाग मिलकर फँस जा सकते हैं जिसको local adhisions कहते हैं अथवा कहीं कहीं कलाघन (thick) हो सकती है।

लक्षण

प्रारम्भ में रोगी को अवसाद, ज्वर, ज्वरभाव, सर्दि मालुम पड़ता है जो एक दो रोज स्थायी होता है। इसके बाद अथवा साथ ही साथ पार्श्व देश में बहुत दर्द या शूल शुरु होता है जिसको सूची विद्धवत वेदना या stitching pain कहा जाता है Pleurisy का शूल ऐसा विशिष्ट प्रकार का होता है जो कि यह शूल जिसको होता है उसको अगर पहिले से इस शूल का ग्रन्थगत ज्ञान हो तो वह ठीक से अनुभव से बता सकता है कि यह Pleurisy है। यह दर्द श्वास लेने के साथ बढ़ जाता है तथा श्वास छोड़ते समय दर्द कम हो जाता है। वेदना इतनी तीव्र होती है कि रोगी को किसी हालत में चैन नहीं मिलता है। अगर उस स्थान को ऐसा पकड़ लिया जाय जो कि उरोदेश का संचालन (movement वा चलन कम हो तो उरस्याकला के दोनों भाग का घर्षण में कुछ जोर कम होने के कारण दर्द कुछ होता है। मामूली खाँसी हो सकती है जो वक्षःप्रदेश का संचालन (movement) से बढ़ जाती है। इसका शुरुआत कभी कभी जुखाम होकर या ठंड खाँसी छोटे रूप से ज्यादातर सूखी व बिना कफ के साथ होती है जिससे रोगी को काफी कष्ट होता है। साधारणतः ज्वर रहता है लेकिन वह तेज नहीं होता है, १०१° के लगभग रहता है दो तीन रोज के अन्दर वह प्रायशः चला जाता है। किसी किसी रोगी को ज्वर नहीं भी रहता है।

रोगी का श्वास कुछ द्रुत होता है परन्तु वह गम्भीर (deep) नहीं होता है।

रोगी ज्यादातर आक्रान्त पार्श्व पर लेटना चाहता है। क्यों कि ऐसा करने से उस पार्श्व का फुस फुस तथा कला को चलने से मुक्ति मिलती है। तथा अपर पार्श्व का फुस फुस द्वारा श्वास प्रश्वास क्रिया हो सकती है। इस पार्श्व में सोने से कला का चलन मन्द होने से दर्द भी कम होता है। परन्तु यह नियम हमेशा लागू नहीं होता है। कभी कभी रोगी को आक्रान्त स्थान पर अर्थात उस पार्श्व में सोने से कष्ट महशूस होता है। क्योंकि

उस पार्श्व पर प्रदाह अथवा व्रण शोथ होने से उस पार्श्व में दबाव पड़ने से अधिक कष्ट प्रतीत होता है। अतः कभी कभी रोगी अपने पृष्ठ देश पर लेटना चाहता है। सूजन के स्थान पर हाथ लगाने से वेदना होती है। कभी कभी स्पर्श से घर्षणज शब्द (Friction Fumitu) मालूम पड़ता है। बाद में (Percustion) कोई अन्तर मालूम नहीं पड़ता है। लेकिन प्रराणावस्था में Pleura का घनत्व होने के कारण (Thickness). Percusion या बाद में कुछ dullness. (मन्दता) मालूम हो सकता है।

श्रवण

(Ausaultestion)-Dry Pleurisy में घर्षणज शब्द या ध्वनी (Friction sound) इतना विशिट प्रकार का होता है कि जिसको पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होती है। इसको Friction rub कहते हैं। यह stethescope या श्रवण-पन्त्रा से तथा अपने कान से भी सहज रूप से प्रतीत होता है। रोगी खुद यह Friction rub आक्रान्त पार्श्वस्थल पर अनुभव कर सकता है। यह आवाज श्वास लेने का अन्तिम भाग में अथवा निःश्वास छोडने का प्रारम्भिक भाग में सुना जाता है। नया जूता पहन कर चलते समय जो आवाज होती है। अथवा दो शुष्क कागज खण्ड घर्षण करने के समय जो शब्द होता है यह उसी के समान होता है। शब्द छोड छोड कर होता है। कभी कभी सूक्ष्म Repeatation Friction sound सुनी जाती है प्रत्येक श्वास लेने के समय यह श्रुत होगा यह कोई बात नहीं कभी कभी Plurisy में श्वास लेने के समय दर्द नहीं भी हो सकता है।

Diaphragmatic Pleurisy में Phrenic none के साहचर्य से कभी २ दर्द स्कधं देश तक अनुभूत होता है। इसमें उदर के दाहिनी ओर हिस्सा में कोई कोमल वेदना युक्त स्थान होता है।

आयुर्वेद में Pleurisy का क्या कहा जाय यह एक समस्या है। वृहतत्रयी या लघुत्रयी किसी संहिता ग्रन्थ में केवल Pleurisy का लक्षण युक्त कोई रोग का वर्णन ठीक से नहीं मिलता है निदान में उरःक्षत का वर्णन है। जिसमें कष्ट कल्पना से Pleurisy का अवरोध किया जा सकता है।

उरःक्षत कोई असमसाहस करने से होता है। परन्तु स्वल्प भोजन तथा अत्यधिक शुक्र क्षय से भी यह हो सकता है।

उरःक्षत के लक्षण से यद्यपि Pulmonary cavity (फुसफुसीय क्षत) भी प्रतीत हो सकती है तथापि उरःक्षत से Lungs (फुसफुस) या Pleura (उरस्याकल) में कोई Lesion या आघात भी समझा जा सकता है। Pleurisy के समान लक्षण युक्त रोग कोई अन्य पौराणिक आयुर्वेद-ग्रन्थ में उल्लिखत नहीं होने से तथा उरःक्षत से वक्षःस्थल पर (गह्वर में) कोई आधात समझ जाने के कारण इसको उरःक्षत में अन्तर्गत कराया जा सकता है। Pleurisy Trauma वा आघात से भी हो सकती है। उरःक्षत में कफ के साथ रक्त आता है जो Pleuraleffusion में कभी कभी दिखाई देता है। "कल्याण सुन्दर रस" "उरस्तोय" में उपकारी ऐसा फलश्रुति में लिखा है—यही केवल एक रस ग्रन्थ में उरस्तोय का उल्लेख है।

महा महोपाध्याय स्वर्गीय गणनाथ सेन जी महोदय ने Pleurisy को "उरस्तोय" आख्या दी। उन्होंने Dry Pleuisy को "शुष्क उरस्तोय" नाम दिया। इसमें आपत्ति यह है कि Pleurisy में सदैव पानी वा तोय नहीं भी रहता है जैसा Dry Pleurisy में और एक बात यह है कि हम लोगों को जहाँ तक हो सके शास्त्रों में दिये गये नामों का प्रयोग करना चाहिये। उरःक्षत में अगर Pleurisy का अन्तर्भाव किया जाय तो कोई हानि नहीं है। क्योंकि उरःक्षत में भी प्रदाह या आघात रहता है जो Dry Pleurisy में स्वाभाविक है। इस कारण से हम उरस्तोय को उरःक्षत में अन्तर्मुक्त कर सकते हैं। केवल Wet Pleurisy वा Pleural Effusion को जहाँ Pleural sac में पानी आ जाता है—हम उरस्तोय कह सकते हैं। उरःक्षत के कारण व लक्षण निदान में निम्न प्रकार दिये गये हैं।

धनुषयस्यतोत्यर्थं
भारं मुद्वहतो गुरुम्।
युध्यमानस्य बलिभिः
पततो विषमोच्चतः॥
वृषं हयं वा धावन्तं
दम्यं वान्यं निगृह्णतः।
शिलाकाष्ठाश्च निर्धातान
क्षिपतो निघ्नतः परान्॥
अधीमानस्य वात्युच्चैर्दूरं
वा व्रजतो द्रुतम्।
महानदी वीतर तो
हयैर्वा सह धावतः॥
सह सोत पततो दूरं
तूर्णं चाति प्रनृत्यतः।

तथान्यैः कर्मभिः क्रूरै
　　मृशमत्या हतस्य वा ॥
विक्षते वक्षसि व्याधि
　　वलवान समुदीर्यते ।
स्त्रीषु चाति प्रसक्तस्य
　　रुक्षाल्प प्रमिताशिनः ॥
उरो विरुज्यते त्यर्थं
　　भिद्यतेऽथ विभज्यते ।
प्रपीड्येते ततः पार्श्वे
　　शुष्य त्यंगं प्रवेपते ॥
क्रमाद् वीर्यं वलं वर्णो
　　रुचि रादिश्च हीयते ।
ज्वरो व्यथा मनो दैन्यं
　　विड्मेदाग्नि वधावपि ॥
दुष्टः श्यावः सुदुर्गंधः
　　पीतो विग्रथितो वहुः ।
कास मानस्य चाभीक्ष्णं
　　कफः सासृक प्रवर्तते ॥
सक्षतः क्षीयतेत्यर्थं तथा
　　शुक्रौजसोः क्षयात् ॥

उपर्युक्त तत्तत् असम साहस के कार्यों--जो अपनी शक्ति के वाहर है-करने से उर स्थान पर क्षत हो सकता है। इसमें उरः प्रदेश में दुःसह व्यथा का उल्लेख है---वह Pleurisy का विशिष्ट लक्षण है। यहां पार्श्व का उल्लेख विशेष अर्थ पूर्ण है। जो वल वीर्यहानि ज्वर अजीर्ण अतीसम्, खराब दूर्गंध युक्त कफ का उल्लेख है—वह Palmonary T. B. (राजयक्ष्मा का Cairty, lung abscess तथा Plural effusion और Ess Pyema में भी हो सकते हैं। यहां उरः क्षत के लक्षण के साथ Plural Effusion के लक्षण मिल जाता है। अतः उरःक्षत में ही Dry तथा Pleurisy Plural Effusion का अन्तर्भाव हो सकता है।

उपद्रव

Complications:—Dry Pleurisy आगे चलकर wet Pleurisy में रूपान्तरित हो सकती है। बहुत से Pleurisy के रोगी Tuberculosis के कारण होने से आगे चलकर राजयक्ष्मा का Pulmonary Tuber culosis हो सकता है। पार्श्व शूल वहुत दिनों तक रह सकता है Pleura का adhesion अर्थात उरस्याकला के दोनों भाग मिल जा सकता है। Dry Pleurisy का तीव्र भाव तीन चार रोज में चला जा सकता है। लेकिन पुनः इसका आक्रमण होता रहता है जो वर्षों तक चलता है। जरासा सर्दी पाकर उभारने का डर रहता है। वहुत दिनों तक Dry Pleurisy का स्थान वेदना युक्त

रहता है जो दबाने से दुखाता है। Rhiumatic कारण से Pleurisy हो तो कभी अच्छा होता तो पुनः आक्रमण होता है ऐसा क्रम चलता है।

रोग-निर्णय

(Diagnosis):—Dry Pleurisy का Frictionrut अर्थात घर्षणज ध्वनि उसका रोग-निर्णय में बहुत ही सहायक है। सूची-विद्धवत वेदना (Stitching pain) भी Dry Pleurisy का द्योतक है। लेकिन कभी कभी दर्द नहीं भी रहता है। Plurodyniu में पार्श्व में दर्द होता है। वह श्वास लेते समय बढ़ता भी है। लेकिन अगर मास पेशी को पकड़ कर श्वास लिया जाय, तो दर्द नहीं मालूम होता है। या कम प्रतीत है तथा इसमें Frictionrut भी नहीं रहता है। Inter costal neuralgia में दर्द नाड़ी की गति को लेकर (Along the Course of the nowe) होता है। कभी कभी Hepatilis (यकृद्-प्रदाह) वा Lever abouse (यकृत विद्रधि) के साथ Pleurisy का सन्देह किया जाता है। लेकिन उसमें Frictionrut नहीं रहता है। साध्यासाध्य निर्णय (Prognosis) प्रायशः डाक्टर लोग Dry Pleurisy होने ही इसका कारण T.B. कहकर रोगी तथा उसके आत्मीय परिजनों को घबरा देते हैं। Dry pleurisy का कारण प्रायशः T.B. यह कहना ठीक नहीं है। ज्यादातर Dry Pleurisy सर्दी या Rhumalic कारणों से होता है जो सामान्य उपचार से अच्छा हो सकता है। अगर T.B. कारण है तो परिणाम अच्छा नहीं है।

चिकित्सा

Pleurisy का प्रति रोधक (Preventive) कोई चिकित्सा नहीं है। इसको प्रतिरोधक चिकित्साह कहा जाय तो साधारण स्वास्थ्य अच्छा रखने की चिकित्सा कही जा सकती है।

Dry Pleurisy के नूतन तीव्र शूल में मालिश नहीं किया जाय तो अच्छा है। उस समय शीत तथा आक्रान्त स्थान पर "वालुका" का गर्म पानी में मिलाकर लेप करने से फौरन आराम मिलता है सब से पहिले छाती में लेप वा उपनह भी बरदाश्त नहीं होता है। उस समय अगर किसी कर्पट बांध दिया जाय जैसे छाती का चलन (movement) नहीं हो तो बहुत आराम मिल जाता है। कभी कभी Exp. Belladone का लेप करने से भी सामयिक उपशय में होता है। चरक सूत्रस्था नोक्त ' रोस्ना

रास्ना"-नामक पार्श्व शूल नाशक लेप को अति उपकारी प्रतिपन्न हुआ। यथा—

रास्नाहरिद्रे वलदं द्वे शताह्वे
देवदारुरपि सितोफला चा
जीवन्ती मूलं सद्धृतं सतैलमा-
ल्येनं पर्श्वरुक जासु कोष्णम्॥

रायसन, हलदि, दारुहल्दी, नलद, शुलफा सौंफ, देव दारु मिश्री जीवन्ती मूलश्चि और तिल तैलके साथ पिस कर गरम करके पार्श्व पीड़ा में (जैसे Dry Pleurisy में) प्रयोग हितकर है।

डाक्टरी मत में Dry Pleurisy के स्थान पर Anti Phlogistine लगाने से उपकार होता है।

मैंने Dry Pleurisy को वात जन्य समझ कर इसमें वायु नाशक एरण्ड तैल का प्रयोग करके वहुत ही लाभ पाया। रोगी को एक रोज अन्तर देकर या प्रति रोज सोने से पहिले एरण्ड तैल १ औंस गरम दूध या पानी के साथ देते हैं। जिससे रोगी को आसानी से जुलाब होता है। तीन चार टट्टी होकर रोगी को पेट साफ हो जाता है। एक दो रोज में दर्द कम हो जाता है। बुखार चला जाता है। इसके बाद रोगी को ताकत तथा खाँसी वगैरह के लिये अभ्रक भस्म सितोफलादि, द्राक्षासव इत्यादि देते हैं। नीचे इस क्रम में चिकित्सित रोगियों में से चार रोगियों का उदाहरण देता हूँ ये इस चिकित्सा पद्धति से अच्छे हो गये हैं।

१. कै० ना० अ० उम्र ३५ साल:— दाहिना भाग में Dry Pleurisy से आक्रान्त हुए। डाक्टर का कहना था कि यह Dry Pleurisy है जिस लिये X-ray लेकर आधुनिक Antislotic जैसे Strep tomycin का सूई लेना चाहिये लेकिन रोगी ने सूई लेने को इनकार किया तथा आयुर्वेदिक दवा करने के लिये मनन किया। उनको एक रोज अन्तर देकर तीन रोज Castor oil दिया गया। रोगी का दर्द तथा घर्षण-ध्वनी (Friction rut) तीन दिन के अन्दर गायब हो गये। आज चार साल से रोगी बिलकुल स्वस्थ है।

२. ज० ना० श० उम्र २५ साल:— सीना का वाम पार्श्व में Friction rut के साथ तीव्र दर्द था। स्थानिक श्रेष्ठ डाक्टरों को दिखलाया। रोगी Dry Pleurisy रोगाक्रान्त है—यह राय उन चिकित्सकों की भी था। रोगी को सूई लेने को कहा गया। परन्तु रोगी ने सूई नहीं ली। उपरोक्त क्रम से चिकित्सा की गई। रोगी १५ दिन में सम्पूर्ण स्वस्थ हो गया।

आगे वल वृष्यर्थ शृंगाराभ्र सितोफलादि, द्राक्षासव, दिये गये रोगी तीन साल से अच्छा है। पुनरा क्रामण नहीं हुआ।

३. महादेव उम्र ३० सालः—दाहिनी उराया कला में Pleura तीव्र वेदना व ज्वर के साथ Dry Pleurisy का लक्षण प्रादुर्भूत हुआ लेप तथा Castor oil का प्रयोग किया। बुखार १५ रोज (15 days) बाद अच्छा हुआ। दर्द कम हुआ लेकिन करीब दो महिने तक दर्द मन्द मन्द रहा आखिर में पुराना घी का मालिश भी दिया गया। खाने के लिये गोदन्ती भस्म शृङ्ग-भस्म, अभ्रकभस्म सितोफलादि दिये गये। अच्छा होने में करीब दो महिने लगे।

४. रा० ला० ओ० उम्र ६० साल वाम पार्श्व में मन्द मन्द दर्द तथा मन्द ज्वर जो सुबह ६८°/६८॥° शाम १०१°/१०२° होता था—करीब करीब १५ रोज चला। इसके बाद मेरे इलाज में आया। मैंने -'वालुका लेप," Castor oil एक रोज अन्तर देकर चिकित्सा की दो रोज में बुखार कम हुआ। सात रोज में बुखार सम्पूर्ण चला गया। दर्द मामूली रहा जो १५ रोज में एक दम चला गया लेकिन सूखी खांसी बहुत दिनों तक चली, जिसके लिये मैंने सितोफलादि का मशङ्ग तालीशभ्र चलाया २०/२२ रोज में रोगी अच्छे हो कर गङ्गाजी में नहाने लेगये। चार महिनों की बात है। रोगी अभी अच्छा है।

Dry Pleurisy में रोगी को दो साल स्नान बन्द कर दिया जाय तो अच्छा है। कोई मेहनती काम भार बोझ नहीं उठाना चाहिये। तीव्रावस्था शान्त होने पर सींना में आक्रान्त स्थान पर पुराना घी सैन्धानमक, कर्पूर आदि का रस गर्म करके मिला कर मालिश करवाना हितकर इसमें Pleura का सृजन कम हो जाता है। कठिन हाथ से मालिश नहीं करवाना चाहिये।

औपधों में कल्याणसुन्दर रस भी दिया जाता है। यह Pleural Effusion में बहुत उपयोगी है। पुराणावस्था में स्वर्ण वसन्त मालती, लघुवसन्तमालती, अभ्रभस्म, प्रवाल-पंचामृत सितोफलादि, च्यवनप्राश इत्यादि, अवस्थानुसार दिया जाता है। रोगी को दर्द तथा Frictionsrut नहीं भी रहे तो भी उपरोक्त दवायें दी जा सकती है। अगर Pleurisy राजयक्ष्मा हो तो यक्ष्मा की चिकित्सा करना चाहिये।

सारांशः—Dry Pleurisy ज्यादा-तर सर्दि के कारण होती है।

इसमें पार्श्वशूल प्रधान लक्षण है प्रारम्भावस्था में सामान्य ज्वर रह सकता है।

बहुत से Dry Pleurisy सर्दी से होती है। लेकिन कभी कभी T.B. के वजह से Pleurisy हो सकती है।

आयुर्वेद मत में महा महापाध्याय कविराज गणनाथ सेनजी ने इसको उरस्तोय कहा है। होते हुए इसको उरःक्षत में अन्तर्भाव किया जा सकता है।

Dry Pleurisy में वायु की चिकित्सा मन में रख कर शुरू में एरण्ड तैल का विरेचन दिया जाय तो अच्छा है। इससे काफी लाभ होता है। साथ में अन्य क्षय पूरक दवायें जैसे अभ्रभस्म प्रवालभस्म सितोफलादि दिया जाना चाहिये।

उदाहरण (१) चरक सहिंता
(२) अष्टांगहृदय
(३) सुश्रुत सहिंता
(४) भाव प्रकाश
(५) मधवनिदान
(६) Pricis Medicine
(७) Beaumonti Medicine

फक्क रोग

[ले०—श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत साहित्यायुर्वेदाचार्य ए० एम० एस० डी० एस० सी० (आ०) संकरी टोला चौक, लखनऊ]

उपोद्घात

आयुर्वेदिक साहित्य में प्रचलित एवं प्रसिद्ध वृहत्रयी—(चरक-सुश्रुत और वाग्भट की संहिता) और लघुत्रयी (माधव निदान, भाव प्रकाश और शार्गंधर सहिता) तथा अन्य संग्रह ग्रन्थों और प्राचीन टीकाओं में कहीं भी इस रोग का उल्लेख नहीं मिलता है। केवल नेपाल से उपलब्ध अत्यन्त प्राचीन कौमार भृत्य तन्त्र की काश्यप संहिता अथवा वृद्ध जीवकीय तन्त्र में ही इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

परिचय

यह प्रायः एक वर्ष के माता या धाय का दूध पीने वाले क्षीरप शिशुओं का होने वाला कफज रोग है, जो कि विशेषतया कफ से दूषित माता या धाय के पीने से शिशुओं को उत्पन्न हुआ करता है। महर्षि कश्यप ने कफ से दूषित हुये दूध वाली

धाय की 'फक्क दुग्धा' सञ्ज्ञा लिखी है उसके कफ से दूषित हुये दूध को पीने से शिशु के रस वाही स्रोत रुक जाने के कारण रक्त आदि धातुओं के क्षीण होने पर शिशु की अस्थि भी क्षीण होने लगती है, जिससे वह शिशु कृश हो जाता है और एक वर्ष का हो जाने पर भी चलने में असमर्थ होने के कारण धीरे धीरे चलता (सरकता) है, इसलिये "फक्कति मन्दं गच्छति इति "फक्क" इस व्युत्पत्ति के आधार पर वह १ एक वर्ष का शिशु फक्क कहलाता है, और उसको होने वाला यह रोग फक्क रोक कहलाता है, और पाश्चात्य एलोपैथिक चिकित्सक इसको रिकेट्स (Rictrets) नाम से पुकारते हैं।

१. तेऽपि (बालाः) त्रिविधाः-क्षीरपाः क्षीरान्नादाः अन्नादा इति, तेषु संवत्सर-पराः क्षीरपा द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादा परतोऽन्नादा इति।

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान, अध्याय ३५।३३

२. धात्री श्लेष्मिक दुग्धातु फक्क दुग्धेति संज्ञिता। तत्क्षीरपो बहु व्याधिः कार्श्यात् फक्कत्व माप्नुयात्॥

काश्यप संहिता

३. बालः संवत्सरापन्नः
पादाभ्यां यो न गच्छति
स फक्क इति विज्ञेय
स्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम्॥

फक्क रोग के भेद

यह फक्क रोग क्षीरज गर्भज और व्याधिज फक्क के भेद से तीन प्रकार का माना गया है।

१. क्षीरज फक्क—

यह माता या धाय के कफ से दूध के पीने से शिशु को उत्पन्न होता है।

२. गर्भज फक्क—

यह गर्भवती माता या धाय के दूध पीने से शिशु को उत्पन्न होता है।

३. व्याधिज फक्क—

यह जीर्ण ज्वर आदि निज तथा आगन्तुक व्याधियों से कृश शिशु को उत्पन्न होता है।

फक्करोग का स्वरूप (रूप)—

उपर्युक्त तीनों प्रकार के फक्करोग में फक्कता अर्थात् शिशु में चलने फिरने की असामर्थ्य Inability to walk) अवश्य होती है। इस रोग का यह ही एक मुख्य चिह्न है। साथ में अरुचि खांसी, मन्दाग्नि-वमन-कृशता-विभ्रम-उदर शिर और मुख की वृद्धि-नितम्ब भुजा और वक्षस्थल का सूखना आंखों में पीलापन, रोमाञ्च होना मलमूत्र का परित्याग शरीर

के कटि के नीचे के भाग की क्षीणता मीलनता मृत प्रायता चिड़चिड़ापन नख वृद्धि श्वास वृद्धि नेत्र और नाक से मल निकलना यह अन्य लक्षण भी न्यूनाधिक होते हैं। क्षीणता एवं कृशता के कारण अस्थि या दुर्बल हो जाने से शिशु चलने में असमर्थ हो जाते हैं और यदि ऐसी अवस्था में भी जब वे चलने का प्रयत्न करते हैं या उनके माता पिता उनको चलाते हैं तो चलने से उनकी अस्थियों पर दबाव पड़ने के कारण वह अस्थियां वक्र (तिरछी) हो जाती हैं।

फक्क रोग के यह सब लक्षण पाश्चात्य ऐलोपैथिक चिकित्सा शास्त्र में प्रसिद्ध रिकेट्रस (Rictrets) रोग में भी न्यूनाधिक देश काल आदि के भेद से मिलते हैं। इसलिए रस फक्क रोग को एलोपैथिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार रिके ट्रस रोग मानना उचित ही है।

गर्भिणी मातृकः क्षिप्रं
स्तन्यस्य निनिर्वतनात्।
क्षीयते म्रियतेवाऽपि स
फक्को गर्भ पीडितः॥
निजै रागन्तुभिश्चैव ...... ज्वरादिभि।
अथवाक्लिश्यते बालः
क्षीणमांस बल द्युति।
इत्येतैः कारणैर्विद्याद्
व्याधिजां फक्कतां शिशो॥
(काश्यप संहिता)

पाश्चात्य (ऐलोपैथिक) चिकित्सक इस रोग का कारण चूना और जीव द्रव्य या खाद्योज (Vitamin विटामिन) त्रिटामिन) डी० की न्यूनता मानते हैं। गर्भस्थभ्रूण का शरीर अन्तिम दो मास में खटिक लवण को एकत्रित करता है, इस कारण अप्रगल्भ शिशुओं में उचित मात्रा में खटिक की राशि एकत्रित होने नहीं पाती और उनकी तीव्रता से वृद्धि के कारण फक्क रोग हो जाता है। पर्याप्त सूर्य प्रकाश का परिद्रता एवं अस्वास्थ्य कर निवास भी इस रोग की उत्पत्ति में प्रधान करण है—परन्तु यह निश्चित है कि 'यह रोग सहज नहीं होता है, और चार मास से पहिले तथा तीन वर्ष से अधिक अवस्था में इस फक्क रोग का सुनिश्चित लक्षण अपवादरूप में ही मिलता है। यद्यपि फक्कावस्था में रक्तगत खटिक (कैलसियम Calcium) की राशि कम हो जाती है, तथापि अधिकतर रोगियों में रक्तगत खटिक प्राकृतिक सीमा में रहता है। रक्तगत खटिक की न्यूनता के कारण उत्पन्न हुये फक्क रोग में टिटैनी।

स्वरयन्त्र की कर्कशता तथा आक्षेप

आदि वात प्रधान उत्पन्न हो जाया करते हैं। साधारणतया बढ़ती हुई अस्थियों में फास्फेट की उपस्थिति में कैलसियम फास्फेट (Calcium Phosphate) के सञ्चय से अस्थियों के निर्माण का कार्य सम्पन्न हुआ करता है। फक्क से पीडित शिशुओं में फास्फेट प्राकृत अवस्था में प्राप्त होता है। अतएव यह सोचा जाता है कि रक्त से अस्थियों को जिस प्रक्रिया द्वारा कैलसियम् फास्फेट प्राप्त हुआ करता है उस प्रक्रिया में विकृति हो जाती है। कैलसियम फास्फेट के न पाये जाने के निम्नलिखित अनेक कारण हो सकते हैं।

१. आहार में समुचित मात्रा में खटिक (कैलसियम और फास्फेट न हों।

२. आन्त्र द्वारा शोषण के कार्य में विकृति हो।

३. जिस प्रक्रिया द्वारा अस्थि के तन्तुओं के निर्माण के लिये रक्त से कैलसियम् और फास्फेट लिया जाता है उसमें बाधा हो। अशोसित खटिक मल द्वारा निकलता रहता है यह सोचा जाता है कि कैलसियम खटिक का आन्त्र द्वारा शोषण होता है परन्तु जब अस्थियां अपने विकास के लिये उसको ग्रहण नहीं करती हैं तब वह फिर आन्त्र में उत्सृष्ट हो जाता है तथा फास्फेट का मूत्र द्वारा अधिक परित्याग होने लगता है।

फक्क रोग में सब लक्षण एक साथ न होकर क्रमशः प्रकट होते हैं। पूर्वावस्था में शिशु उद्विग्न एवं क्षुब्ध रहता है और उसकी स्वाभाविक चपलता कम हो जाती है। हेमन्त शिशिर और वसन्त ऋतु की रात्रि में भी पुरः कपाल में पसीना निकलता रहता है। साधारणतया शिशु स्थूल और अधिक स्वस्थ प्रतीत होता है परन्तु स्नायु ढीली और पेशियां दुर्बल हो जाती हैं इस फक्क रोग में अस्थिगत परिवर्तन विशेष महत्व का होता है।

शिशु की करोटि में अस्थि भवन कार्य देरी से तथा अनियमितरूप से होता है, पुरः पार्श्व कपाल के अस्थि भवन केन्द्र के चारों ओर उभार दृष्टिगोचर होता है। साधारणतया शिशुओं का ब्रह्मरन्ध्र १½ वर्ष के भीतर बन्द हो जाता है, किन्तु फक्करोग से आक्रान्त शिशु का विलम्ब से बन्द हो जाता है। सावधानी से स्पर्श करने पर पश्चात् कपालास्थि में कोमलता पाई जाती है तथा करोटी चौकोर हो जाती है, प्रायः दूध के दान्त भी देरी से निकलते हैं, पहिला दान्त दूसरे वर्ष तक भी नहीं निकलता है, गर्भाशय में रहने के समय जो

शिशु खटिक एकत्रित कर लेते हैं, उनके दूध के दान्त समय पर भी निकल आते हैं परन्तु वे आकृति विहीन एवं समय से पहिले गिरने वाले होते हैं। इस फक्क-रोग का बुरा प्रभाव दूसरीबार निकलने वाले दान्तों पर भी पड़ता है। सबसे सामान्य एवं पूर्वावस्था में मिलने वाला चिह्न फक्कीय माला (Ricpity) है जो पसलियों और उनकी तरुण स्थियों (कार्टिलेजों) के सन्धि स्थल अधिकतर चौथे पांचवे एवं छटे में मिलते हैं। कोमल पसलियां पीछे की ओर दब जाती हैं तथा उर: फलक ऊपर हो जाता है जिससे शिशु कपोत वक्ष दृष्टिगोचर होता है। मेरूदण्ड को बान्धने वाली स्नायु एवं प्रधानतया पेशियों की शिथिलता के कारण तथा अंशतः कशेरुकाओं की कोमलता के कारण पृष्ठवंश टेढा हो जाता है। कन्याओं की त्रिकास्थि आगे की ओर उभर जाती है जिससे उनको प्रसव के समय कष्ट होता है। फक्करोग बढ़ने पर लम्बी अस्थियों का शिखर प्रान्त बढ़ जाता है यह मणिबन्ध और गुल्म में अधिक स्पष्ट होता है, संदिग्धावस्था में एक्सरे द्वारा परीक्षा करा लेनी चाहिये चलने में भार पड़ने के कारण पैर की लम्बी अस्थियां टेढी हो जाती हैं, रोगी को रक्ताल्पतायी हो जाती है। प्राय: अल्प मात्रा में श्वेताणुओं की वृद्धि पाई जाती है स्नायुओं की शिथिलता के कारण रोगी को चलने और बैठने में देरी होती है।

उदर प्राचीर की पेशियों की तान Tone में कमी होने के कारण उदर में दूषित वायु उत्पन्न होने से उदर में आध्मान हो जाता है, एवं यकृत प्लीहा छूने पर प्रतीत होते हैं।

उपद्रव

फक्क रोग बढ़ने पर अतिसार एवं श्वसन मार्ग का संक्रमण बहुत मामूली है। शालक Adenoid एडेनोइड) वृद्धि के कारण जब वक्षस्थल में वायु के प्रवेश में रुकावट होती है, तब वक्ष प्राचीर में विकृति हो जाती है। क्लोम नली का आक्रमण बार बार होता है।

फक्क रोग से आक्रान्त बालक की जब रोग क्षमता न्यून हो जाती है, तब प्राय: उत्फुल्लिका (Braeekepneumonia) ब्रोंकी न्यूमोनिया का भयंकर आक्रमण हुआ करता है। यदि रोगी शिशु के आहार में स्टार्च (Starch निशास्ता) की अधिकता होती है तब प्रबल अतिसार हो जाता है जिससे आन्त्र की पेशियों की

दुर्बलता और आध्मान रहने से कभी-कभी शिशु की मृत्यु भी हो जाती है।

सापेक्षित रोग निश्चिति

अस्थियों का स्पर्शाहत्व—यह फक्क रोग के अतिरिक्त बच्चों के स्कर्वी (Infantile Sacruy) रोग में भी होता है परन्तु इस रोग में स्पर्श से शूल भी होता है जो कि फक्क रोग में नहीं होता है। अस्थि वक्रता यह चिह्न फक्क रोग के अतिरिक्त स्वस्थ शिशुओं में भी अंशतः पैर की बाहल धारा में वसा के संचय के कारण से प्राकृतिक रूप से सम्पूर्ण पैर में हो जाती है परन्तु यह वक्रता शिशु के चलने से स्वयमेव दूर हो जाती है, इसके विपरीत फक्क रोग की अस्थि वक्रता जंघास्थि के नीचे के प्रान्त में ही होती है।

साध्या साध्यता Prognosis

उपद्रव रहित फक्क रोग साध्य होता है। गम्भीर रोगियों में अस्थियों की विकृति फक्कावस्था के अनन्तर भी बहुत समय तक रह जाती है। पसलियों की वक्रता प्रायः मिट जाती है। रोग क्षमता की न्यूनता से रोमान्तिका इन्लफुएञ्जा (श्वसनक ज्वर कुकर खाँसी (whooping Cough) हुपिंग कफ) आदि संक्रामक रोग उपद्रव स्वरूप में हैं जैसे रोगी शिशु की दशा चिन्ताजनक हो जाती है, और प्रबल अतिसार एवं उत्फुल्लिका (डिब्बा-रोग पसले कल्ला आको निमोनिया) से मृत्यु भी हो जाती है।

चिकित्सा

१. रोगी शिशु और उसको दूध पिलाने वाली माता अथवा धाय को सूर्य प्रकाश और शुद्ध आयु का पर्याप्त सेवन करावे। माता या धाय के कफसे दूषित दूध चरक संहिता की दुग्ध शोधक पाठ। आदि दस औषधियों को क्वाथ या अन्य कफ नाशक औषधियों का क्वाथ माता अथवा धाय को पिला कर शुद्ध करें।

२. फक्क रोग से पीड़ित शिशु को सर्व प्रथम कल्याणक घृत अथवा वट फल घृत चढाकर उसके रस वाही स्रोतों को शुद्ध करे और फिर निशोथ से पकाये हुये दूध को पिलाकर विरेचन करावे और तदनन्तर उसका कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर, उसको ब्राह्मी घृत पिलावे तथा एरण्ड शालपर्णी बेल गिरी आदि दश औषधियों के कल्क तथा जौ-बेर और कुलथी के क्वाथ और दही से तिलका तैल पका कर बनाये गये राज तैल की शिशु के शरीर पर मालिश-करावे यदि वातज उपद्रव हो तो उस शिशु को वस्ति स्नेह पान, स्वेद

और उद्वर्तन (उवटन) का प्रयोग करावे–कफ की अधिकता होने पर गाय के दूध में गो मूत्र मिलाकर पिलावें। इस चिकित्सा में घृत और दुग्ध आदि का प्रयोग प्रधान हैं।

पाश्चात्य चिकित्सक भी काडलियर आइल। Cod liver oil और दूध का प्रयोग करते हैं। यदि शिशु को अतिसार होतो उसको दूर करने का सर्व प्रथम उपाय करें और अष्टांग हृदय में लिखा हुआ प्रीणत मोदक तथा दीपन संग्राही मोदक दें।

आहार

शिशु को रास्ना और मुलहठी द्वारा अथवा पृश्निपर्णी (पिठवन) या एरण्ड तथा सौंफ द्वारा अथवा मुनक्का पीलु तथा निशोथ द्वारा क्षीर पाक विधी से पकाया हुआ दूध पिलावें। मूंग का यूष और शाली चावलों का भात खिलावें।

विहार

इस प्रकार की चिकित्सा और आहार के प्रयोग से लाभ होने पर वालकों को पैरों से चलने में सहायता देने के लिये एक तीन पहिये की छोटी गाड़ी (त्रिचक्र क फक्क रथ) के द्वारा शिशु को चलने का अभ्यास नित्य प्रति कराना चाहिये और उसको शुद्ध वायु तथा सूर्य प्रकाश का सेवन कराते रहना चाहिये।

उपसंहार

उपर्युक्त आहार विहार और चिकित्सा द्वारा फक्क (Rictrets) रोग से शिशु मुक्त होकर स्वास्थ्य को लाभ प्राप्त कर सुखी हो जाता है।

एरण्डांशु मती विल्व.............................

..............................कार्यदशवला पृथक ॥

यत्र कोल कुलत्थानां,
प्रस्थं प्रस्थं समावपेत्।
अपां पचेच्चतु र्दोणे,
कपायंपाद शेषितम ॥
तैल प्रस्थं दधि प्रस्थं,
कपायं च पुनः पचेत्।
तत्सिद्धं गोमयेद्यत्नात्,
सर्व था संप्रयोजयेत्॥

(काश्यप संहिता चिकित्सा)

प्रियाल मज्जा मधुक,
मधुलाज सितोपलौः।
अपरतन्यस्य संयोज्य,
प्रीणतो मोदकः शिशोः॥
दीपनो वाल त्रिल्वैला,
शर्करा लाज सक्तुभिः।
संग्राही धात की पुष्य,
शर्करा लाज तर्पणैः॥

अष्टांग हृदय)

त्रिचक्रं फक्क रथकं,
प्राज्ञः शिल्पिक निर्मितम्।
विदध्यात्तेन शनकं,
गृहीतो गति मभ्यसेत्॥
(काश्यप संहिता चिकित्सास्थान)

अग्निपुराण में आयुर्वेद

भारतीय साहित्य में वेदार्थ का सरल से सरल संस्कृत भाषा में अवगमन करने के लिये महर्षि वेद व्यास प्रणीत अष्टादश पुराणों का सर्व प्रथम स्थान है। यद्यपि पुराणों का—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानु चरितं चेति पुराणां पञ्चलक्षणम्॥

इसके अनुसार सृष्टि प्रक्रिया, सृष्टि संहार, राजवंश मन्वन्तर और वंशों का अनुचरित वर्णन करना ही मुख्य ध्येय है। तथापि इनमें राजशास्त्र, नीति शास्त्र, भूगोल, खगोल, भूगर्भ, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, वृक्षायुर्वेद गवायुर्वेद अश्वायुर्वेद हस्त्यायुर्वेद, धनुर्वेद, व्याकरण साहित्यादि विषयों पर भी पूर्ण प्रकाश डाला गया है। इन सब विषयों का संक्षेप में एक जगह ही अन्वाख्यान करने में अग्निपुराण का सर्व प्रमुख स्थान है।

पुराणों को गपोड़ो एवं निरर्थक समझनेवाले भाइयों को एक दफे इस पुराण का अध्ययन एवं मनन करना चाहिये जिससे यह विदित हो जाय कि महर्षि व्यास कितने विषयों के विचक्षण वेत्ता और व्याख्याता थे। यही नहीं किन्तु इस पुराण के मनन से हमें यह भी ज्ञात होगा कि जो विषय आज संस्कृत साहित्य से लुप्तप्राय होगये हैं उन सभी का बीजरूपेण अन्वाख्यान इस पुराण में उपलब्ध है। उनमें से एक विषय "आयुर्वेद का जो वेद-शास्त्र की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये "मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्याच्च तत्प्रामाण्यम्" के अनुसार सर्व प्रमुख साधन है जो केवल चिकित्सा शास्त्र न होकर जीवन निर्माण का उत्कृष्ट साहित्य है और जो अथर्ववेद से उद्गम पाकर पुराणों का सिंचन करता हुआ धन्वन्तरि सुश्रुत वाग्भटादि प्रमुख आचार्यों द्वारा अष्टाङ्ग में परिणत होकर नित नये रूप में जनता के कष्टों को हरने के

लिये अमृतधारा के रूप में प्रवाहित हो रहा है उसका अग्निपुराणोक्त संक्षिप्त-निदर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है।

आयुर्वेद केवल रोगों के प्रतिषेध का ही उपाय नहीं बतलाता, किन्तु आयुर्विज्ञान होने के कारण सर्वदा स्वस्थ और नीरोग रहने का भी उपाय बतलाता है, और वह केवल मनुष्य मात्र तक ही सिमीत नहीं है, किन्तु प्राणी मात्र के आरोग्य रहने के साधनों का विशद् निरूपण करता है। यही कारण है कि अग्नि पुराण में जहाँ मनुष्यों के रोगों के प्रतिषेध के उपाय बतलाये हैं, वहाँ हाथी, घोड़ा, गाय आदि पशुओं एवं वृक्षों के रोगों के शमन का भी आयुर्वेदिक रीति से सफल उपाय निर्दिष्ट किया गया है। अतएव वहाँ सर्वप्रथम आयुर्वेद प्रवर्तक श्री धन्वन्तरि से श्री सुश्रुत ने यह प्रश्न किया है "आयुर्वेदं मम ब्रूहि नराश्वेभ रुगर्दनं, सिद्ध योगान् सिद्ध मन्त्रात् मृतसंजीवनीकरान्" अर्थात् मरे हुए व्यक्तियों को भी जीवनदान देने वाले मनुष्य, घोड़े, हाथियों के रोगों को मर्दन करने वाले आयुर्वेदिक सिद्ध प्रयोग बतलाइये। तदनुसार धन्वन्तरि द्वारा विशुद्ध आयुर्वेदिक ढंग से कई रोगों के सफल प्रयोग बतलाये गये हैं।

रोग विभाग

चरकोक्तमतानुसार "शारीर मानसागन्तु सहजा व्याधयो मताः," कह कर शारीरिक, मानसिक, आगन्तुज सहज इन चार भागों में रोगों का वर्गीकरण किया गया है। ज्वर कुष्ठ आदि रोगों को शारीरिक, क्रोध काम आदि को मानसिक, चोट वगैरह लगने से उत्पन्न होने वाले रोगों को आगन्तुज, एवं भूख बुढ़ापा आदि को सहज रोग की संज्ञा दी गई है।

ज्वर विनाशक उपाय

सर्वप्रथम 'रक्षन्बलं हि ज्वरितं लंघितं भोजयेत्भिषक्' बल की रक्षा करते हुए ज्वर ग्रस्त को लंघन (उपवास) कराने का विधान किया गया है। तदनन्तर "षड्हेतुव्यतिक्रन्तेतिक्तकम् पाययेत्ध्रुवम्" दोष पाचन होने के बाद सातवें दिन षडङ्गपानीय—मोथिया, पित्तपापड़ा, खस, चन्दन, नेत्रवाला सूंठ का शृत पानी पिला कर पाचन करने का उपदेश किया है। जैसा कि चरकादि ग्रन्थों में वर्णित है।

सर्व ज्वर हर प्रयोग

पीपल-पीपलामूल-गिलोय-आमला-हरड़-चित्रक-सूंठ, इनको समभाग लेकर बनाया हुआ क्वाथ सर्व ज्वरान्तक है।

पंच कास हर प्रयोग

देवदारु-बलावासा,
त्रिफला व्योष पद्मकैः
स विडङ्ग सिता मुल्यं तत् चूर्णं पञ्च-कासजित्। देवदारु खरेटी, अडूसा, हरड़-बहेड़ा आमला सोंठ मिरच पीपल, पद्माख वायविडङ्ग इनको समभाग लेकर चूर्ण बनालें, फिर बराबर की चीणी मिलाकर देने से पाँचों प्रकार की खांसी दूर होती है। "नेत्रामय विघातीर्थं त्रिफलां शीलयेत् सदा" नेत्र रोग हटाने के लिए त्रिफला सेवन बड़ा सुन्दर है। "शृङ्गवेरे रसं चैव मधुना सह पाययेत्, अरुचिश्वास कासघ्नं प्रतिश्याय कफान्तकम्" अदरख के रसको शहद के साथ पीने से अरुचि श्वास खांसी प्रतिश्याय (जुखाम) और कफ सम्बन्धी रोग दूर होते हैं, इसी प्रकार हिक्का, छर्दि-तृषा-उन्माद-कुष्ठ--उपदंश--विस्फोट--अम्मवात शोथ, अतिसार-गुल्म-उदर-शूल-गुदभ्रंश-प्रदर-व्रण-सर्पवृश्चिक-श्वा आदि के विष दूर करने के सरल से सरल और छोटे २ सिद्ध प्रयोग दिये गये हैं।

रसायन और वाजिकरण प्रयोग

शर्करा सिन्धुशुंठिभिः कृष्णामधुगुडैस्तथा।
द्वे द्वे खादेपद् हरितक्यौ जीवेन्नवर्ष शतंसुखी "चीणी, सैन्धव, सूंठ, पीपल, शहद और गुड इनके साथ क्रमशः दो हरड़ खाने से मनुष्य सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीवित रहता है। इस सर्व प्रसिद्ध (ऋतु हरीत की) के प्रयोग के अनन्तर कई मृत्युजित् कल्पों का विधान किया गया है। जिसमें एक सरल प्रयोग देखिये "उच्चटा मधुनाकर्ष पयः या मृत्युजिन्नरः" अर्थात् तोला भर उच्चटा (उटंगण) के चूर्ण को शहद के साथ चाटकर फिर दूध पीने से मनुष्य मृत्यु को जीत लेता है। पीपल के चूर्ण का उड़द या गेहूं के आटे में लड्डू बनाकर उसमें से प्रतिदिन एक लड्डू खाकर चीणी मिला हुआ दूध पीये तो "नवश्चटकवद्गच्छेत् दशवम् स्त्रियंध्रुवं"। इस प्रकार वमनविरेचन आदि के भी सरल उपाय बताये गये हैं।

इन सब रोगों के उत्पन्न होने का कारण भी बहुत ही सरल भाषा में "ज्यादा भोजन करना, या बिल्कुल न खाना, वेगों को रोकना, या वेगों का बलात् प्रवाहण" करना मना है। जिससे आज भी प्राच्य प्रतीच्य चिकित्सक सहमत हैं। "अति भोजन तो विप्रः तथा चाभोजनेनच, रोगाहि सर्वेजायन्ते वेगोदीरणधारणैः" इसलिये इनरोगों के निवारण के लिए उपाय बतलाते हुए

पुराण कार ने लिखा है "अन्नेनकुक्षेर्द्वौ-वंशावेकंपानेनपूरयेत्, आश्रयं पवनादीनां तथैकंमवशेपयेत्। व्याधेर्निदानस्य तथा विपरीतमथौपधं, कर्त्तव्यमेतदेवाभ मया सारंप्रकीर्तितम्।" अर्थात् उदर के दो हिस्सों को अन्न से, एक को पानी से पूर्ण करके वायु संचार के लिए एक हिस्से को खाली रखना चाहिये कहने का तात्पर्य यह है, कि पेट को ब्लेडर की तरह ठूंस २ कर नहीं भर लेना चाहिए, जिससे हवा का संचार ही न हो सके। रोग होने पर व्याधि और निदान के विपरीत औपध-अन्न-विहार का उपयोग करना चाहिये। जिससे कि शीघ्र ही रोग मुक्ति हो सके। देश काल दोष दुष्य-प्रकृति-रस-वीर्य-विपाक आदि का भी बहुत ही सुन्दर ढंग से जिसे प्रत्येक साधारण व्यक्ति भी समझ सके इस पुराण के वर्णन किया गया है। कफ किन के प्रकुपित होता है, इसका कितना स्पष्ट वर्णन है "अल्पम्बुपान गुर्वन्न भोजनं मुक्तशायिनम्, श्लेष्माप्रकोपमापाति तथा ये चालसाजनाः। जो व्यक्ति अधिक जल पीते हैं भारी अन्न भोजन करते हैं और भोजन करते ही सो जाते हैं, एवं अधिक आलसी होते हैं, उनके श्लेष्मा (कफ) कुपिता होता है।

वातज पित्तज कफज व्याधियों के जानने का भी सामूहिक रूप से बहुत सुन्दर उपाय बताया गया है। दोप ज्ञानोपाय—"अस्थिभंगः कपायत्व मास्ये शुष्कास्यता तथा, जम्भगं लोमहर्षश्च वातिक व्याधिलक्षणम्"। हड्डी टूटना, मुंह में कसैलापन या मुंह का सूखना जंभाई रोंगटे खड़े होना मेवात जन्य रोगों के लक्षण होते हैं।

"नखनेत्र शिराजान्तु पीतत्वं कटुता मुखे, तृपा दाहोष्मता चैव पित्तव्याधि निदर्शनम्"। नख, नेत्र, शिराओं का पीलापन, मुंह में कटुआपन एवं प्यास, जलन और गर्मी का अधिक होना पित्त-जन्य व्याधि के चिन्ह है।

"आलस्यश्च प्रसेकश्च, गुरुता मधुरा-स्यता, ऊष्ममिलषिता चेतिश्लैश्मिक व्याधि लक्षणम्"। आलस्य, थूकना, भारीपन, मुंहमें मीठास और गरम वस्तुओं की इच्छा होना कफजन्य व्याधि के लक्षण हैं। पाठक देखें सारामाधवनिदान पढ़ने पर भी जिन दोपों का वर्गीकरण करना वैद्य के लिये मुश्किल हो जाता है उसका कितना अच्छा स्पष्टीकरण इस पुराण में हुआ है जिससे सर्वसाधारण भी सुगमता पूर्वक इनका ज्ञान कर सकता है।

जैसा निदान स्पष्ट है वैसे ही चिकित्सा सूत्र भी कितना स्पष्ट हुआ है देखिये। "स्निग्धोष्णमन्नमभ्यङ्ग स्तैल पानादिवातनुत्" स्निग्ध, गर्म अन्न और अभ्यंग एवं तैलपान आदि से वात रोग दूर होते हैं।"

"आज्यं क्षीरं शिताद्यं च चन्द्र रश्म्यादि पितनुत्" घी, दूध, चीणी, आदि सेवन एवं चन्द्र चन्द्रिकापान पित्तरोग को हटाते हैं।

"सक्षौद्रं त्रिफला तैलं व्यायामादि कफायहम्" मधु के साथ त्रिफला सेवन तैल मर्दन, व्यायामादि करने से कफज रोग शान्त होते हैं।

सर्व रोग प्रशान्त्यै च विष्णोध्वनिश्चपूजनम" अन्त में यह लिखकर दैवव्ययाश्रय चिकित्सा का भी निरूपण कर दिया गया है। साथ में दवा लेते हुए रोगी को।"

रसायन मित्रर्षीणां देवाना ममृतं यथा।

सुधेवोतम नामानां भेषज्य मिद मस्तुते। जिस प्रकार ऋषियों के लिए रसायन और देवताओं के लिए अमृत तथा सर्पों के लिए सुधा सिद्धि दायक कल्याणप्रद और अमरत्व प्रदायक है, उसी प्रकार मेरे द्वारा ग्रहण की जाने वाली यह औषध भी हो। ऐसी भावना करनी चाहिए। जिससे आध्यात्मिक तत्त्व की वृद्धि के साथ उत्तम आरोग्य प्राप्त हो सके। इस प्रकार घोड़े हाथी वृक्षों के रोगों के प्रतिकार का उपाय भी इस पुराण में निर्दिष्ट है। लेख कलेवर बढ़ जाने के भय से संक्षिप्त निदर्शन प्रस्तुत किया जाता है। जिससे विद्वजन "स्थालीपुलाक" न्याय से इस पुराण की उपयोगिता जान सकें। और यह भी मालूम हो सके, कि आयुर्वेद शास्त्र कितना विस्तृत और प्राणी मात्र का हितकारक है।

हयायुर्वेद

इसके प्रवर्तक शालिहोत्र हैं। इसमें घोड़ा किस समय लेना चाहिये अच्छे, घोड़े के क्या लक्षण हैं, सारथी को अश्वचालन किस प्रकार करना चाहिये, कैसे उनको शिक्षित करना चाहिये आदि प्रश्नों का उत्तर देने के बाद घोड़ों के रोगों की चिकित्सा बतलाई गई है।

शूलघ्नउपाय

'हिंगु पुष्कर श्लञ्च नागरं साम्ल वेतसम्'।

पिफली सैन्धव युतं शूलघ्नं चोष्ण वारिणा" हींग, पोहकर मूल, सूंठ, अम्लवेत्त, पीपल, सेंधा नमक को गर्म पानी से देने से घोड़े का शूल दूर होता है।

'गो शकृन्मजिका कुष्ठ
रजनी तिल सर्पवैः'।
गवां मूत्रेण पिष्टैश्च मर्दनम् कण्डु नाशनम्" गोवर मजीठ, कूठ, हल्दी तिल सरसों को गो मूत्र से पीस कर लगाने से घोड़े की खाज दूर होती है। इस प्रकार प्रत्येक रोग का सामक उपाय "सप्तमे र देयं अश्वानां लवणं दिने" प्रति सप्ताह लवण दान विधि के साथ साथ प्रत्येक ऋतु में घोड़े को क्या खाने को देना चाहिए, और दिन में कितनी वार पानी पिलाना आदि निर्दिष्ट किया गया है।

गजायुर्वेद

गजायुर्वेद के उपदेष्टा पालकाप्य हैं। इन्हों ने सर्व प्रथम हाथी के शारीरिक लक्षण वताये हैं, जिससे यह ज्ञात हो सके कि कैसे हाथी को घर पर रखना चाहिए और कैसे को नहीं। इसके वाद प्रत्येक रोग की चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

अतिसारघ्न प्रयोग

"वाल विल्वं तथा लोध्रं धानकी मशितयासह अतिसार विनाशार्थं पिंडी भुञ्जीत कुञ्जरः" वेल लोध्र धात की के चूर्ण बनाकर पींडा वनाकर देने से हाथी का अतिसार दूर होता है।

कृमि कोष्ठ

"गवां मूत्रं विडङ्गानि कृमिकोष्टेपु शस्यते" वाय विडिङ्ग को गो मूत्र के साथ पिलाने से हाथी के पेट के कीड़े नष्ट होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक रोगों के निराकरण का उपाय वताकर हाथी को प्रधानतया खाने के लिए चांवल और मध्यम रूप से जौ गेहूँ देना चाहिए। क्यों कि जव और ईख हाथियों के वल वढ़ाने वाले होते हैं। आदि का वर्णन किया गया है।

गवायुर्वेद

गायों का पालन करना राजाओं का परम कर्त्तव्य है। क्यों कि गौयें परम पवित्र मंगल कारिणी और संसार की प्रतिष्ठापिका है। गायों को गोवर मूत्र अलक्ष्मीनाशक एवं दुर्गन्ध विनाशक है। जिसके घर में गायें दुःखित रहती हैं. वह नरक गामी होता है। "यद्गृहे दुःखितागावः स याति नरके नरः" इस प्रकार गौ महात्म्य वर्णन करने के बाद उनके रोगों के निराकरण के उपाय वतलाये हैं।

सींगों के रोग

"शृंगाम पेपु धेनुनां तैलं दद्यात् ससैन्धवं शृंगवरे वलामांसी कल्क सिद्धं समाश्रितं" गायों के सींगों के कोई रोग होने पर अदरख, खरेटी, जटामांसी का

कल्क डालकर तैल विधि से तैल तैयार करें एवं उसमें सैन्धा नमक तथा शहद मिला कर लगाना चाहिए।

भग्न संधान

हड्डी वगैरह टूटने पर लवण मिला कर प्रियंगु का लेप करना चाहिए। समस्त कोष्ट रोग शाखागत रोगों में एवं कास श्वास में सोंठ और नारङ्गी का क्वाथ देना हितकर है।

बैलों को पुष्ट करने का योग

"माषास्तिलाः सगोधूमा पशुक्षीरं घृतं तथा एषां पींडि सलवणा वत्सानां पुष्टिदायिकम्" उड़द, तिल, गेहूँ के आटे में भैंस या अन्य पशु का दूध घी और सैन्धव नमक मिला पिंड़ा बना कर बछड़ों को खिलाने से बछड़े अत्यन्त पुष्ट होते हैं।

दुग्ध वृद्धि उपाय

"अश्व गन्धा स्तिलैः शुक्लै स्तेनगौ क्षीरिणी भवेत्" असगन्ध और सफेद तिल खिलाने से गाय का दूध बढ़ता है। इस प्रकार के कई उपयोगी प्रयोग इस पुराण में वर्जित हैं।

वृक्षायुर्वेद

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल मुंशीजी ने वृक्षारोपण की प्रेरणा आज स्वतन्त्र भारत को दी है। अतः वृक्षों को लगाना और उनकी रक्षा के उपाय जानना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है। इसलिए अग्नि पुराण के इस वृक्षायुर्वेद प्रकरण को—जो त्रयोदश श्लोकों में ही वर्जित है प्रत्येक व्यक्ति को जानना एवं क्रिया रूप में प्रवृत्त करना चाहिए। पाठकों की जानकारी के लिए संक्षिप्त रूप से निर्दिष्ट है।

वगीचे में उत्तर की तरफ प्लक्ष पूर्व की तरफ वट और दक्षिण की तरफ आम तथा पश्चिम की तरफ पीपल का वृक्ष लगाना चाहिए। बीच में फल और पुष्प वाले वृक्ष और लताएं लगानी चाहिए। नीम्ब, अरीण, अशोक, शिरीप, नागकेसर, प्रियुग, केला, जामुन, मोलश्री और अनार के पेड़ों को गर्मी में दोनों समय और सर्दी में एक दिन के बाद और वर्षा ऋतु में जमीन सूख जाने पर जल डालना चाहिए।



युनानी और आयुर्वेद सिद्धान्तों में समन्वय

[ले०—श्री हकीम दलजीतसिंहजी]

चूँकि यूनानी वैद्यकशास्त्र (इल्म तिब) स्वाम्थ्यास्थ्य (सेहत व जवाले सेहत) की दृष्टि से मानव शरीर का निरूपण करता है और प्रत्येक वस्तु का ज्ञान उसी समय पूर्णतया प्राप्त हो सकता है जबकि उन वस्तुओं के कारण का पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लिया जाये, बशर्ते कि उस वस्तु के कारण हों[1]। इसलिये यह आवश्यक है कि यूनानी वैद्यक शास्त्रों में स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य (रोग) के ज्ञान हेतु उनके कारण मालूम किये जांय। चूँकि स्वास्थ्य और रोग उलूम हकी किया[2] में यह सिद्ध हो चुका है कि किसी वस्तु का ज्ञान उसके कारणों और सिद्धान्तों के ज्ञान से ही हो सकता है। बशर्ते कि उनके कारण और सिद्धान्त हों अर्थात उनके कारणों एवम् सिद्धान्तों का ज्ञान सुगम और सम्भव हो।

यदि उसके कारण और सिद्धान्त न हों (उनका ज्ञान सम्भव न हो) तो उसका ज्ञान उसके सहज एवम् आनुषगिक लक्षणों (जाती अवारिज और लवाजिक) के ज्ञान से (किसी हद तक) प्राप्त हो जाता है।

अब यह ज्ञात होना चाहिये कि अस्बाब (कारण) के चार भेद हैं—अस्बाब माद्दिया, अस्बाब फाएलिया, अस्बाब सूरिया और अस्बाब तनानिया (गाइया)। सुतरां स्वास्थ्य एवं रोग के अस्बाब माद्दिया[3] वह पदार्थ है जिनमें स्वास्थ्य एवं रोग अधिष्ठित होते हैं (जिनके साथ स्वास्थ्य

[1]ईश्वर को छोड़कर शेष अन्य समस्त द्रव्यों में कार्य कारण सम्बन्ध होता है अर्थात बिना कारण के कार्य कोई नहीं होता।

[2]वह ज्ञान विज्ञान जो जातियों और धर्मों के बदलने में नहीं बदलते। जैसे दर्शन और वेदान्त हिकमत व फिल्सफा आदि (गिलानी) भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र भी उलूम हकी किया के अन्तर्गत है।

[3]इन चारों अस्बाब को समझने के लिये तख्त या चौकी के उदाहरण पर ध्यान देना चाहिये। लकड़ी और कीलों से चौकी बनती है, बढ़ई बनाता है, चौकी की एक विशेष स्वरूपाकृति होती है और वह किसी विशेष प्रयोजन से बनाई जाती है यथा बैठने के

एवम् रोग सम्बद्ध होते हैं, या जो उनके लिये अधिष्ठान—आश्रय का आधार है) पुनः उनके यह दो उपभेद हैं–मौजूअ करीब और मौजूअ बईद[1] इनमें मौजूअ करीब तो अंग प्रत्यङ्ग और अरवाह है तथा मौजूअ बईद अखलात और इससे भी बईदतर (दूरस्थ) अरकान हैं।

अखलात (चतुर्दोष) और अरकान (चतुर्भूत) उभय संघठन के विचार से अधिष्ठान है। यद्यपि संघठन के साथ ही परिवर्तन भी होता है (अर्थात चतुर्भूत और चतुर्दोष के संयोग से अरवाह (ओज) तथा अङ्ग प्रत्यङ्ग आजा बनते हैं। जो स्वास्थ्य और रोग के मूल आधार हैं। जब वे समवेत होते हैं तब इनमें परिवर्तन भी हो जाता है) फलतः इस प्रकार जो वस्तु स्वास्थ्य और रोग का आधार बनती है, वह संघठन और परिवर्तन के उपरान्त किसी एकत्व (वहदत) तक पहुँचती है। अर्थात इनका अनेकत्व संघठन के उपरान्त किसी एकत्व में परिवर्तन हो जाता है। सुतरां इस स्थल में वह एकत्व इस अनेकत्व पश्चात आता है वह प्रकृति है अथवा स्वरूप या आकृति मिजाज तो परिवर्तन की दृष्टि से है और स्वरूप संघठन की दृष्टि से। उदाहरणतः अनेक और प्रसश्व महा भूत उसी समय अवयव का रूप ग्रहण कर सकते हैं जब कि उनमें एक परिवर्तन होता और एक मिजाज उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार बहु संख्यक अखलात (दोष) अंग बनाने के हेतु जब परस्पर समवेत होते हैं तो उस

लिये। अस्तु लकड़ी और कीलें इसके लिये सबब माद्दी (समवायीकरण) हैं, बढ़ई सबब फाएली (निमित्त कारण) इसका विशेष स्वरूप सबब सूरी और प्रयोजन सबब गाई है। आयुर्वेद में कारण भी तीन माने गये हैं, निमित्त कारण, समवायिक कारण, और असमवायी कारण। इसमें से प्रथम दो के लक्षण आदि ऊपर दिये गये हैं।

[1] मौजूअ करीब और मौजूअ बईद का अर्थ यह है कि स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य का आधार शैख के मत से वस्तुतः आजा (अवयव) और अरवाह (ओज) है। सत्य तो यह है कि स्वस्थ व रोगी तो यही होते हैं। रहे अखलात (दोष) और अरकान (महाभूत) तो वे अवयव हैं और ओज में परिणत हो चुकने के बाद ही स्वास्थ वा रोगी होते हैं। अर्थात स्वास्थ्य और रोग प्रत्यक्षतः आजा और अरवाह के गुण हैं। और अप्रत्यक्षतः महाभूत और दोष अखलात के। इनमें से प्रथम को संस्कृत में सन्निकृष्ट और द्वितीय को विप्रकृष्ट कहना चाहिये।

समय भी एक मिज़ाज बन जाता है और उनके अपने मिज़ाज टूट जाते हैं। अतः इन विभिन्न महा भूतों और विविध दोषों के स्वरूप एवम् आकृति वस्तुतः भिन्न भिन्न हैं। जब ये परस्पर समवेत होते हैं और मिलकर अंगों की रचना करते हैं तब उनका स्वरूप नष्ट हो जाता है और अङ्ग का एक नवीन स्वरूप प्रगट हो जाता है। अनेकत्व के उपरान्त एकत्व के आविर्भाव का यही अर्थ है। क्यों कि यह प्रगट है कि संघटन एवं परिवर्तन के उपरान्त समस्त महाभूतों और दोषों के गुण, प्रकृति और उन सबके स्वरूप विनष्ट हो जाते हैं तथा अवयव की एक विशेष प्रकृति और उसकी एक विशेष स्वरूपाकृति बन जाती है। उसी समय यह अंग (उज़्व) कहला सकता है और स्वास्थ्य एवं रोग का अधिष्ठान बन सकता है।

(कबीरुद्दीन)

स्वास्थ्य एवं रोग के असबाब फाएलिया (निमित कारण) वह हैं जो मानव शरीर के भीतर परिवर्तन करते या उनकी रक्षा करते हैं।[1]

वह भिन्न हैं—(१) वायु और वह जो उससे निकट है (अर्थात ऋतुपरिवर्तन) (२) मतअम (खाद्यान्न), मिवाह (बल) और मशारिब (सुन्यान्य पेय पदार्थ) और वह जो इनसे निकट है (अर्थात् अन्य फुटकर द्रव्य) (३) इस्तेपूराग (संशोधन) व एह तिवास (स्तंभन) देश (बुलदान) स्थान (मलाकिन) और वह फुटकर वस्तुयें जो इनसे निकट हैं। (४) कायिक और मानसिक कार्याकार्य (हरकात व सकूनात बदनियाबे नफ़्सनिया) (५) निद्रा और प्रजागरण, (६) आयु के परिवर्तन और भेद (७) इसी प्रकार लिंग जिन्स (पुलिंग और स्त्रीलिंग आदि के) परिवर्तन हैं (८) पेशा (व्यवसाय सेनायात) की विविधता,

[1] आयुर्वेद में लिखा है कि—दोषन्दूष्यान्देश कलौ सात्म्य सत्वं बलंय वयः। विकृति भेपजं वह्निमाहारं च विशेपतः। निरीक्ष्य मतिमात्वैर्धश्चिकित्सां कर्तुमुद्यतः। रोगा रोग के कारण आयुर्वेद में यह लिखा है—कालबुद्धिनिद्रयार्थानां योगो मिथ्या न चाति च द्वाक्षयाणांत्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः। (चरक) कालार्थकर्मणां योगो ही नमिथ्यात्तिमात्रकः। सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैक कारणम्। वाग्भट सू० ८६) अर्थे रसात्म्यैः सयोगः कालः कर्म च दुष्कृतम्। हीनासि मिथ्यायोगेन भिधेपे तत्पुनस्त्रिधा। वाग्भट सू० अ० १२—३५), तेपां ससोधन सशंभताहाराचाराः सम्यक प्रयुक्ता निग्नह हेतवः। (सु० सू० अ० १—२५)

(६) विविध स्वभाव, (१०) वह बाह्य वस्तुयें जो शरीर से मिलती तथा उससे स्पर्श करती हैं चाहे स्वभाव विरुद्ध न हों (उदाहरणतः कोई हितकर लेप लगाना) या स्वभाव विरुद्ध हो (उदाहरणतः अग्नि से जलना)।

स्वास्थ्य और रोग के अस्वाब-सूरिया तीन हैं—(१) मिजाजात (प्रकृतियाँ) (२) वह कुवा (बल) जो मिजाज के पश्चात् उद्भूत (प्रगट) होते हैं। (३) संगठन (तराकीब) अर्थात् सख्त और हय्यत (कुल्लियात कानून)

बाहतः सेहत[1] (स्वास्थ्य) उसी समय पाई जा सकती है जबकि प्रकृति, बल, और संगठन तीनों यथा-यथ हों। इसी प्रकार रोग उसी समय हो सकता है जबकि उनमें से कोई एक अथवा तीनों विकृत हों। ह० मो० (कबीरुद्दीन)

अस्बावे तमामिया (गाइया) अफ्आल (शरीर क्रियाकर्म) है और यह प्रगट है कि अफआल के ज्ञानार्थ कुव्वतों (बलों) और रूहों का जानना जो बलों के वाहन (सवारी) हैं। कितना आवश्यकीय है जैसा कि हम शीघ्र ही वर्णन करेंगे।

यूनानी वैद्यकशास्त्र के यह उक्त प्रतिवाद्य इस दृष्टि से है कि वह स्वास्थ्य एवं रोग के विचारानुसार मानवशरीर का निरूपण करते हैं। (यह कि शरीर में किस प्रकार स्वस्थ एवं रोगी होता है) रही यह बात कि उनका प्रयोजन क्या है? स्वास्थ्य रक्षण और व्याधि परिमोक्ष तो इस विचार से भी इन उभय प्रयोजनों के अस्बाब एवं आलात (उपकरण) के अनुसार कतिपय अन्यान्य प्रतिपाद्य हैं। सुतरां इस प्रयोधन के उपकरण यह हैं:—(१) खाद्य पेय विधि। (२) सात्म्य वायु का ग्रहण। (३) चेष्टा अचेष्टा (हर्कत व सकून)। (४) औषधोपचार। (५) हस्तकर्म (इलाज) ये समस्त उपर्युक्त विषय हकीमों को इन तीन भेदों के विचार से बतलाये जाते हैं। (१) स्वास्थ्य के विचारानुकूल। (२) अस्वास्थ व रोगियों के विचार से और। (३) इसमें मध्य वालों के विचार से जिनके विषय में हम आगे वर्णन करेंगे और

[1] स्वास्थ्य (सेहत) और व्याधि के लक्षण आयुर्वेद के मत से—रोगस्तुदोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता "(अ० हृ० सू० १—२०)। विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते। सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च। समदोषः समाग्निश्च समधातुमल क्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते" (सु० सू० १५ अ०—४४)

वर्णन करेंगे कि क्योंकर लोगों की गणना ऐसे लोगों के मध्य में की गई है जिनके बीच वास्तव में कोई सम्बन्ध निकल नहीं सकता (वस्तुतः स्वास्थ और रोग के बीच कोई तीसरी वस्तु निकल नहीं सकती)।

(कुल्लियात कानून)

वक्तव्य

इस विस्तार एवं स्पष्टीकरण के पश्चात् शौखुर्रईस ने यूनानी वैद्यक के समस्त प्रतिपाद्यों की निम्न पंक्तियों में समासरूप में एकत्र संग्रहीत कर दिया है। (ह० मो० कबीरुद्दीन)

"इन विषयों का विस्तृत एवं विशद् वर्णन कर चुकने के उपरान्त अधुना हम उन सबको संक्षेप में बतलाना चाहता है कि यूनानी वैद्यक में निम्न विषयों का प्रतिपादन किया जाता है। अरकान (महाभूत) मिजाजात (प्रकृतियां), अखलात (दोष) आजाए बसीसा मुफरेया (अभिश्रावव्यव, आज्ञाये मुरकूषा (समीश्रावयव) अरवाह (प्राण और ओज) कुवाए तबइय्या, हैवानिय्या और न नफ्सा नियसा (बल) अफआल (शरीर क्रिया कर्म) स्वास्थ्यास्वास्थ्य एवं तन्मध्यवर्ती (हालत सालसा) अवस्था दृष्टया शारीरिक अवस्था और उनके अधोलिखित असबाब (कारण)—अर्थात् माक्ल व मशारिब (खाद्य एवं पेय वस्तुयें), जल, देश, स्थान, संशोधन एवं स्तंभन, व्यवसाय (पेशे) स्वभाव कायिक और मानसिक कार्य अकार्य, आयु, लिंग, शरीर पर आने वाले अन्य बाह्य विषय (उमूर गरीबा) स्वास्थ्य संरक्षण और प्रत्येक व्याधि के विचारणार्थ खाद्य पेय की विधि वायु चेष्टा अचेष्टा का नियमन, औषध सेवन और शल्य कर्म से लाभ उठाना। इन विषयों में से कतिपय तो ऐसे हैं जिनका हकीम को हकीम होने के नाते केवल विचार से शास्त्रोक्तज्ञान प्राप्त करना उनके लिये आवश्यक है। उसे (हकीम तबीब होने के नाते) जान लेना चाहिये कि उक्त विषय उसके प्रति पाद्यों में से हैं। तथा भौतिक शास्त्र से तो लेली गई है। उनकी मीमांसा अपेक्षित नहीं है। पर वस्तुतः भौतिक शास्त्र की स्वकीय समस्या होने के नाते उक्त शास्त्र में तर्क और युक्ति से इसके सिद्ध किया जाता है। इसके विपरीत कतिपय विषय ऐसे हैं जो वैद्यक में तर्क एवं युक्ति से सिद्ध किये जाते हैं।

अतः उनमें से जो विषय सिद्धान्त (मबादी—मुसल्लमात) के रूप में है हकीम का यह कर्तव्य है कि उनके अस्तित्व को विना तर्क एवं युक्ति के अनुकरण स्वरूप

अन्यान्य शास्त्रों से स्वीकार कर लें क्योंकि उपशास्त्रों (उलूम जुजइय्या)[1] के सिद्धान्त सदैव विना तक एवं युक्ति के स्वीकार कर लिये जाते हैं। तथा प्रधान शास्त्रों में उनको तर्क एवं युक्ति से सिद्ध किया जाता है।[2]

यहां तक कि समस्त शास्त्रों के सिद्धान्त दर्शन और वेदान्त (फिल्सफए अला[3] अलूहयात) में जिसको इल्ममा बादुल तबीइत कहते हैं। समाप्त होता है। यदि को बड़ा हकीम (जैसे जालीनूस) अनासिर (महाभूत) मिजाज (प्रकृति) और इसी प्रकार के अन्यान्य विषयों को जो भौतिक शास्त्र से सिद्धान्त के रूप में ग्रहण किये गये हैं, तर्क एवं युक्ति से सिद्ध करना आरम्भ करदे तो समझना चाहिये कि वह दो भूलें कर रहा हैं। एक तो वह वैद्यक में उससे बहार के विषयों को लारहा है। दूसरे यह कि वह समझ रहा है कि उसने वैद्यक में से कुछ वर्णन किया यद्यपि उसने कुछ भी वर्णन नहीं किया (क्योंकि यह वैद्यक का विषय भी नहीं)।

(कुल्लियात कानून)

---

[1]तिब (वैद्यक) भौतिक शास्त्र की एक शाखा है क्योंकि भौतिक शास्त्र में सामान्य ग्रन्थों का निरूपण होता है और वैद्यक शास्त्र में केवल मानव शरीर का। इसलिये यह भौतिक शास्त्र की अपेक्षया छोटा शास्त्र उपशास्त्र है। प्राचीन परिभाषा की दृष्टि से इल्म केमिया (केमिस्ट्री-रसायन) भी भौतिकशास्त्र के अन्तर्भूत है। अस्तु प्राचीन भौतिकशास्त्र में अनासिर और अखलात आदि सभी का वर्णन मिलता है।

[2]आयुर्वेद का आकलन करने के लिये वेदान्त, सांख्य वैशेषिक ज्योतिष, व्याकरणादि अन्यान्य सम्बन्धित शास्त्रों के मौलिक सिद्धान्तों से प्रतिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। यथा—अन्यशास्त्रापयन्ननामे चार्थानाभिहोपनीतानामर्थ वशान्तेषांत द्विधेम्द एव व्याख्यानमनुश्रोतव्यं कस्मात्? नह्येकस्मिन् शास्त्रे शक्यः सर्वशास्त्राणा-मवबोधः कर्तुम। भवन्ति चात्र-एकं शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः। (सु० सू० ४ आ० ५—६), प्रत्येक शास्त्र में अन्य कई शास्त्रों के सिद्धान्तों और तत्वों का सम्बन्ध आता है। कोई भी शास्त्र स्वयं पूर्ण नहीं है। न प्रत्येक शास्त्र में अन्य शास्त्रो के सिद्धान्तों का विस्तार से विवरण किया जा सकता है। यही कारण है कि आयुर्वेद इन शास्त्रों के केवल आवश्यक सम्भवतिका सिद्धान्त ही दिये हैं।

[3]वेदान्त या दर्शनशास्त्र को अँग्रेजी में इसे मेटाफिजिक्स (Metaphysics) और अरबी में इल्म या बदुल तबीअत भी कहते हैं।

वक्तव्य

इस उपोद्घात के पश्चात् वे वैद्यक के उन विषयों का विशद वर्णन करते हैं जो अन्यान्य शास्त्रों से ग्रहण करके वैद्यक शास्त्र में लिखे जाते हैं, जैसे अनासिर (महाभूत) मिजाज (प्रकृति) और अखल्लात (दोष) का वर्णन भौतिक एवं रसायन शास्त्र से ग्रहण किया जाता है।

(हृ० मो० कबीरुद्दीन)

अस्तु जिन विषयों के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेना और जिनका अस्तित्व (अन्यान्य मूल शास्त्रों से ग्रहण करके) तर्क एवं युक्ति के विना स्वीकार कर लेना वैद्यक के लिये अनिवार्य है। उनमें से कुछ ये हैं—(१) अरकान (महाभूत) का अस्तित्व और उनकी संख्या (२) मिजाजात (प्रकृतियाँ) का अस्तित्व और उनकी संख्या, (३) अखलात (दोषों का अस्तित्व और उनकी संख्या एवं गुण (४) कुवा (बल) का अस्तित्व, उनकी संख्या और उनके स्थान। (५) अरवाह का अस्तित्व उनकी संख्या और उनके स्थान (६) दर्शन की यह समस्या स्वीकार करलेना कि किसी अवस्था का अवस्थान्तर प्राप्त करना और उसका स्थिर रहना किसी कारण के विना असम्भव है। तथा यह कि कारण कितने है (उसके कितने भेद हैं)।

रहे आजा (शरीर के अंग प्रत्यंग) और उनके अफआल (कर्म) तो वह ज्ञानेन्द्रियों (प्रत्यक्ष) और शवच्छेदन शस्त्र कर्म (तश्रीह-लाश-चीरने) से मालुम किये जांय (अर्थात रुगो की स्वरूपाकृति, स्थिति, प्रभाव संख्या प्रत्यक्ष हिस्स तथा शवच्छेदन-तश्रीह से मालुम हो सकते हैं, पुनः यही उनके गुण कर्म के ज्ञान का साधन बन जाते हैं)।[1]

(कुल्लियात कानून)

वक्तव्य

शैख के वचन इस स्थान पर कितने स्पष्ट एवं विशदहैं कि "अगं-प्रत्यगं और उनके कर्म का ज्ञान प्रत्यक्ष एवं शवच्छेदन (हिस्स व तश्रीह-मुशाहिदा व मुआईना और शवच्छेदन) करके प्राप्त किया जाय।"

[1] आयुर्वेद में भी प्रत्यक्ष ज्ञान का काफी महत्व स्वीकार किया गया है—शरीरेचैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः। दृष्टश्रुताभ्यां सन्देह मवापोह्या चरेत क्रियाः। (सु० सू० ५ अ—६३), शरीरं सर्वथा सर्व सर्वदा वेद यो भिषक्। आयुर्वेदं स कात्स्र्न्येन वेद लोकसुख प्रदम्। (च० शा० ६) शरीर संख्या यो वेद सर्वपयवशो भिषके तद् ज्ञान निमित्ते स मोहेत न युज्यते। (शरीर ७)

अब शैखुर्रईस यूनानी वैद्यक के इन मूल विषयों (खास मसाइल तिब्बिया) का उल्लेख करते हैं जिनको तर्क एवं युक्ति से सिद्ध एवं सुरुञ्जित करके विस्तार पूर्वक यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थों में वर्णन करने की आवश्यकता है। ये अन्य शास्त्रों के विषय नहीं हैं जिनको सिद्धान्त के रूप में प्रयोजनानुसार संक्षेप में ग्रहण कर लिया जाता है अतः इन वर्णनों में किसी प्रकार की सकीर्णता उचित नहीं है।

(ह० मौ० कबीरुद्दीन)

अस्तु शैख कहते हैं:—जिन विषयों का जानना और जिनको वैद्यक में तर्क एवं बुद्धि से सिद्ध करना आवश्यक है वह अमराज (रोग) उनके अस्बाब जुजइय्या ? और उनके अलामात (लक्षण) है। तथा यह कि व्याधियों का निवारण किस प्रकार किया जाय एवं स्वास्थ संरक्षण किस प्रकार हो सकता है ये विषय ऐसे हैं कि उनमें से जिनका अस्तित्व स्पष्ट एवं निश्चित न हो उनको समय प्रमाण-वर्णनारूद्ध तर्क एवं युक्ति से विस्तारपूर्वक सिद्ध करना आवश्यक है। (कुल्लियात-कानून)

उपर्युक्त विशेख के विशद विवरण से हमें यूनानी वैद्यक के समस्त प्रतिपाद्यों एवं सिद्धान्तों का संक्षेप में ज्ञान हो गया। वहां इस विषय का भी ज्ञान हुआ कि इन प्राचीन विद्वानों के पास प्रत्यक्ष ज्ञानार्थ उस पारम्भिक सरल युगों में जो २ उपकरण अपनी शक्ति पर उपलब्ध था उनसे काम लेने में इन जमाकशों ने कोई बात उठा रखी।

रहा कतिपय सिद्धान्तों का बदल जाना और विभिन्न अन्वेषकों का विभिन्न काल में विभिन्न निष्कर्ष तक पहुंचना, तो यह एक ऐसा अबाध नियम है जिसमें कभी भी परिवर्तन नहीं हो सकता न पहले कभी हुआ और न भविष्य में कभी होगा।

साइन्स के जो सिद्धान्त सूक्ष्मदर्शक की सूक्ष्मदर्शिता और रासायनिक प्रयोगों के उपरान्त उपस्थित किये जा रहे हैं और जिनको संरक्षित पट्टिका के ममिट्टाक्षर एवं ब्राह्मण वाक्य समझा जाता है। क्या कोई साइन्टिस्ट प्रतिज्ञा कर सकता है कि कल ही उसकी यही प्रतिष्ठा एवं श्रेष्ठता प्रतिष्ठित रहेगी और भविष्य में कभी भी उसकी मिट्टी पलीद न होगी ?

'अस्बाब कुल्लिया (उमूमी अस्बाब) का उल्लेख दर्शन शास्त्र में होता है। जैसे—यह कि असबाब (कारण) के दो भेद हैं—ताम्मा और नाकिस। पुनः अस्बाब नाकिसा के चार उपभेद हैं—फाएलिया, माद्दिया सूरिया और गाइया।

यदि होगी और प्रबल विश्वास है कि अवश्य होगी तो क्या कोई सत्यवक्ता यह कह सकता है कि वर्तमान साईंस ने प्रत्यक्ष अवलोकन से काम नहीं किया है। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र उसके हाथों में नहीं है और प्राकृतिक अध्ययन के समय उनके नेत्र निमीलित है?

पर यदि यह सत्य है कि प्रत्यक्ष के बाद भी अवलोकन करने वालों से भूल होना सम्भव है तो इस सामान्य नियम से प्राचीन विद्वान किस प्रकार बच सकता है?

यह मानना पड़ेगा कि यद्यपि उन्होंने अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार प्रकृति के नियमों का अध्ययन एवं निरीक्षण किया और प्रत्यक्ष (प्रयोग एवं अनुभव) के बाद कुछ निष्कर्ष स्थिर किये, किन्तु तत्पश्चात के प्रयोगों तथा अनुभवों से उनके कतिपया अनुभव मिथ्या प्रमाणित हो गये या मिथ्या समझे गये।

मैंने मिथ्या समझे गये इस लिये लिखा है कि संभव है (और ऐसा अनेक बार हो रहा है कि कुछ सिद्धान्त एक काल में असत्य समझे जांय परन्तु कुछ कालोपरान्त वे ही असत्य सिद्धान्त सत्यता के माप दण्ड पर खरे उतरें। (बुर्हान)

वक्तव्य

प्रस्तुत लेख में यूनानी तथा आयुर्वेद के केवल मूलभूत सिद्धान्तों का ही तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इनके प्रत्येक सिद्धान्त के विवरण के लिये मेरे लिखे यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान के समान प्रत्येक तुलनालन विषय पर अलग २ ग्रन्थ लिखे जाने चाहियें। मैंने जहाँ तक इन उभद शास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया है उससे मैं इस निश्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि उनमें परस्पर केवल आंशिक भेद है। उनमें से प्रत्येक में अपने अपने कुछ विशेष सिद्धान्तादि भी हैं। फिर भी इन दोनों में अधिकांश साम्य है। दोनो की विचारसरणी एवं मूल सिद्धान्तों में बहुत कुछ समानता है। अस्तु- यदि यूनानी प्रामाण्य ग्रन्थ हिन्दी में हो जांय और इन उभद शास्त्रों का एक साथ तुलनात्मक अध्ययन और अभ्यास का अवसर प्राप्त हो तो इनके मेल से एक उत्तम चिकित्सा पद्धति की भिति निर्माण की जा सकती है।

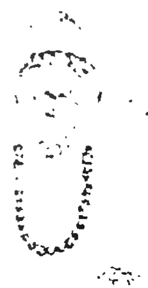




पू० श्री पं० भगवद्दत्तजी त्रिवेदी साहित्य और [illegible] आचार्य
जिनकी सन्निधि में
वैद्य श्री गंगासहायजी ने संस्कृत शिक्षा प्राप्त की



शिष्य राधावल्लभ शर्मा
डीडवाना।



भक्त देवीलाल शर्मा
डीडवाना।

आयुर्वेद की व्यापकता

[ले०—श्री नारायणभरोसे शास्त्री, फरुखाबाद]

विश्व के प्रांगण में जब अज्ञानता और असभ्यता का अन्धकार छाया हुआ था—उस समय हमारे भारत में सभ्यता तथा वैज्ञानिकता चरम सीमा तक पहुंची हुयी थी और आयुर्वेद ही भारत का चिकित्सा शास्त्र था। भारत तथा भारतीयों ने ही सभ्यता का दीपक लेकर विश्व को आलोक प्रदान किया था। उन्होंने ही चिकित्सा शास्त्र का प्रचार विश्व भर में किया। नालन्दा तथा तक्षशिला के विश्व विद्यालयों में चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा लेने अरब मिश्र, तथा अन्य देशों के छात्र आया करते थे। विश्व के अनेक सम्राट भारत से अनेक चिकित्सकों को स्वदेश ले गये और अपनी भाषाओं में उनके द्वारा आयुर्वेद शास्त्र का अनुवाद कराया। भारत के राजनैतिक पतन के दुर्भाग्य स्वरूप हमारे चिकित्सा विज्ञान का भी पतन हो गया। आयुर्वेद का ७५० वर्षों तक यवनों ने तथा २५० वर्षों तक अंग्रेजों ने पतन किया और अपनी विचार धारा को हमें बल पूर्वक स्वीकार कराया। इतना होते हुये भी भारतीय चिकित्सा विज्ञान आज भी सूर्य की भांति देदिप्यमान है। और अपने गुणों से विश्व को भी प्रभावित करने लगा है। विदेशी लोग आयुर्वेद की वैज्ञानिकता को भले ही चुनौती दें किन्तु एक हजार वर्ष तक निरन्तर आक्रमण सहकर भी उसकी विद्यमानता उसकी वैज्ञानिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

एकता से अनेकता की ओर जाना विज्ञान और अनेकता से एकता की ओर आना ज्ञान कहलाता है। आयुर्वेद विज्ञान ही नहीं अपितु यह विज्ञान तथा ज्ञान दोनों ही का भण्डार है। रोगी को केवल रोग से मुक्त करने के उपाय—विश्व के सभी चिकित्सा प्रणालियों के आदि और स्तम्भ हैं, जबकि रोग को दूर करने के साथ रोग के पैदा ही न होने देने के साधन आयुर्वेद बताता है। अन्य चिकित्सा प्रणालियों में कहीं तो केवल हेतु के विपरीत अथवा किसी में व्याधि के विपरीत ही चिकित्सा की जाती है जहां कहीं तो केवल हेतु विपरीत, व्याधि विपरीत, हेतु, व्याधि विपरीत औषधि, अन्न विहार इत्यादि अट्ठारह प्रकार की चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

जितनी शूक्ष्मता से आयुर्वेद की रचना की गई है उतनी गहराई तक तो पहुँचना कठिन है, उसके शाब्दिक अर्थ ज्ञान के लिये भी सूक्ष्म बुद्धिमता की आवश्यकता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति के साधन आयुर्वेद में ही वर्णित है। भारतीय डाक्टर जोकि विदेशी ज्ञान तथा उनके देन पर फूले नहीं समाते सम्भवतः यह भूल जाते हैं कि उनके ज्ञान तथा देन की मूलभीत्ति आयुर्वेद ही है। विदेशी औषधियों के दान पर फूलने वाले भारतीय डाक्टर यह नहीं सोचते कि उधार के माल पर कब तक साहूकारी चल सकती है? उन्हें यह विचार करना चाहिये कि आयुर्वेद को यवन और ब्रिटिश हुकूमतें न मिटा सकी और वे स्वयं ही मिट गई, तो विदेश शक्ति प्राप्त कुछ व्यक्ति किस प्रकार मिटा सकेंगे? भारतीय डाक्टरों को तो अब भारतीय चिकित्सा विज्ञान पर भरोसा करना चाहिये। भारत ने जब राजनैतिक दासता के बन्धन तोड़ दिये तो वह चिकित्सा के क्षेत्र में कब तक परावलम्बि रह सकता है? वैसे लेने और देने की नीति हम हमेशा से अपनाते आये हैं। विदेशों की अच्छी और आवश्यक बातें यदि वे अनुकूल हैं तो लेनें में हमें कोई एतराज नहीं। सागर में नदियों का विलय होता ही है, परन्तु नदियों में सागर का विलय असम्भव है। हम अपने में समावेश कर सकते हैं पर दूसरे समर्पण कदापि नहीं कर सकते। अब विदेशियों ने भी हमारे चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन कर अपनी शुभ सम्मतियाँ देना आरम्भ किया है। यह शुभ लक्षण हैं।

आयुर्वेद सूत्रों में लिखा है—जिसको समझने और समझाने के लिये विशेष बुद्धि की आवश्यकता है। आज भी सूत्रवत अनेक शास्त्र लिखे और पढ़े जाते हैं—आधुनिक रसायन शास्त्र (Chemistry) रेखागणित (Geometry) इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। पानी के लिये H = 0. पारद के लिए mg. इत्यादि लिखना इसके उदाहरण हैं। प्राचीन समय में बुद्धि कुशाग्र थी। इसके लिये सूत्रों का बाहुल्य और व्याख्या की कमी थी आज युग में इसके विपरीत व्याख्या की अधिकता तथा सूत्रों का कम प्रयोग है। आयुर्वेद के आ० विभाग हैं—काम चि०, बाल, चि०, ग्रह, उर्ध्वांगिं चि० शल्य चि०, ग्रन्द्रा चि०, अपरा चि०, और वृश्य चि० ऐसा विभाजन विश्व के किसी शास्त्र में

नहीं है। रोगी की औषधित्यवस्था करने के लिये शेष, दुत्यं, थलं, कालं, अनलं, वय निर्णय करने के पश्चात व्यवस्था पत्र लिखने का निर्देश किया गया है। आयु की व्याख्या केवल आयुर्वेद शास्त्र ही बताता है। इसी प्रकार की अनेक मौलिकताओं से आयुर्वेद में अध्याय भरे पड़े हैं। समय की गति ने इसको कुछ धूमिल कर दिया है, जोकि केवल झाड पोंछ देने के पश्चात रत्न की भांति प्रकाशमान हो जायगा।

आयुर्वेद में शल्य शास्त्र का भी पर्याप्त वर्णन है। विभिन्न भारतीय राजनैतिक क्रान्तियों के दुष्परिणाम स्वरूप इसका प्रचार तथा व्यवहार कम हो गया। पथरी का अपरंशन, मलीअस्थि को निकाल कर पशु की अस्ती को लगाना। इत्यादि क्रियायें हजारों वर्षों पूर्व हमारे यहां काम में लाई जाती थी। विदेशों में विख्यात नाशाल्धान विधि (इण्डियन मेथड) के नाम से जो प्रचलित है वह हमारे ही शास्त्रों की देन है। शल्य शास्त्र एक कला है विज्ञान नही (Surgery is art not a science) जिस विषय पर कि विदेशों ने विशेष उन्नति की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आयुर्वेदिक चिकित्सा के अतिरिक्त शल्य कला से भी परि पूर्ण है।

विश्व-कल्याण भारत का हमेशा से लक्ष्य रहा है। सारा विश्व भारतीय का घर तथा उसके निवासी उसके बान्धव हैं, फिर उनके कल्याण की भावना तो स्वयं सिद्ध है। आयुर्वेद के सिद्धान्त विश्व के प्रत्येक कोने में खरे उतरते हैं। एक समय था जब कि आयुर्वेद विश्व व्याधि और विश्व प्रिय था परन्तु आज वह दुर्भाग्यवश बहुत पिछड़ गया है। आज कितनी भी चिकित्सा प्रणालियां विश्व में प्रचलित हैं वह सब आयुर्वेद की शाखाओं उपशाखाओं के रूप मात्र हैं। विश्व चिकित्सा विज्ञान का जनक आयुर्वेद ही है। इसमें छः प्रकार की ऋतुयें, दश दिशायें, तीन देश, छः काल, तथा मानव की सात प्रकार की प्रकृति, और उनके अनुकूल चिकित्साओं का वर्णन है। इसी से विश्व के प्रत्येक कोने में आयुर्वेद की उपादेयता सिद्ध है। इसी कारण इसे विश्व-व्यापि कहा गया है। चीन, लमां, ब्रह्मा, अरब मिश्र आदि की चिकित्सा प्रणालियां यहीं से अध्ययन करने वाले विख्यात स्नातकों के द्वारा ही आरम्भ हुयी थी।

वर्तमान समय की आवश्यकता है कि आयुर्वेद का पुनर्शोधन किया जाय। बहुत से प्रकाशित आयुर्वेद ग्रन्थ प्रकाशित किये जाय। देश के प्रत्येक राज्य में सर्वांग पूर्ण आयुर्वेदिक कालेज, चिकित्सालय, पुस्तकालय, फार्मेसी, रजीस्ट्रेशन बोर्ड तथा प्रेस की स्थापना की जानी चाहिये। विशेष रोगों के सेनीटोरियम स्थापत हों। प्रत्येक नगर, उपनगर तथा ग्राम में राज्य संचालित औषधालय स्थापित हों। प्रत्येक राज्य में एक केंद्रिय आयुर्वेद कौंसिल की स्थापना की जावे। वैद्यों का भी कर्तव्य है कि आयुर्वेद को ऊँचा उठाने के लिये तन, मन धन से कार्य करें। उच्च वर्ग के व्यक्ति भी अपने बच्चों को दूसरी शिक्षा दिलाके दूसरा ज्ञान उच्च कोटि का होना चाहिये। आयुर्वेद के औषधालय सुन्दर, स्वच्छ और अच्छी औषधियों से परिपूर्ण होने चाहियें। वैद्यों की वैश भूषा और व्यवहार में भी आकर्षण होना चाहिए। देश में एक केन्द्रिय आयुर्वेद विभाग होना चाहिये जो उच्चतम अध्ययन की सुविधा एवं अनुसंधान के साधन उपलब्ध करा सके। मेरा यह अटल विश्वास है कि यदि उपरि लिखित बातों को कार्य रूप में परिणित किया जावे तो पच्चीस साल में ही आयुर्वेद विश्वा व्यादि बन सकता है। प्रसन्नता की बात है कि इस ओर प्राणाचार्य गंगासहाय का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने नवीन उपकरणों से परिपूर्ण (इण्डियन ड्रग लेबोरेट्री) की स्थापना की और नवीनतम औषधियों का निर्माण आरम्भ किया। यह उदाहरण अन्य वैद्यों में उत्साह का संचार करेगा। ऐसा मेरा विश्वास है। आज अनुसंधान की विशेष आवश्यकता है। मुझे रत्न उपरत्न चिकित्सा में विशेष रुचि थी। फलतः मैंने रत्न उपरत्नादि का और तद्विषय साहित्य का बड़ा संग्रह किया। मैं तीस वर्षों से इसकी खोज बीन करते हुये बहुत सी उत्तम निर्विकार औषधियाँ बन सकी हैं। जिनके द्वारा प्रमुख रोगों की चिकित्सा में पर्याप्त सफलता मिलती जा रही है। उदाहरणार्थ—यकृत और प्लीहा वृद्धि, गुल्म तथा इसी प्रकार की शारीरिक वृद्धि और उनके उपद्रवों की सफल चिकित्सा की औषधियाँ खोज निकाली हैं शल्य कर्म के अतिरिक्त औषधि चिकित्सा से ये रोग सफलता पूर्वक ठीक हो सकते हैं। समय मिला तो इस विषय पर मौलिक ग्रन्थ के रूप में हित कर साहित्य प्रकाशित किया जा सकेगा। रत्न, उपरत्नादि के संग्रह पर देहरादून में

सन १६४६ में हुये वैद्य सम्मेलन में मुझे प्रथम श्रेणी का प्रमाण पत्र देकर उत्साहित किया था। इसी प्रकार वैद्य लोग एक एक विषय को लेकर खोज करें तो बड़ी उन्नति हो सकती है।

आज प्रचार का युग है। आयुर्वेदिक जगत ने इस ओर दृष्टि-पात अवश्य किया है, किन्तु आयुर्वेद के विज्ञान की विशालता को देखते हुए वह नहीं के बराबर है। इसके प्रचार के लिये विदेशों में योग्य प्रचारक भेजे जाने चाहियें। विदेशी भाषाओं में आयुर्वेद की खूबियों का प्रचार किया जाना आवश्यक है। रेडियो द्वारा विभिन्न भाषाओं में आयुर्वेदिक व्याख्यान माला प्रसारित होनी चाहिये। सिनेमा के द्वारा आयुर्वेद की सफल चिकित्सा के सामयिक प्रदर्शन भी किये जा सकते हैं। इन सब साधनों के अलावा वैद्यों को अपना आत्मनिरीक्षण करना भी परमावश्यक है। पारस्परिक सहयोग के अतिरिक्त औषधियों का सचाई तथा कायदे से बनाया जाना अत्यावश्यक है।

आज जितने भी आयुर्वेदिक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं, उनके लेखक शास्त्रीय गहराई में बहुत कम उतरते हैं और अनुभूत प्रयोगों के नाम से जो कुछ भी प्रकाशित होता है, उसका अधिकांश भाग, जो वास्तव में उपयोगी होता है, लेखकों द्वारा छिपालिया जाता है अथवा कोई एक घुण्डी अपने पास ही रखली जाती है, जिसके फलस्वरूप जिस श्रद्धाविश्वास से निर्माण कर कोई वैद्य प्रयोग में असफल होता है, तो उसकी सारी श्रद्धा का अन्त वहीं हो जाता है, इसका परिणाम यह होता है कि सच्चे प्रयोग भी झूठे समझ कर छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार निम्नकोटी मनोवृत्ति के वैद्य तो गर्त में जाते ही हैं, साथ में आयुर्वेद के प्रति अन्यों की श्रद्धा को भी गड्ढे में ढकेल देते हैं। इस दूषित मनोवृत्ति का शीघ्र अन्त होना चाहिये। जो कुछ भी वैद्यों द्वारा लिखा जावे वह भले ही थोड़ा हो, किन्तु सचाई, इमानदारी से खाली न हो। 'सत्यमेव जयते' हमारा ही भारतीय सिद्धान्त है। इसके अनुसरण से विजय हो सकती है। वैद्य गङ्गासहाय ने अपनी प्रचार पुस्तक में जो विवरण दिया है वह सत्ययूत होने से अनुकरणीय है जितनी स्पष्ट और शास्त्रीय रीति का उन्होंने अनुसरण किया है, वह शिक्षा-प्रद है।

राजकुमारी अमृतकोर के चीन के अनुभव

[ले०—श्री पंडित सुन्दरलाल जी*]

भारत की हैल्थ मिनिस्टर राजकुमारी अमृतकौर हाल में चीन गई हुई थी। वहां से लौटकर ३१ अक्तूबर को दिल्ली में उन्होंने एक प्रेस कान्फ्रेंस में चीन के अपने अनुभव बयान किये। राजकुमारी अमृतकौर खुद डाक्टर नहीं हैं, लेकिन वह सारे देश के स्वास्थ्य विभाग की वजीर है। इसलिए डाक्टरी के काम से उनका गहरा सम्बन्ध है। अधिकतर उसी के सम्बन्ध में वह चीन गई थी। फिर भी वहां के दूसरे आम हालात पर उन्होंने जो बातें कही हैं उनमें से कुछ हम नीचे देते है।

राजकुमारी ने कहा कि—"जनता की तन्दुरुस्ती के असूलों के बारे में, देश के अन्दर इस तरह की समाजी हवा पैदा कर देने के बारे में जिसमें चोरी और शराब पीकर बदहवासी उस देश से लगभग गुम हो गई है और इसी तरह की और बातों में भारत को चीन से बहुत कुछ सीखना है।"

वहां की तालीम के बारे में उन्होंने कहा कि—"चीन के अन्दर हर तरह की तालीम मुफ़त दी जाती है, विद्यार्थियों को रहने की जगह भी मुफ़त दी जाती है। उनसे केवल खाने का खर्च लिया जाता है जो एक विद्यार्थी पर २२ रुपये माहवार से २६ रुपये माहवार तक पड़ता है। मेडिकल स्कूलों और कॉलेजों में सरकार औसतन हर विद्यार्थी पर २,००० रुपये सालाना खर्च करती है।"

"डाक्टरी की तालीम पाने वाले विद्यार्थियों को केवल अपने खाने और किताबों का खर्च देना होता है।"

उन्होंने बताया कि—'गांव में स्वास्थ्य केन्द्रों पर और माओं और बच्चों

*पंडित सुन्दरलालजी 'भारत में अंग्रेजी राज' के लेखक, हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी के प्रधान मंत्री, 'कर्मवीर' और 'भविष्य' आदि पत्रों के सम्पादक, सुप्रसिद्ध राजनैतिक नेता, हिन्द चीन मन्त्री संघ तथा भारतीय शांति परिषद् के अध्यक्ष, जोकि चीन जाने वाले प्रथम सद् भावना मिशन के नेता और बाद में रूस जाने वाले सद्भावना मिशन के भी अध्यक्ष थे। आप भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली के कितने प्रबल समर्थक हैं, यह आपके लेख में देखिये। —सम्पादक

की तन्दुरुस्ती पर सबसे जियादा जोर दिया जाता है। शुरू से लेकर बच्चों की खबरगीरी और उनकी तन्दुरुस्ती का ख्याल चीन में सबसे जरूरी काम समझा जाता है।"

पेकिंग में पहली अक्तूबर को चीनी राष्ट्रीय दिवस के जलसों में छैः लाख लोगों ने भाग लिया। राजकुमारी ने उन लोगों की शिस्त की बड़ी तारीफ की। उन्होंने यह भी कहा कि चीन में सबके रहने के लिए नए मकान जिस तेजी से बनते जा रहे हैं, उसे देखकर वह चकित रह गई। अच्छी और चौड़ी सड़कों पर वहां बहुत जोर दिया जाता है। वह यह देखकर खुश हो गई कि खुली जगहों में जंगल लगाने और चारों तरफ दरख़्त लगाने का चीनियों को जितना जबरदस्त शौक़ है। कोई आदमी बिना इजाजत के कोई दरख़्त नहीं काट सकता। "खास ख़ास बड़ी बड़ी सड़कों और रास्तों पर चलते हुए बिल्कुल यह मालूम होता है कि आदमी दरख़्तों के कुञ्ज में से चला जा रहा है। जहाँ पुराने घटिया मकानों को गिराया और साफ़ किया गया है वहाँ अक्सर बच्चों के लिए बग़ीचे और खेलने के मैदान बना दिये गए हैं।"

राजकुमारी का कहना है कि:—"भारत के साथ दोस्ती की इच्छा और शान्ति की इच्छा चीन वालों में सच्ची है साफ चमकती है। चीन के लोगों में एकता और जोश उनकी उन्नति के खास कारण हैं।"

उन्होंने यह भी बताया कि:—"चीन में 'फैमिली प्लेनिंग' यानि बच्चों की पैदायश को रोकने का प्रोग्राम नहीं चलता और चीनी सरकार को आबादी के बढ़ जाने की कोई चिन्ता नहीं है।" पर उस देश में इस बात पर जोर दिया जाता है कि कोई एक से अधिक शादी न करे। दाश्ता या रखैत रखने का पुराना रिवाज बिल्कुल बन्द कर दिया गया है। कोई लड़की अठारह वर्ष की उम्र से पहले और कोई लड़का इक्कीस साल की उमर से पहिले शादी नहीं कर सकता। औरतों की एक बड़ी संस्था है जिसका नाम "वीमेन्स डैमोक्रेटिक फ़ेडरेशन" है। यह संस्था बहुत ही शक्तिशाली और बाअसर संस्था है। वह देखती रहती है कि शादी वगैरह के बारे में कोई इस तरह का नियम न तोड़ने पाए।

"चीनी लड़कियाँ और चीनी स्त्रियाँ बहुत आजाद हैं और साथ ही उनका

सदाचार का आदर्श (मयार) और अपनी आबरू और आन का मयार भी बहुत ऊँचा है। पुरुषों और स्त्रियों को बराबर का दरजा दिया जाता है। तालीम दोनों को साथ दी जाती है। चोरी का चीन में कहीं नाम नहीं है। होटलों के कमरों को कभी ताले नहीं लगाये जाते होटलों वग़ैरह में कभी कोई किसी को इनाम या बख़शीश नहीं लेता देता। शराब पीकर बदहवास वहाँ कोई दिखाई नहीं दे सकता अगर कोई इस तरह शराब पिये पाया जाता है तो समाज में उसका बायकाट हो जाता है।"

यहाँ तक तो हमने चीन के बारे में राजकुमारी के आम अनुभव बयान किये हैं, पर इनके अलावा राजकुमारी अमृतकौर ने चीन में नई डाक्टरी, वहाँ की पुरानी वैद्यक विद्या आदि के बारे में कई बातें ऐसी कही हैं जिनमें से कुछ को पढ़कर हमें अचरज और दुःख भी हुआ। राजकुमारी देश की हैल्थ मिनिस्टर हैं। अँग्रेजी इलाज, देशी इलाज वग़ैरह के बारे में राजकुमारी के विचार भी सब को मालूम हैं। इस सम्बन्ध में चीन की बाबत जो कुछ उन्होंने कहा है उससे इस सचाई का सबूत मिलता है कि जिन बातों में हमारे विचार जोरों से जैसे हुए होते हैं उनमें हम अकसर वही देखते हैं जो हम देखना चाहते हैं और वही सुनते भी हैं जो हम सुनना चाहते हैं। शायद हममें से कोई भी नंगी आँखों से दुनिया को नहीं देख सकता। हमारे अपने पहले से बने विचारों, विश्वासों, मानताओं और भावों का चश्मा हमारी आँखों पर बराबर लगा ही रहता है और उसी चश्मे के अन्दर से हम दुनिया को देखते हैं। फरक केवल इतना होता है कि किसी के चश्मे का रंग गहरा होता है और किसी का हल्का। फिर भी राजकुमारी ने कुछ बातें ऐसी कहीं हैं जिनसे काफी गलत फ़हमी पैदा होती है।

राजकुमारी ने कहा है कि भारत में डाक्टरी की तालीम का स्तर चीन के स्तर से ऊंचा है और यहां डाक्टर भी चीन के डाक्टरों से गिनती में अधिक और अधिक योग्य हैं। उन्होंने बताया है कि चीन की आबादी साठ करोड है और आजकल की पच्छमी डाक्टरी में योग्यता रखने वाले डाक्टर वहां केवल तीस हजार और ४० हजार के बीच में हैं। भारत की आबादी चीन से बहुत कम है पर यहां योग्य डकाटरों की तादाद उनके अनुसार इससे

लगभग दुगनी है। इससे राजकुमारी ने शायद यह बताना चाहा है कि जनता के स्वास्थ्य की देख रेख जितनी भारत में की जाती है उतनी चीन में नहीं की जाती।

इस बात का राजकुमारी की निगाह में अधिक महत्व नहीं है कि नई चीनी सरकार पच्छमी डाक्टरी के इन माहिरों" के अलावा पुरानी चीनी वैद्यक विद्या के जानकार और तजरबेकार हकीमों या वैद्यों से लाभ उठाने की पूरी कोशिश करती है। उनकी मदद से जगह जगह गांव के अन्दर स्वास्थ्य केन्द्र बने हुए हैं, जहां केवल रोगियों का इलाज ही नहीं किया जाता इस बात की भी कोशिश की जाती है कि लोग "बीमार न पड़ें।" यह पुराने ढंग के चीनी हकीम और वैद्य अधिकतर इलाज तो अपने पुराने सस्ते तरीकों और जड़ी बूटियों से ही करते हैं, पर राजकुमारी ही के अनुसार सरकार इन सब को तन्दुरुस्ती और सफाई के नए से नए असूल, जख्मों की मल्हमपट्टी के नए से नए तरीके और कुछ सीधी सस्ती नई दवाओं का इस्तेमाल भी सिखा देती है। राजकुमारी ही के अनुसार सरकार द्वारा अपनाए हुए इस तरह के हकीमों की तादाद चीन में लगभग तीन लाख है।

इसके साथ साथ बड़े बड़े डाक्टरों के अलावा चीनी सरकार कुछ कम पढ़े लेकिन सस्ते डाक्टर भी तीन तीन साल की तालीम देकर तैयार कर रही है। राजकुमारी ही के अनुसार इस तरह के तीन साल के कोर्स में पढ़ने वालों की तादाद इस समय अठावन हज़ार है। वहां के इकत्तीस बड़े मैडीकल कालिजों में इस समय चौंतीस हजार 'योग्य' डाक्टर भी और तैयार हो रहे हैं।

बात बड़ी सीधी सी है। राजकुमारी और उन जैसे ऊँचे बैठे हुए लोगों को यह नहीं मालुम कि इन 'योग्य' पच्छमी ढंग के डाक्टरों का इलाज, मामूली गरीब आदमियों की तो बात ही क्या, हमारे बीच के दरजे के देशवासियों के लिए भी कितना मंहगा और मुसीबत का होता है। हमारे एक मित्र को जिन्हें आठ सौ रुपये महीना वेतन मिलता है, पेट का आपरेशन के खर्च के अलावा उन्हें कई हज़ार की ऊपर से इस्तेमाल की पेटेंट दवाएं खरीदनी पड़ी जिनमें से तीन चौथाई से अधिक किसी भी काम न आई और फेंकनी पड़ी। अपने इस इलाज में उन्हें अपनी पत्नी का जेवर बेचना पड़ा। यह केवल एक मिसाल नहीं है। लगभग हर मिडिल क्लास के घर से

इसी तरह की कहानी सुनी जा सकती है। हमारे अधिकतर पश्चमी ढंग के डाक्टर बेचारे आज कल हालात में इस गरीब देश के अन्दर करोड़ों रुपये की विदेशी पेटेंट दवाओं के मंगवाने और खपाने वाले एजेन्ट बने हुए हैं। और हमें विश्वास है कि इनमें से अधिकतर दवाएं निकम्मी ही नहीं, हानिकर भी हैं। यह "हानिकर" शब्द हमने सोच समझ कर उपयोग किया है। आए दिन के अपने तजुरबों को छोड़ कर कुछ दिन हुए हमने यूरप के एक बहुत बड़े डाक्टर की, जो चालीस साल तक दुनिया के एक बहुत बड़े अस्पताल के चार्ज में रह चुके थे, पश्चमी दवाओं की बाबत, यह राय पढ़ी थी, "If the contents of all the apothecaries' shops could be emptied into the sea, the consequences to the fish may be dangerous, but mankind will be happier and healthier."

"अर्थात–यदि डाक्टरी की सब दुकानों की सारी शीशियां समन्दर में उलट कर खाली कर ली जांय तो नतीजा मछलियों के लिये खतरनाक हो सकता है लेकिन मानवसमाज अधिक सुखी और अधिक स्वस्थ रहेगा।"

हमें ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर के वाक्य में ऐलोपेथिक दवाओं की बात कही गई है, पुरानी वैद्यक या यूनानी जड़ी बूटियों या नन्हीं २ होमियोपैथिक गोलियों की नहीं। हमने सुना था कि आज कल जो बहुत से हमारे डैलिगेशन चीन और रूस जा रहे हैं उनमें से एक डैलिगेशन के एक हिन्दुस्तानी मेम्बर ने रूस के स्वास्थ्य वजीर से पूछा था कि क्या आप अमरीकी दवाएं अपने देश में नहीं इम्पोर्ट करते। सुना है, रूसी ने जवाब दिया कि हम न उनकी दवाएं इम्पोर्ट करते हैं और न उनकी बिमारियां। इस जवाब में आधा मजाक जरूर था पर इसका आधा सच बहुत गहरा है।

हमें विश्वास है कि महात्मा गाँधी इस देश के पच्छमी ढंग के डाक्टरों को जब देश के दो सबसे खतरनाक और हानिकर गिरोहों में गिना करते थे तो उनकी बात में बहुत बड़ी सचाई थी। हम आज कल पूरी नेक-नीयती के साथ, पर उतनी ही पूरी नासमझी के साथ, इस मामले में उसी खतरे की तरफ़ ढुलकते चले जा रहे हैं जिस से गांधी जी हमें बचाना चाहते थे।

चीनी शासक इस बारे में हमसे कहीं

अधिक समझदार है। जहां तक आम जनता का सवाल है चीन आज उतना गरीब देश नहीं है जितना भारत। फिर भी वह हर साल करोड़ों रुपया विदेशी दवाओं पर नहीं खोते और यह एक मानी हुई चीज है कि—अपनी जनता और अपने बच्चों को हमसे कहीं अधिक तन्दुरुस्त, मोटा ताजा और खुश रख रहे हैं।

अपने देश के पुराने इलाज के तरीके की तरफ चीनी सरकार का जो रुख है उसकी बाबत राजकुमारी के बयान से काफी गलत फहमी पैदा हो सकती है। राजकुमारी ने कहा कि चीनी सरकार पुराने इलाज के तरीके को खतम कर देना और उसकी जगह पच्छिम की नई साइन्सी डाक्टरी को ही चलाना चाहती है। इस पर किसी समाचार पत्र के प्रतिनिधि ने पूछ ही लिया कि—चीन की मिसाल के खिलाफ, क्या भारत सरकार आजकल आयुर्वेद और दूसरे देसी इलाज के तरीकों की हैसियत से बढ़ावा नहीं दे रही है? राजकुमारी ने माना कि सरकार बढ़वा दे रही है पर, उसे गलती स्वीकार करते हुए, राजकुमारी ने उस पर दुख प्रकट किया! किसी ने उन्हें बताया कि हाल में यूनियन प्लेनिंग मिनिस्टर श्री गुलजारीलाल नन्दा ने आयुर्वेद और होमियोपैथी के पक्ष में राय जाहिर की है और कहा है कि इलाज के ये दोनों तरीके ऐलोपेथिक तरीके से सस्ते हैं और कारगर हैं यानी लोग इन से अच्छे होते हैं। राजकुमारी ने इस पर साफ कहा—'मैं श्री नन्दा की राय से इत्तफाक नहीं करती'। आयुर्वेद, यूनानी और होमियो पैथी जैसे इलाजों को सरकार जो कुछ भी बढ़ावा या मदद दे रही है वह राजकुमारी की राय में गलत है। राजकुमारी ने इस बात पर भी दुख प्रकट किया कि स्वास्थ्य के मामले में अलग २ प्रान्त या प्रदेश चूंकि आजाद हैं इस लिए यूनियन सरकार उन्हें इस तरह की गलतियों से नहीं रोक सकती! जाहिर है उनका बस चले तो वह सारे भारत के लिए फरमान जारी कर दें कि सिवाय ऐलोपेथी के इन सब और 'फजूलियात' को बन्द और खतम कर दिया जावे। उन्होंने इस पर भी असन्तोष प्रकट किया कि प्रान्तों की सरकार काफी बड़ी २ तन्ख्वाएं देकर सचमुच 'योग्य' डाक्टरों को 'गांव गांव' में नियुक्त नहीं कर रही है।

राजकुमारी ने इसी तरह की और भी कुछ बातें कहीं जिन पर हमें उससे कहीं

अधिक दुःख हुआ जितना राजकुमारी को श्री गुलजारी लाल नन्दा के बयान पर या सरकार या सरकारों के ऐलोपैथी के अलावा इलाज के दूसरे तरीकों को बढावा देने पर हैं। इन सब बातों पर हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हम राजकुमारी बहन से बिलकुल असहमत हैं। चीन में वहां के पुराने इलाज के तरीके की तरफ नई चीनी सरकार का क्या रुख है यह एक साफ और सीधा सवाल है। पेकिंग से अंगरेजी भाषा में एक मासिक पत्रिका निकलती है 'China Reconstructs' अर्थात 'नए चीन की फिर से तामीर'। इसमें वहां की सरकार बड़े गर्व के साथ यह बताती है कि वह अपने देश की नए सिरे से तामीर किस किस तरह कर रही है, और क्या क्या कर रही है। इस पत्रिका का हाल का अंक राजकुमारी की बात चीत के साथ साथ हमें मिला है। सौभाग्य से उसमें चीनी विद्वान लीताओ का एक बड़ा सुन्दर लेख 'The Story of Chinese Medicine अर्थात 'चीनी इलाज की कहानी' पर है। हम उस पूरे लेख का हिन्दुस्तानी अनुवाद दूसरी जगह दे रहे हैं। उस लेख से पाठकों को पता चलेगा कि नई चीनी सरकार अपने यहां के इलाज के पुराने तरीके की कितनी कदर करती है, उसे कितना बढावा देती है, उसे खत्म करने के बजाय किस तरह उसे अमर बनाने की फिक्र में है, अपनी वैद्यक विद्या पर पुरानी किताबों के नए एडीशन निकलवा रही है, योजनाएँ बना रही है कि पुराने इलाज के तरीके देश के मैडिकल कालिजों में सिखाए जांय और उनकी किताबें सबको पढाई जांय। वह नई पश्चमी डाक्टरी को पुरानी वैद्यक विद्या की जगह नहीं देना चाहती बल्कि दोनों के मेल से एक नया समन्वय या संगम बनाना चाहती है जिससे चीन की सरकार को विश्वास है कि केवल चीन ही के नहीं बल्कि सारी दुनियां के लोगों के स्वास्थ्य को बहुत बडा लाभ होगा। उस लेख से पाठकों को यह भी मालूम होगा कि अपने देश के इलाज के पुराने तरीकों की तरफ और एलोपैथी को छोड़ कर, दूसरे तरीकों की तरफ राजकुमारी अमृतकौर और उनके हम-ख्याल शासकों का ठीक वही रुख है जो च्यांगकाई शेक के शासन के दिनों में कोमिंगतांग शासकों का चीन के पुराने इलाज के तरीके की तरफ था। नई चीनी सरकार का रुख इस मामले में बिल्कुल दूसरा और कहीं अधिक समझदारी का है।

दिल्ली के चीनी दूतावास से भी एक अंग्रेजी समाचार बुलेटिन निकलता है। उसके दो नवम्बर सन् १६५५ के अंक में मशहूर चीनी न्यूजएजेन्सी Hsinhua News की तरफ से ऐनसेफेलाइटिस (Encephalitis) नाम की बीमारी के बारे में, जिसमें दिमाग के अन्दर सूजन आ जाती है और जिसका ठीक ठीक कारण या इलाज एलोपैथिक डाक्टरों को अभी नहीं सूझा, नीचे लिखी खबर इसी सरनामें के साथ छपी है:—

एनसेफलाइटिस के इलाज में कामयाबी

"चीन के असिस्टेण्ट मिनिस्टर आफ पब्लिक हैल्थ श्री कोत्जू-हुआ ने २० अक्तूबर के पेकिंग के सरकारी अखबार "पीपल्स डेली" में एक खास लेख में ब्यान किया है कि इस साल जुलाई और अगस्त के महीनों में एनसेफेलाइटिस के रोग के बीस रोगी देखे गए जिनमें नब्बे फीसदी चीन के पुराने इलाज के तरीके से अच्छे हो गए।

"डाक्टरों का एक गिरोह था जिनमें नए पच्छमी ढंग के चीनी डाक्टर और पुराने ढंग के चीनी डाक्टर दोनों शामिल थे। उसके नेता थे यही जन स्वास्थ्य के नायब वज़ीर श्री कोत्जू-हुआ। इन लोगों ने पिछले अगस्त के महीने में शिहचियाचुआन के एक अस्पताल में जाकर ऐनसेफेलाइटिस के इलाज का अध्ययन किया।

नायब वज़ीर ने कहा है कि हमने जिन बीस रोगियों को देखा उनकी उमरें छैः महीने से लेकर इकसठ साल तक की थी। इन बीस रोगियों में से केवल तीन मरे, इन तीन में से एक को कुछ दूसरी बीमारियां भी थी। नायब वज़ीर ने यह भी कहा है कि पिछले साल इस अस्पताल में इसी तरह इकत्तीस रोगियों का इलाज किया गया था, जिनमें आधे से अधिक की हालत बहुत गम्भीर थी। इस इलाज से सौ फीसदी यानी सबके सब अच्छे हो गए।

कोत्जू-हुआ ने देखा कि पुरानी चीनी वैद्यक की किताबों में इस बीमारी (ऐनसेफेलाइटिस) का जिक्र है, और शिहचियाचुआन के अस्पताल में पुराने चीनी ढंग से इस रोग का जो इलाज किया गया वह अठारहवीं सदी के एक चीनी हकीम यु शिह-यू की एक किताब के आधार पर था।

हम मानते हैं कि पच्छिम की

ऐलोपेथिक डाक्टरी से भी हम बहुत कुछ फ़ायदा उठा सकते हैं, हमें उठाना चाहिए और चीनी भी उससे पूरा पूरा फ़ायदा उठा रहे हैं। नई और पुरानी हर चीज़ से हमें जो लाभ मिल सकता हो, लेना चाहिए। पर हमें वैद्यक और यूनानी जैसे अपने पुराने तरीकों और होमियोपेथी, नेचुरोपैथी जैसे दूसरे नए तरीकों को भी हर तरह का मौका और बढ़ावा देना चाहिए और उनसे पूरा लाभ उठाना चाहिए। भारत जैसे देशों की जनता के लिए यही कल्याण का मार्ग है। इसके खिलाफ पक्षपात संकीर्णता है, नासमझी है और देश की करोड़ों गरीब जनता के साथ और खुद विद्या के साथ अन्याय है।

आदान और विसर्ग

[ले० श्री सम्पत्कुमार मिश्र, मिश्र भवन सीकर]

पूर्व और पश्चिम के मन्तव्यों, ध्येयों और सिद्धान्तों में सदा-सर्वदा से जो मौलिक अन्तर चला आया है, उसका आधार दोनों की सांस्कृतिक पृथकृता है। पाश्चिमात्य देशों के सब कार्य आदान को लेकर और भारत के विसर्ग को लेकर होते रहे हैं। इन दोनों में से कौन एकांगीन तथा कौन सर्वांगीण है? कौन व्यष्टि-परक एवं कौन समष्टि-परक है। इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है। आदान केवल अपने को और अपने से आगे निकल सका तो अपने रूप-रङ्ग के लोगों को पोषित करता है; किन्तु विसर्ग में यह संकीर्णता अथवा स्थिति-पालकता नहीं है। वह विसर्ग है, इसलिये सूर्य, चन्द्र, पवन और मेघ जिस प्रकार सबको एक समान प्रकाश, चाँदनी, हवा और जल देते रहते हैं, उसी प्रकार विश्व के हित में सदैव विसर्ग (त्याग) करता रहता है। भारत के महा-महिम महर्षियों ने विसर्ग की विशेषतापूर्ण परोपकार मूलकता को ध्यान में रखते हुए व्यापक रूप से उसे अपनाया था। उनके सभी कार्य विसर्ग-मूलक हुआ करते थे। गीता के यस्तुकर्म-फलत्यागी सत्यागी-त्यभिधीयते' इस वाक्य के अनुसार वे सच्चे त्यागी थे। महर्षियों ने ब्राह्मण को

परोपकार के लिये ज्ञान का विसर्ग (दान) क्षत्रीय को भीरुता का एवं वैश्य को सम्पत्ति का और चतुर्थ वर्ण को शिल्प एवं सेवा के द्वारा आलस्य का विसर्ग (त्याग) करने की शिक्षा दी थी। वर्ण-धर्म के ह्रास का कोई कुछ भी कारण बतावे, किन्तु हमारी राय से उसके पतनोन्मुख होने का यह प्रधान कारण है कि वर्णों ने अपनी विसर्ग-मूलक नीति को छोड़कर आदान की नीति को अपना लिया, इसीसे वे गतश्रीक होते चले गये। महामुनि व्यास ने विसर्ग और आदान को बहुत सुन्दर शब्दों में प्रकट किया है।

'परोपकारः पुण्याय
पापाय परपीडनम्।'

अर्थात् विसर्ग परोपकार मूलक है और आदान स्वार्थ,साधक होने से पीड़ादायक है।

विसर्ग, विश्व को कुछ न कुछ देने को बना है तो आदान विश्व से कुछ न कुछ लेने के लिये। बहुतों की सेवा के लिये देने वाला अच्छा है, या बहुतों से केवल अपने रक्षण के लिये लेने वाला—यह कोई पेचीदा प्रश्न नहीं है। सर्व-साधारण आसानी से यह समझ सकते हैं कि परोपकार के लिये देने वाला सदा ही अच्छा है। भारतवर्ष के विद्वानों का सदा से मन्तव्य रहा कि—

"किंतेन जीवितेनाथ
पत्र स्वोदर पूरणा।
यस्मिन् जीवति जीवन्ति
बहवः सोऽत्र जीवतु॥"

जो दूसरों के लिये जीता है या जी सके जीवन पर दूसरों का जीवन निर्भर करता है, उसका जीवन धन्य और कृतपुण्य है। इसके विपरीत जो केवल अपने लिये जीता है, भारतीय ऋषियों ने उसे बलि भुक् काक की उपमा देकर ऐसे आदान मूलक जीवन को गर्हित कहा है। आयुर्वेद और उसके सेवक वैद्य ऐसे एकांगी जीवन से दूर रहे और उन्होंने सदैव यह उदार उद्देश्य रखा कि रोगार्त प्राणियों के रोग दूर होकर वे स्वस्थ और सुखी बनें, फिर चाहे उनको पैसा मिले या न मिले। यही कारण है कि अँग्रेजी शासन में आयुर्वेद का कड़ा विरोध होने पर भी वह अपनी विसर्ग-मूलकता के कारण टिका रहा और चार पैसों की भारतीय दवा को रूपान्तर तथा नामान्तर देकर जनता से चार रुपये लेने वाली एलोपेथी, आयुर्वेद पर आरूढ़ न हो सकी। सन्तों, विरक्तों और साधुओं द्वारा पैसे दो पैसों की जड़ी बूंटी देकर लोगों को रोग

मुक्त करने की विसर्ग-मूलक कथायें, परम्परायें और किंवन्तियां इस देश में सदा से प्रचलित हैं। कई सन्त तो यहां तक कहते सुने जाते हैं कि यदि इस औषधी को बेचकर कमाई की जावे तो इसका प्रभाव नष्ट हो जावेगा, क्योंकि यह विसर्ग-मूलक है। यहां इस उल्लेख से हमारा मतलब यह नहीं है कि वैद्य लोग, अपनी लाभप्रद औषधियों को मुफ्त ही उछाल दें और परम हंस बाबा बनकर बैठ जावें उन्हें उनका मूल्य लेना चाहिये किन्तु आयुर्वेद की जो विसर्ग-मूलक नीति रही है, जिसके कारण वह इस देश में फला फूला उसका भी ध्यान रखना चाहिये।

विशेष समय नहीं बीता है, २०।२५ वर्षों पहले नगर और गांव में ऐसे वैद्य थे, जो असमर्थ रोगियों को दवा के साथ २ पथ्य की वस्तुएं भी अपने घर से दे दिया करते थे और असमर्थों को पहले संभालते थे। लछमनगढ़ (सीकर) के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० वृद्धिचन्द्रजी शर्मा के पूर्वज स्वर्गीय वैद्य सूरजमलजी, वैद्य रामचन्दजी, वैद्य रामरतनजी आदि के ऐसे परोपकार व्रतों की कहानियां शेखावाटी में अब भी सुनी जाती हैं। आयुर्वेद की परोपकार मूलकता सजीव होकर ऐसे वैद्यों के आचरण में देखी जा सकती थी। वर्तमान युग के इसाई पादरी तो चिकित्स्य जनता से क्रिश्चियन धर्म के अवलम्बन की दक्षिणा लेने को औषधोपचार करते हैं, किन्तु पुराने आयुर्वेदज्ञों को जनता की चिकित्सा—सेवा करने में किसी प्रकारका स्वार्थ अभिष्ट नहीं था, वे केवल निस्वार्थ परोपकार भावना से औषध दान कर आयुर्वेद की विसर्ग-मूलकता को प्रगट करते रहते थे। आयुर्वेद के अब तक अक्षुण्ण बने रहने का कारण राज्याश्रय अथवा द्रव्याश्रय नहीं, परोपकार व्रती पुरातन् वैद्यों की उक्त विसर्ग—मूलक आयुर्वेदिक सेवा ही है।

पुरातन समय के परोपकारव्रती वैद्यों के पर सेवाव्रत को याद करते हुए भारतीय जीवन में व्याप्त हो रहे धार्मिक अनुष्ठानों के अन्त में बोली जाने वाली प्राचीन-काल की राष्ट्रीय प्रार्थना इस प्रसंग में स्मरण हो जाती है—

'याचितारश्च नः
सन्तु माच याचिष्म।

अर्थात् हम किसी से कुछ न मांगे क्यों कि हम पूर्ण काम हैं और दूसरे लोग हमसे मांगे क्यों कि वे अपूर्ण काम हैं। भारतीय आयुर्वेद की यही उदार घोषणा रही है उसने सारे जगत को कई पैथियां

दी। आज की समस्त पैथियां उसीसे रूपान्तर बन कर निकली हुई हैं वह दाता हैं, आदाता नहीं।

सभी वैद्य, फिर चाहे वे किसी धर्मार्थ औषधालय में काम करते हों अथवा निजी औषधालय में, यत् किंचित् उस पुरानी परोप कार मूलक नीति को अपनाये हुए रहेंगे तो वे न केवल अपना ही, अपितु आयुर्वेद का भी जो उनकी ऐहिक पारत्रिक उन्नति का मूल है, अभ्युदय कर सकेंगे।



अभिनन्दन ग्रंथ के सम्पादक चतुष्टय



श्री रामेश्वरप्रसाद शास्त्री
डीडवाना



श्री सम्पतकुमार मिश्र
सीकर



श्री रामदयाल वकील
डीडवाना



श्री कुन्जविहारी व्यास
डीडवाना

राजस्थान में आयुर्वेदिक प्रगति

[लेखक श्रीमान् प्रेमशंकरजी आयुर्वेदाचार्य, डाइरेक्टर आयुर्वेद विभाग राजस्थान]

राजस्थान राज्य और आयुर्वेद चिकित्सा का क्रमिक विकास भारतवर्ष पर विदेशी शासन के स्थिर होने पर ज्यों ही भारत की संस्कृति साहित्य विज्ञान और कलाओं की प्रगति पर पड़ा, आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान उससे अछूता नहीं रह सकता यह सत्य छिपा हुआ नहीं है कि संसार का सब से पुरातन चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद ही रहा है वैदिक काल से आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में क्रमशः परिवर्तन, परिवर्धन, और संशोधन देश काल और परिस्थित के अनुकूल होता रहा जिसके परिणाम स्वरूप पांचवी शताब्दी तक आयुर्वेद चिकित्सा के आठों अंगों में पूर्ण विकास हुआ। मुगल शासकों के शासन काल में आयुर्वेद का भाषान्तर अनुवाद किया जाकर आयुर्वेद के सारे मौलिक सिद्धान्त ज्यों के त्यों सुरक्षित कर दिये गये और एक मात्र चिकित्सा शास्त्री रूप में उनका प्रचार व प्रसार हुआ जो यूनानी चिकित्सा के नाम से व्यवहृत है। यूनानी चिकित्सकों ने द्रव्य गुण और रोगों की चिकित्सा विधियों में काफी खोज की और उनका प्रभाव चिकित्सा पर गौरव पूर्ण पड़ा। हेतुओं विषमता से ज्यों ज्यों वनस्पतियों के गुणों में हीनता आई उस समय के नागार्जुन आदि विचारकों ने पारद, गंधक, लोह, ताम्र, सोना चांदी सीसा रांग आदि सप्त धातुओं के प्रयोग की परम्परा आयुर्वेद चिकित्सा में सफलता से व्यवहार में लाने का प्रयत्न किया इससे आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में एक नवीन युग का आरम्भ युग ज्यों ज्यों भारत को युद्ध की विभिशिकाओं में प्रभावित किया अत्यसंरक्षक के अतिरिक्त भारतीय चिकित्सक भी अनुसन्धान परम्पराओं से दूर होते रहे और किसी संक्रमण काल में विकासों मुख अंग्रेजी राज्य का शासन भारत पर हुआ तो यह स्वभाविक था कि एलोपेथिक का ही विचार बढ़ता गया फिर भी प्रथक रियासतों में जनता की मांग को ध्यान में रखते हुवे साम्राज्य की नीति के विरुद्ध ही आयुर्वेद को प्रोत्साहन दिया जाता रहा और कई रियासतों ने आयुर्वेद को सुरक्षित

रहने का अवसर मिला। बंगाल बिहार मद्रास यू० पी० आदि प्रान्तों में आयुर्वेद का असतित्व रहते हुवे राजस्थान में आयुर्वेद का प्रचार बना रहा और राजस्थान के विभिन्नराजाओं एवं धनी-मानियों ने आयुर्वेद की संस्थाएं चला कर आयुर्वेद चिकित्सा के लाभ से जनता को वान्छित नहीं होने दिया। परन्तु सर्वांगिण प्रगति के नहीं होने से आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में कोई प्रगति नहीं हो सकी। राज्याश्रय के अभाव में किसी भी विज्ञान का विकास सम्भव नहीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सभी प्रन्तों में आयुर्वेद विकास के लिये सरकार का ध्यान आकर्पित हुआ और अब भी कई विचरों के पचन से यद्यपि आयुर्वेद के लिये कोई स्थिर नीति नहीं हो सकी है परन्तु राजस्थान सरकार ने रियासतों के पुनठिन के बाद आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के विकास में भी अभि-रूचि ली है और सनै सनै दृढ़ता से भी आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धत्ति को प्रोत्साहन देने की ओर अपना मजबूत कदम बढाया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोकप्रिय सरकार के शासन काल में महा राजस्थान के बनने के पूर्व तक ३४६ औषधालय निम्नांकित रूप से थे।

(१)	फोरमर राजस्थान	१४१
(२)	जयपुर	५१
(३)	जोधपुर	७०
(४)	बीकानेर	१८
(५)	अलवर	२३
(६)	धौलपुर	१०
(७)	करौली	२१
(८)	सिरोही	४

फोरमर राजस्थान बनने से पूर्व सर्वप्रथम मेवाड़ सरकार के शासन में स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद विभाग का श्री गणेश हुआ और फोरमर राजस्थान में इस विभाग के प्रथक संचालक की नियुक्ति हुई औषधालयों के साथ राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय उदयपुर में चलता रहा। और कालेज की सर्वांगीण शिक्षा व्यवस्था के लिये साधन सम्पन्न केन्द्रीय चिकित्सालय और रसायनशाला की व्यवस्था हुई। जयपुर रियासत में भी आयुर्वेद महा-विद्यालय अच्छी प्रतिष्ठा के साथ चलता रहा आयुर्वेद विकास के लिये एक स्वतन्त्र बोर्ड की स्थापना होकर वैद्य एवम् हकीमों के रजिस्टर्ड किये जाने का कार्य सम्पन्न हुआ। तथा ओनरेरी डाईरेक्टर के

अधीन में ५१ औषधालय चलते रहे। जोधपुर में भी आयुर्वेद बोर्ड के अन्तर्गत आयुर्वेद एडपोस्ट चिकित्सालय चलते रहे कई रियासतें आयुर्वेद विकास के सम्बन्ध में कोई प्रगति का कदम नहीं उठा सके। जो कुछ राजकीय आयुर्वेद औषधालय की संख्या राजस्थान के निर्माण के पूर्व में थी वह भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हुई है।

राजस्थान के निर्माण के साथ ही आयुर्वेद विभाग शिक्षा, चिकित्सा, और औषध निर्माण इन तीन खण्डों में विभक्त हुआ और प्रथक २ तीन विभागीय अध्यक्ष नियुक्त हुवे। यह स्वाभाविक था कि एक नीति के अभाव में विभाग में संभावित प्रगति सम्भव नहीं हो सकी। सन् १९५२ में सरकार ने सारे विभाग को एक सूत्र में लाने का निर्णय किया और एक संचालक के अधीन सारे विभागीय व्यवस्थाओं को संचालित की गई तब से उत्तरोत्तर आयुर्वेद विभाग का विकास बढ़ता जा रहा है। जो निम्नाङ्कित तालिकाओं से व्यक्त होता है:—सन् १९५० से लेकर सन १९५५-५६ तक निम्नलिखित रूप से औषधालयों में वृद्धि हुई:—

सन् १९५०-५१ में	७
सन १९५१-५२ में	२
सन् १९५२-५३ में	—
सन् १९५३-५४ में	३४
सन् १९५४-५५ में	३५
सन १९५५-५६ में	७१
सन् १९५०-५१ के पूर्व के	३४३
पूर्ण योग :—	४९३

चारसौतराण् औषधालय मात्रः

सरकार ने औषधालयों की वृद्धि के साथ कालेजों की प्रगति के लिये सन् १९५५ के बजट में २०,००० की धनराशि स्वीकृत की इसके अन्तर्गत जयपुर व उदयपुर के आयुर्वेदिक महा विद्यालयों में निम्नांकित स्टाफ व साधनों की पूर्ति की गई।

आयुर्वेदिक कालेज जयपुर में निम्नलिखित जगहों की वृद्धि हुई।

(१) लेकचरार एक स्थर १५०-१०-२५०

(२) दवाकूटक दो व अनुचरस्थर २५-१-३०

इसके अतिरिक्त ५०) पचास रुपयों के प्रत्येक अलाउन्स पांच स्वीकृत किये गये जिसमें चार आयुर्वेदिक कालेज, उदयपुर के लिये हैं।

(१) विद्यानाध्यापक दो अलाउन्स।

(२) पेथोलोजिस्ट अलाउन्स एक।

(३) लेडी डाक्टर अलाउन्स एक।

(४) सर्जिकल अलाउन्स एक।

इस प्रकार आयुर्वेदिक कालेज का स्तर कुछ बड़ा है सन् १६५५-५६ के बजट में आयुर्वेदिक कालेज के लिये निम्नांकित रूप से धनरासी स्वीकृत की गई है जयपुर महाविद्यालय में आतुरालय के लिये २०,०००) की धनरासी भवन निर्माण के लिये स्वीकृति हुई व ६,७२० की धनराशी उदयपुर आयुर्वेदिक महाविद्यालय में धात्री उपवैद्य शिक्षण केन्द्र चालू करने के लिये स्वीकृत हुई। जिसके परिणाम स्वरूप २६ सितम्बर को उदयपुर आयुर्वेदिक महा विद्यालय में धात्री उपदेश शिक्षण केन्द्र संचालित हो चुका है। और इस समय ६० उपवेध और नर्सा शिक्षा प्राप्त कर रही है।

इस वर्ष राजस्थान के सब ही अभाव ग्रस्त जिलों में कुल ७० औषधालय खोले गये है और २०० प्रारम्भिक चिकित्सा सहायक पेशगर्म जिलाओं की व्यस्था भी सरकार के स्वीकृति के अनुसार की जा रही है। जो प्राथमिक व माध्यमिक ग्राम शिक्षण शालाओं के शिक्षकों को दी जाकर चिकित्सा के अभाव ग्रस्त क्षेत्रों में चिकित्सा की आरम्भ सुविधा पहुंचाने के साथ २ वहां के निवासियों को ऋतुओं के अनुसार खान पान रसाहन, आदि की व्यवस्था बताई जाकर स्वास्थ्य के नियम पालन की और आकर्षित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस वर्ष ६६,००० रुपया सार्वजनिक आयुर्वेदिक एवं होमियोपेथिक सार्वजनिक संस्थाओं को वितरित किया जा रहा है।

सरकार ने इसी वर्ष आयुर्वेद में सर्वांगीण प्रगति करने की दृष्टि से एक आयुर्वेद विकास बोर्ड की स्थापना माननीय मुख्य मंत्री राजस्थान सरकार की अध्यक्षता में की। जिसके मनोनित अध्यक्ष माननीय श्री गौरीशंकरजी आचार्य नियुक्त हुवे इस वर्ष भारतीय पन्जियन बोर्ड के अन्तर्गत लगभग २००० चिकित्सकों का रजिस्ट्रेशन राजस्थान में हो चुका है।

सरकार ने अधिक से अधिक आयुर्वेद की चिकित्सा के विस्तार के लिये द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी ५२,३४,००० की धनराशी स्वीकृति की है जिसके अन्तर्गत आगामी सन् १६५६-५७ वर्षीय बजट में ३,००,००० : अतिरिक्त धनराशि स्वीकृत की है आगामी वर्ष के लिये राजस्थान में ७५, आयुर्वेदिक औषधालय खोलने की योजना सरकार के सामने भेजी जा चुकी है। करीब ४०,००० : की धनराशी आयुर्वेदिक कालेजों के विकास के

लिये काम में आवेगी और १२,००० : की धनराशी विभाग के संभावित कार्य वृद्धि को ध्यान में रखते हुवे अतिरिक्त स्टाफ में वृद्धि की जावेगी। जिसके अन्तर्गत बीकानेर में एक निरीक्षक कार्यालय नवीन रूप में प्रारम्भ होगा। इस वर्ष सात आयुर्वेदिक निरीक्षक हैं एवम् एक यूनानी निरीक्षक है जिनके अर्न्तगत निम्नांकित रूप से औषधालयों का सीधा सावा सम्बन्ध है।

क्रम सं० निरीक्षक हैड क्वाटर	औषधालय संख्या विशेष विवरण
१. जयपुर	६६
२. जोधपुर	१०१
३. उदयपुर	१०१
४. बूँदी	४७
५. अलवर	४३
६. भरतपुर	६१
७. डूँगरपुर	२८
८. यूनानी जयपुर	१६

पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चार सौ नवीन औषधालय खुलेंगे। उच्चस्तरीय रसायनशाला की व्यवस्था होगी और अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय की सम्भावित रूपरेखा पूर्ण होने के साथ धात्री उपवैद्य शिक्षण केन्द्र पूर्व साधन सम्पन्न किया जावेगा।

इस वर्ष आयुर्वेद विभाग में एकीकरण का कार्य पूरा होकर वैद्यों, उपवैद्यों एवम् धात्रियों के फिक्सेसन का कार्य पूरा किया जा चुका है। इस वर्ष की समाप्ति तक सम्भवतः फिक्सेसन का अशिष्ट कार्य भी परिपूर्ण हो जावेगा। सरकार ने सरप्लस में आये हुवे सभी वैद्यों का स्थायित्व कर दिया है।

आयुर्वेद विभाग द्वारा लोकहित के इन कार्यों में सरकार की अभिरुचि होने के साथ साथ अनुसन्धान की ओर भी राजस्थान सरकार जागरुक हैं। विभाग के संचालक को जामनगर भेज कर अनुसन्धान योजना तैयार कराई गई और आशा है आगामी वर्ष तक इसको कार्यांवित किये जाने का प्रयत्न सफल हो सकेगा।



हमारी भारतीय चिकित्सा प्रणाली

[ले० कर्नल बशीरहुसैन जैदी एम० पी० अध्यक्ष आयुर्वेद तिब्बिया कालेज दिल्ली और भूतपूर्व प्राइममिनिस्टर रामपुर-राज्य]

"अब हम द्वितीय पंचवर्षीय योजना की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जहाँ एक ओर नदी घाटी योजना बाँध तथा फैक्ट्रीयों का निर्माण हो रहा है वहाँ अधिक आवश्यक यह है कि देश के स्वास्थ का निर्माण हो।

भारतीय दवाओं के प्रसार से सम्बन्धित होने के नाते मुझे निश्चय रूप से मालूम है कि यूनानी तथा आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की अवहेलना की जा रही है। इसमें किसी प्रकार का शोध कार्य तथा सुधार नहीं किया जा रहा है, एलोपैथी से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। यह सत्य है और मैं इससे इनकार नहीं कर सकता, क्योंकि संसार के कई देशों में उसमें प्रतिदिन शोध हो रही है और सुधार हो रहे हैं।

मेरे देश के अधिकांश व्यक्ति भारतीय चिकित्सा पद्धति में विश्वास रखते हैं। भारत में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध, प्रचलित तथा सस्ती है। ८० अथवा ८५ प्रतिशत लोग इस पद्धति पर निर्भर रहते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि हमें उत्तम, नवीन तथा अत्यधिक वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता है। यह सही है और मैं इसको मानता हूँ परन्तु भारत में पाँच लाख गांवों में तो आप ऐसा नहीं कर सकते और हमारे देशवासियों को हकीमों तथा वैद्यों के पास ही जाना पड़ता है। जिस पद्धति पर ८५ प्रतिशत व्यक्ति निर्भर रहते हैं और हम में अधिकांश जिस पर विश्वास रखते हैं उसकी अवहेलना क्यों की जाय? इस पद्धति में कुछ दवायें एलोपैथी से भी अधिक उपयोगी हैं।

कुछ दिन पहले दिल्ली में पीलिया का रोग फैला। अस्पतालों में बहुतों की मृत्यु हुई। जिनका इलाज वैद्यों तथा हकीमों द्वारा हुआ वे शीघ्र ही अच्छे होगए। मैं जानता हूँ और पूरे विश्वास के साथ कहता हूं कि भारतीय तथा पुरानी चीनी चिकित्सा में पीलिया के लिये विशेष इलाज है जो आधुनिक पद्धति में नहीं है। प्रत्येक में कुछ अच्छी बातें होती हैं और हमारी भारतीय चिकित्सा प्रणाली में बहुत से



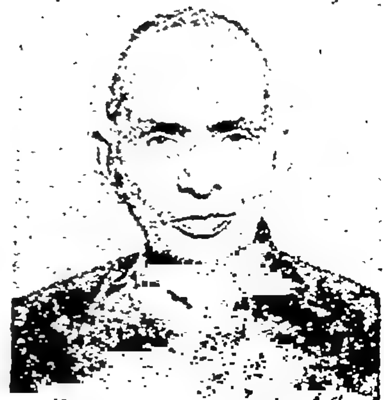
माननीय कर्नल बशीर हुसैन जैदी एम० पी०

भूतपूर्व दीवान रामपुर स्टेट

जिन्होंने पिछले दिनों संसद् में हुई आयुर्वेदिक बहस में आयुर्वेद विद्या और यूनानी के प्रचार का जोरदार समर्थन किया।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त श्री पं० सुन्दरलालजी

जिनका आयुर्वेद समर्थक लेख इस ग्रन्थ में अन्यत्र प्रकाशित है।



गुण हैं। यदि यह आधुनिक नहीं है, यदि इसमें शोध नहीं हुआ है, यदि यह सड़ी गली है तो हमें अपना समय, विचार, शक्ति तथा उद्योग से इसे पूर्ण बनाने में लगाना चाहिए। आखिर क्यों इस पद्धति की अवहेलना की जाय ? कोई कितना भी सम्माननीय क्यों न हो उसे अपनी गलत धारणाएँ किसी विषय के लिए नहीं बनानी चाहिए। बहुमत की इच्छानुसार चलना चाहिये। आप किसी पद्धति में विश्वास नहीं करते तो उसे कोसिये मत। यहीं जनतन्त्रवाद है। हम उत्तरदायी शासन में विश्वास रखते हैं। यदि हमारे देश-वासी भारतीय चिकित्सा प्रणाली में विश्वास रखते हैं तो अच्छा है और यह उचित है कि इसके साथ पूरा न्याय किया जाय।

यदि हम कुछ आंकड़े देखें तो पता चलेगा कि इस प्रणाली के प्रोत्साहन के लिए कितना सम्मान प्रदर्शित किया जा रहा है। स्वास्थ मंत्रालय के कुल बजट को अलग छोड़िये जो करोड़ों में है और जिसमें से बहुत ही कम भारतीय चिकित्सा प्रणाली पर व्यय किया जाता है। चिकित्सा के हेतु जो व्यय हुआ है उसी के लिए मैं कहूंगा। बजट में कुल २,१५,८४,६०० रु० रखा गया है। जामनगर में आयुर्वेदिक केन्द्र के लिए, ५,५०,००० रु० रखे गये हैं। जामनगर के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में फैली हुई दूसरी आयुर्वेदिक संस्थाओं के लिए ६ लाख रु० हैं जबकि पिछले बजट में १२ लाख रखे गये थे तो पिछली बार १२ लाख रुपया आयुर्वेदिक संस्थाओं के लिए था, इस वर्ष यह रकम पिछले बजट के मुकाबले में ६ लाख घटा दी गई है। पिछले वर्ष से ५० प्रतिशत यदि आप जामनगर को मिली सहायता भी इसमें सम्मिलत करते हैं तब (६ लाख + ५॥ लाख) यह केवल ११.५ लाख होती है। फिर भी यह १२ लाख से कम है जो पिछले वर्ष थी।

यूनानी चिकित्सा पद्धति की स्थिति और भी बुरी है। १९५५-५६ में यूनानी पद्धति के लिए ४ लाख रुपया रखा गया। इस बार करोड़ों रुपयों में से ४ लाख की रकम में भी हेरफार किया गया है और कुल रकम १,४०,००० रु० रखी गई है ऐसा क्यों ? यूनानी संस्थाओं के लिए ४ लाख की छोटीसी रकम भी घटाकर १,४०,००० करने में क्या औचित्य है ?

अनुदान की रकम तो केवल ३५,००० अथवा ५०,००० रु० है, दिल्ली का तिब्बिया

कालेज जिसका उद्घाटन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी सरीखे महा-पुरुष द्वारा हुआ और जिसकी स्थापना महान देशभक्त स्वर्गीय हकीम अजमल खां ने की केन्द्र ने अब तक उसके लिए कोई भी रकम नहीं दी। दिल्ली राज्य की सरकार की सहायता के बिना यह संस्था कभी की बन्द हो गई होती।

हकीम अजमलखां के जीवन काल में जब यह कालेज यथोचित ढंग से चलता था और इसे रुपये पैसों की कमी नहीं थी तब जर्मनी में शिक्षित एक प्रसिद्ध कैमिस्ट के आधीन एक शोध विभाग था। और उसने क्या किया, मैं केवल एक उदाहरण देता हूं, जिस आश्चर्यजनक दवा के विषय में हम इतना सुनते हैं और जो रक्तचाप तथा पागलपन के लिए सर्व श्रेष्ठ समझी जाती है। रौलफिया सर्पेन्टिना और सरसापीन यही बनाई गई। पहले प्रयोग तिब्बिया कालेज दिल्ली में ही किए गए।

जर्मनी और अमेरिका से प्रकाशित कई विवरणों को मैं उद्धृत कर सकता हूँ और सिवा की रिपोर्ट भी जो बताते हैं कि रौलफिया सर्पेन्टिना (Raulfia Serpentina) में से एलकैलोइडस् (Alkaloids) (अ) (ब) (स) और (द) की खोज तिब्बिया कॉलेज दिल्ली में ही की गई, चारों एलकोलिड तिब्बिया कालेज दिल्ली के शोध विभाग में खोजे गए शोध विभाग का क्या हुआ? एक लाख रुपये का यंत्र गायब हो गया क्योंकि यह सुरक्षित रखने के लिए भारतीय सरकार को दिया गया था। हमें कोई अनुदान नहीं मिल सकता कोई शोध कार्य नहीं किया जाता और संस्था को इस संस्था को अपने इस विभाग के द्वार बन्द करने पड़े।

चीन में अपनी पुरातन चिकित्सा पद्धति के लिए जो कुछ हो रहा है वह हममें से बहुतों की आँखें खोलने वाला है वह एक क्रान्तिकारी राष्ट्र है क्रान्तिकारी लोग पुरानी संस्थाओं परम्पराओं व चीजों में विश्वास नहीं करते हैं। वे अपनी पुरानी विरासत को उतनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित नहीं करते जितनी हम भारतवासी मौखिक रूप से अपनी महान "प्राचीन संस्कृति" और महान विरासत को करते हैं। चीन का कोई भी प्रकाशन ऐसा नहीं है जो वहां की चिकित्सा प्रणाली के बारे में न कहता हो, उस क्रान्तिकारी देश में वे अपनी महान् पुरानी पद्धति के विषय में कहते नहीं थकते हैं। चाइना पिक्चोरियल, चाइना रिकन्सट्रक्टस और चाइनीज न्यूज़ बुलेटिन की प्रतियां देखें तो उनमें प्रत्येक

अंक में कुछ न कुछ पढ़ने को मिलेगा। चाइना रिकन्सट्रक्टस में लिखा है।

"अतीत में बहुत बार चीन दवा दारू, शल्य चिकित्सा और Pharmacology में अग्रणी था। सामन्ती शासन ने हमारे पुरातन वैद्यक विज्ञान का विकास रोक दिया। उसके पश्चात् साम्राज्यवाद की राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभुता ने हमारे अपने आधुनिक शिक्षित डाक्टरों को इसके महान् मूल्यों से वंचित कर दिया।"

फिर भी चीनी दवाएँ जीवित रहीं। इसके जानने वालों ने करोड़ों मनुष्यों की सेवा की और उन्हें निरोग किया। स्वतंत्रता के बाद इनकी वैज्ञानिक जांच हुई और इन्हें आज के अति आधुनिक विचारों के अनुसार सही पाया गया।

हमारा केन्द्रीय स्वास्थ मंत्रालय आयुर्वेद की एक बार भी प्रशंसा नहीं करेगा। परन्तु आगे कहता है।

"चीन में इस समय पुराने और आधुनिक शिक्षित डाक्टर परस्पर सहयोग कर रहे हैं और एक दूसरे से बहुत कुछ सीख रहे हैं।

"स्वतंत्रता के बाद स्थापित स्वास्थ मंत्रालय का चीनी चिकित्सा विभाग बढ़ा दिया गया है और पेकिंग में पुरानी चिकित्सा की शोध के लिए एक राष्ट्रीय एकादमी स्थापित की गई है। शंघाई, नानकिंग, पेकिंग तथा दूसरे नगरों में पुरातन चिकित्सा के अस्पताल खोलें गये हैं।"

चीन में पश्चिमी चिकित्सा के बहुत से अस्पतालों ने पुरातन चिकित्सा विभाग खोल दिये हैं और उनमें पुराने चीनी वैद्यों को नियुक्त कर दिया है। चीनी चिकित्सा का पठन शीघ्र ही बहुत से मेडिकल कालेजों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जा रहा है और पश्चिमी चिकित्सा के डाक्टर आवश्यक चीनी चिकित्सा पुस्तकों का अध्ययन कर रहे हैं जो अब पुनः प्रकाशित की जा रही हैं। चीनी फारमेस्यूटिकल सोसाइटी सैकड़ों पुरानी चीनी दवाओं का अगले पांच वर्षों में मान निश्चित करने का विचार कर रही है।

"और चाइनीज मेडिकल एसोसियेशन जो पहले पश्चिमी चिकित्सा वालों के लिए ही खुला था उसने देश में अपनी सभी शाखाओं को अनुभवी चीनी वैद्यों की सदस्यता स्वीकार करने का आदेश दिया है।"

"चीनी चिकित्सा को आधुनिक चिकित्सा के अनुरूप बनने में अनेक वर्षों

के सहयोग और शोध कार्य की आवश्यकता होगी, इस कार्य के पूरा होने से चीन की स्वास्थ सेवा में बड़ा विकास होगा और चिकित्सा विज्ञान सर्वत्र उन्नत होगा।"

हमारे देश में भी आयुर्वेद और हकीमी के सम्बन्ध में ऐसा क्यों नहीं किया जा सकता?





वैद्यजी के कनिष्ठ भ्राता

वैद्यराज श्री पं० गंगाशरणजी शर्मा विशारद

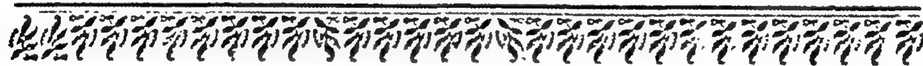
लाडनूँ (राजस्थान)

स्वास्थ्य हितके लिये जितनी भी जानकारी प्राप्त हो सके उत्तम है। इसी अभिप्राय से पुज्य भ्राताजी के अनुभव सिद्ध कुछ प्रयोग आपकी सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ। इनको लिखने और छपने में केवल २० दिन का समय मिला और प्रूफ तक भी देखा न जा सका अतः शीघ्रता में प्रेस की अशुद्धियों का रहना स्वाभाविक है—आशा है विज्ञ जन क्षमा कर उनको ठीक कर लेने की कृपा करेगें।

—गंगाशरण शर्मा



सामान्य पारिवारिक चिकित्सा



प० श्री गङ्गासहायजी शर्मा

रोगी निरीक्षण के अनन्तर औषधि व्यवस्था में संलग्न।

पं० श्री गङ्गासहायजी शर्मा

चिकित्सालय की वार्षिक, मासिक व दैनिक रोगी संख्या का मिलान करते हुए।

सामान्य पारिवारिक चिकित्सा*

मानव जीवन और स्वास्थ्य

मनुष्य का स्वभाविक जीवन १०० वर्ष का माना गया है। और वह स्वास्थ पर अवलम्बित है। मनुष्य की सुखद और मनोहर आशायें तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन सबका आधार स्वास्थ ही है। स्वास्थहीन मनुष्य स्वयं तो कष्ट पाता ही है साथ ही पारिवारिक जन और पड़ोसी के लिये दुखद बन जाता है।

रोग और अरोग

शरीर में रहने वाले वात, पित्त, कफ यह तीन दोष हैं। इन दोषों की विषमता अर्थात् घट बढ़ जाना रोग है, दोषों का बराबर सामन रूप में रहना आरोगता है। भौतिक शरीर के सञ्चालन के लिये महाभूत ही वात, पित्त, कफ के रूप में आहार विहार के अनुसार अविकृत और विकृत होकर शरीर की वृद्धि और ह्रास में संलग्न रहते हैं। यही, वात, पित्त कफ जब तक शरीर का पालन करते हैं, धातु नाम से कहे जाते हैं। और दूषण पैदा करने पर दोष नाम से पुकारे जाते हैं। जब तक यह दोष सम्मान अवस्था में रहते हैं, शरीर की वृद्धि करते हैं, और जब यह दोष घट बढ़ जाते हैं तब शरीर का ह्रास करते हैं।

कीटाणु

रोगों में रक्त कणों का विविध रूपान्तर ही (कीटाणु) हैं जो इन दोषों की घट बढ़ की कल्पना का परिणाम है।

सभी रोग इन दोषों से युक्त हैं और इन दोषों को समानता में लाना हमारी चिकित्सा का क्रम है।

आयुर्वेद ने सब रोगों में ज्वर को प्रधान माना है, और वह कई प्रकार का है।

---

*प्राणाचार्य वैद्य गंगासहाय जी से कतिपय आयुर्वेदिक विद्वानों ने अनुरोध किया था कि वे इस ग्रन्थ में अपने चिकित्सा सम्बन्धी अनुभवों को भी लिपिबद्ध करें। तद्-नुसार वैद्य जी ने इस प्रकरण में विविध रोगों पर अपना अनुभव लिखा है, जो आयुर्वेदिक वैद्यों एवं विद्यार्थियों के लिये बड़े काम की वस्तु है। —सम्पादक

द्विविध भेदों से ज्वर के पांच प्रकार

१. शारीरिक—जिसका सब शरीर पर प्रभाव हो।
   मानसिक—जिसका मन पर ही प्रभाव हो।
२. सौम्य—हल्का
   आग्नेय—तेज
३. अन्तर्वेगी—भीतर का वेग अधिक
   वहिर्वेगी—बाहर का वेग अधिक।
४. प्राकृत—प्रकृति के अनुकूल।
   वैकृत—प्रकृति के विपरीत।
५. साध्य—ठीक होने वाला
   असाध्य—ठीक न होने वाला

काल भेद से ज्वर के पाँच प्रकार

१. सन्तत—जो सात दस या बारह दिन निरन्तर रहकर उतर जाय।
२. सतत—दिन रात में दो बार चढ़ने उतरने वाला।
३. अन्येद्यु—प्रति दिन आने वाला।
४. तृतीयक—एक दिन छोड कर तीसरे दिन आने वाला।
५. चातुर्थिक—दो दिन छोड़ कर चौथे दिन आने वाला।

धातुओं के आश्रय भेद से सात प्रकार का ज्वर

१. रसगत—आहार सार से सम्बन्धित।
२. रक्तगत—रक्त से सम्बन्धित।
३. मांसगत—मांस से सम्बन्धित।
४. मेदोगत—मेद से सम्बन्धित।
५. अस्थिगत—हड्डी से सम्बन्धित।
६. मज्जागत—चर्बी से सम्बन्धित।
७. शुक्रगत—वीर्य से सम्बन्धित।

कारण भेद से ज्वर के आठ प्रकार

वात-पित्त-कफ-एक २ दोष से।

वात पित्त-वात कफ-पित्त कफ-दो दो दोषों से।

वात पित्त कफ-इन तीनों के मिश्रण से।

तीनो दोषों से होने वाले ज्वर को त्रिदोष या सन्निपात ज्वर कहा जाता है।

आठवां—आगन्तुज है-जो चोट आदि के लगने से होता है।

सन्निपात ज्वर नाम भेद से तेरह प्रकार का माना गया है

सन्धिक, अन्तक, रुग्दाह, चित्त विभ्रम, शीताङ्ग, तन्द्रिक, कण्ठ कुब्ज, कार्णिक, भुग्न, रक्तष्ठीवी, प्रलापक, जिह्वक, अभिन्यास।

सन्निपात ज्वरों की चिकित्सा नाम के आधार न कर दोषानुरूप की जाय तो विशेष नेत्र उपयोगी रहती है।

नामान्तर से प्रसिद्ध ज्वर

आन्त्रिक ज्वर— मोतीझरा

अपतानक ज्वर—गरदन तोड़

श्लेष्मक ज्वर— इन्फ्लुएञ्जा

वातश्लेष्मक ज्वर—निमोनिया

नामान्तर रहते भी सब इन्हीं दोषों के अन्तर्गत हैं, और दोषों के रूप से परिचित चिकित्सक दोषानुरूप चिकित्सा कर सर्वत्र सुगमता से सफलता पा सकते हैं।

विशेषत: पाये जाने वाले ज्वर गिने चुने हैं, उनमें पांच प्रकार का ऋतु ज्वर, श्लेष्मक, वातकफ ज्वर आन्त्रिक ज्वर या सन्निपात ज्वर हैं।

आन्त्रिक ज्वर सन्निपात जन्य है जो सर्व साधारण में मोतीझरे के नाम से प्रसिद्ध है, बहुधा यही सन्निपात के रूप में सब जगह पाया जाता है। और प्रत्येक ऋतु में होता रहता है।

अभिन्यास और अपतानक इस प्रान्त में कदाचित ही देखने में आते हैं।

ज्वर और ज्वर के उपचार प्रयोगों की भारी संख्या-कठिनाई को पैदा करती है। इनको यथावश्यक सीमित कर लेने पर चिकित्सकों में स्थिरता और चिकित्सा में समता होकर विश्वास की भावना बढ़ सकती है, और सर्व साधारण लाभ भी उठा सकेंगे।

इसी दृष्टि से यह प्रयोगावलि प्रस्तुत कर रहा हूँ इसमें कोई विशेषता नहीं सदा के व्यवहार के वही शास्त्रीय प्रयोग हैं। किन्तु कहीं कहीं ऐसे भी योग आ गये हैं—जिनके दृष्टि में आने से नये चिकित्सकों की हित की आशा की जा सकती है।

जिस प्रकार रोगों में ज्वर को प्रधान माना है उसी प्रकार उपचार प्रयोगों में क्वाथों को प्राथमिकता दी है—अतः क्वाथों के उपयोग पर विशेष बल देना चाहिये। क्वाथों का उपयोग निर्विकार उपयोगी और प्रति क्रिया रहित है।

पूर्ण व्यस्क के लिये काढ़े के द्रव्य की मात्रा २ तोला पर्याप्त है कम आयुवालों को आयु के अनुसार कम करके देनी चाहिये।

दो तोला काढ़े की औषधी को चतुर्गुण जल में पका कर आधा शेष रहे छान कर मधु या मिसरी मिलाकर देना चाहिये।

ज्वर के होने पर शीघ्रता न कर प्रारम्भ में पाचन क्वाथ देना चाहिये। पाचन क्वाथ के प्रयोग से ज्वर निरूपद्रव रह कर सुगमता से दूर हो जाता है।

शारीरिक दोष पाचकाग्नि को बाहर कर ज्वर को पैदा करते हैं। अतः बुखार के होने पर जबकि आहार को पचाने की शक्तीक्षीण हो गई है। आहार का ना लेना ही उत्तम है।

किन्तु अनाहार भी ऐसा न होना चाहिये जो प्राणों का विरोधी बन जाय। एतदर्थ दूध-चाय-फल शाक का जूस आदि जो उस अवस्था के अनुकूल हो। बल के बनाये रखने को देना चाहिये।

अनाहार से दोष सुगमता से पचकर शरीर हल्का रहता है और भूख बढ़कर मलमूत्र साफ आने लगता है।

सभी ज्वरों में जल गरम कर ठन्डा किया हुवा देना चाहिये किन्तु वायु और कफ से होने वाले ज्वर में जल कुछ गरम करके देना चाहिये और पित्त ज्वर में ठण्डा। ज्वर मुक्त व्यक्ती को दिन के अन्त में पथ्य देना चाहिये। पथ्य में—मूंग मसूर चना कुलत्थ और मोठ कायूष देश काल और प्रकृति को देखकर देना चाहिये। शाक में

परवल के पत्ते, बैंगन, परवल, करेला, कंकोडा, पित्त पापड़ा, पतली मूली, और गिलोय के पत्र देना चाहिये।

(ज्वरों के लिये पृथक २ दोषानुसार पाचन क्वाथ)

वात ज्वर पर किरातादि क्वाथ—

पूर्ण वयस्क के लिये मात्रा २ तोला जल में पकाकर शहद डालकर देने से वायु का ज्वर दूर हो जाता है।

पित्त ज्वर पर—पर्पटादि क्वाथ—

मात्रा पूर्ववत २ तोला मिसरी डालकर लेने से पित्त का ज्वर जलन उल्टी बेचैनी सब दूर हो जाते हैं।

कफ ज्वर पर—पुष्कर मूलादि क्वाथ—

इसको पचाकर लेने से बुखार खांसी कफ क्रम से ठीक हो जाते हैं।

(दो दोषों के मिश्रण से हुवे ज्वर के लिये)

वात पित ज्वर में पंचभद्र क्वाथ—

इसकी पूर्ण वयस्क को २ तोला मात्रा जल में पकाकर छानकर मिसरी डालकर देने से बुखार क्रम से दूर हो जाता है।

कफ, पित्त, ज्वर पर कण्टकार्यादि क्वाथ—

मात्रा २ तोला काढा कर लेने से कफ पित्त का बुखार और बुखार से होने वाली दूसरी पीडायें दूर हो जाती हैं।

वात कफ ज्वर पर लघु क्षुद्रादि क्वाथ—

मात्रा २ तोला पकाकर देने से वायु और कफ का बुखार, खांसी सांस पसली का दर्द सबके लिये उपयोगी रहता है।

सन्निपात ज्वर में ग्रन्थ्यादि क्वाथ—

मात्रा २ तोला पकाकर देने से तीव्र ज्वर, मूर्च्छा, प्रलाप, बेचैनी, श्वास, कफ छाती और पसली का दर्द, हिचकी अनिद्रादि सबके लिये अति श्रेष्ठ है।

(दोषों के अनुसार—ज्वर में क्वाथों का सीमित उपयोग)

सभी ज्वर वात, पित्त, कफ, इन दोषों से युक्त होते हैं। अतः इस प्रकार का ज्वर जो अकेले वायु से हो या कफ से अथवा कफ वात दोनों से।

नागरादि क्वाथ—बड़ा उपयुक्त रहता है, और यह जल्दी से बुखार को पचाकर दूर कर देता है।

(इस प्रकार का ज्वर जिसमें पित्त का संसर्ग हो वह एक दोष से हो अथवा दो दोष से)

गुड्च्यादि क्वाथ—बड़ा उपयुक्त है। इसके लेने से बुखार उल्टी जलन बेचैनी घबराहट सिरका दर्द सब दूर हो जाते हैं।

(इस प्रकार का ज्वर जहां तीनों दोषों का संसर्ग हो या त्रिदोष हो जाने की सम्भावना हो)

ग्रन्थ्यादि क्वाथ—बड़ा उपयुक्त और सफल रहता है। इसके उपयोग से बुखार खांसी, सांस, कफ, प्रलाप मूर्च्छा अनिद्रा, छाती और पसली का दर्द सुगमता से ठीक हो जाते हैं।

इस प्रकार तीनों दोषों से हुवे ज्वर की चिकित्सा इन तीन ही क्वाथों से बन आती है। और अन्यान्य बहु संख्यक प्रयोगों को ढूंढने और लौट बदल कर देने की आवश्यकता नहीं रहती।

क्रिया कुशलजन को आवश्यक है कि उपचार प्रयोगों में अनावश्यक औषधी को निकालने और आवश्यक को डालने का ध्यान रखें।

ज्वर में बढ़ी हुई प्यास के लिए षडंगक्वाथ—पित्त ज्वर की प्रबल प्यास में इसको पकाकर तय्यार कर जल ठण्डा कर देने से-कठिन प्यास बेचैनी उल्टी दाह यह सब दूर हो जाते हैं।

(ज्वर में उपयोगी चूर्ण)

आमलक्यादि चूर्ण—दस्त को साफ लाकर बुखार को दूर करने और परिपाक को ठीक करने के लिये। मात्रा ६ माशा जल के साथ।

भारंग्यादि चूर्ण—बुखार खांसी, सांस, कफ, शोथ शूल अफारे के लिये। अनुपान गरम जल।

(ज्वर में उपयोगी लेहिका)

अष्टाँगावलेहिका—मात्रा ३ माशा शहद के साथ लेने से सभी दोषों से उत्पन्न ज्वर-खांसी-सांस कफ हिचकी और दूसरे गले के रोग दूर हो जाते हैं।

चातुर्भद्रावलेहिका—शहद के साथ लेने से बुखार खांसी सांस और कफ को दूर करता है।

कटफलादि चूर्ण—शहद में लेने से बुखार खांसी, कफ, सांस, अरुचि, पेट की वायु दर्द और उल्टी, दूर होजाती है। मात्रा ३ माशा।

ज्वर में हितकारी वटिकायें

वैद्यनाथ वटी—दस्त को खुलासा लाकर बुखार कफ और खांसी को दूर करती और रुचि को बढ़ाती है। मात्रा १ या २ गोली जल के साथ।

सौभाग्य वटी—सर्दी-बुखार, खांसी, कफ, शूल, मूर्च्छा, प्यास, पसीना और अरुचि को दूर करने के लिये। मात्रा १ गोली जल के साथ।

ज्वरघ्नी गुटिका—नवीन ज्वर में दस्त को साफ लाकर बुखार को दूर करने के लिये। मात्रा १ गोली गिलोय के रस के साथ।

आरोग्यवर्धनी—रेचक, पाचक और दीपन है तथा ज्वर के लिये उपयोगी है।

सञ्जीवनी वटी—सभी दोषों से उत्पन्न ज्वर और अन्यान्य रोगों में उपयोगी है। मात्रा २ गोली यथावश्यक अनुपान के साथ।

सभी प्रकार के नवीन ज्वरों में व्यवहार के लिये उपयोगी रस

मृत्युञ्जय रस—सर्व प्रकार के ज्वरों के लिए उपयोगी। मात्रा मूंग प्रमाण शहद के साथ।

त्रिभुवन कीर्ति—सभी ज्वरों में व्यवहार के लिये उपयोगी। मात्रा १ रत्ती अदरख के रस में।

श्रीवेताल रस—सभी दोषों से उत्पन्न ज्वरों में उपयोगी। मात्रा १ रत्ती मधु के साथ।

रत्नगिरी रस—नवीन ज्वर में उपयोग के लिले उत्तम रस है। जो हरेक मात्रा के साथ ज्वर को कम करते हुवे ज्वर को निर्मूल करता है। मात्रा २ रत्ती मधू के साथ।

चन्द्रकला रस—सभी दोषों से उत्पन्न ज्वर और सभी ऋतुओं में व्यवहार योग्य, सभी प्रकार की ज्वर, वाहर और भीतर की दाह मूर्च्छा, अग्नि मांद्य और रक्त स्राव आदि में उपयोगी। मात्रा चना प्रमाण।

(कठिन और जीर्ण ज्वरों में उपयोग के लिये उत्तम रस)

ज्वर कुञ्जर पारीन्द्र—सभी प्रकार के ज्वर खांसी श्वास दौर्वल्य और क्षय के लिये उपयोगी मात्रा २ रत्ती मधू के साथ।

कस्तूरी भैरव—त्रिदोष जन्य ज्वर में वढ़े हुवे दोषों को शमन करने के लिये अत्युपयोगी है।

श्रीजय मंगल—जीर्ण ज्वर सामान्य ज्वर और वढ़े हुवे क्षय को दूर करने तथा वल को वढ़ाने के लिये मात्रा २ रत्ती जीरे का चूर्ण और मधु के साथ।

मकरध्वज—सान्निपात जन्य ज्वर में बढ़े हुवे दोषों की निवृत्ती कफ खांसी सांस हृदय की दुर्वलता और वल को वनाये रखने के लिये उत्तम है।

अष्टपक्क विषम ज्वरान्तक लोह—तीनों दोषों से उत्पन्न हुवे सव प्रकार के ज्वर

यकृत प्लीहा गुल्म और सभी प्रकार के विषय ज्वर, कामला पाण्डु, शोथ खांसी सांस ग्रहणी और अतिसार के लिये उत्तम मात्रा २ रत्ती।

मुक्ता पञ्चामृत—जीर्ण ज्वर और बढ़े हुवे क्षय रोग के लिये अमूल्य रत्न है। दूसरे ज्वर और खांसी के लिये भी अत्युपयोगी है।

वसन्त मालती—जीर्ण ज्वर, विषम ज्वरादि अनेक व्याधियां और खांसी को दूर कर बल और अग्नि को बढ़ाने में उपयोगी, मात्रा २ रत्ती पीपल के चूर्ण के साथ शहद में।

रसादि चुर्ण—सन्निपात आदि दूषित ज्वरों में हुई असह्य प्यास को रोकने के लिये बड़ा उपयोगी है। मात्रा २ रत्ती मधू के साथ।

उद्धूलन—सन्निपात ज्वर की शीतांग अवस्था में पसीने को रोकने और शरीर में गरमी पैदा कर रक्त सञ्चालन के लिये। शरीर पर मालिश करने का योग।

कर्णमूल पर लेप—सन्निपात ज्वर के होते हुवे, मध्य या अन्त में कान के पास होने वाले कर्णमूल पर लेप।

अष्टांग धूप—ज्वरी पुरुष के स्थान शुद्धी के लिये उपयोगी धूप।

प्रति सारण—सन्निपात ज्वर में जीभ के रुक्ष और खरदरी होने पर लगाने के लिये। इसके लगाने से जीभ नरम होकर रोगी को शान्ति मिलती है।

मन्थज्वर या मोतीझरा

इसके लिये हमारी प्राचीन राजस्थानी लौकिक चिकित्सा प्रणाली-उत्तम-निर्विकार और वैज्ञानिक है, यह एक भद्देसे रूप में होकर भी उपयुक्त और सफल है अतः इसीका उपयोग किया जाना अतिश्रेयस्कर है।

मन्थज्वर में रोग की अवस्था के अनुसार—प्राणीवटी १।१ २ समय से ३-४ समय तक नीचे लिखी औषधियों के जल के साथ देना चाहिये पूर्णवयस्क के लिये।

सौंठ	लौंग	दालचीनी	ब्राह्मी	तुलसीपत्र
१ मासा	३ नग	४ रत्ती	१ मासा	५ नग

इन सब को पानी में बारीक पीस छान कर २ तोला अन्दाज पानी करे और गरम कर गोली मुह में देकर ऊपर से इसे पिलादे।

मन्थज्वर में—आंतों के विकृत होने के कारण आंतें वायु से भरी रहती हैं और पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है।

ऊपर लिखे अनुपान में दी गई सौंठ पाचन क्रिया को सुधारती और पेट की वायु को बाहर करती है।

लौंग—कफ को पका कर बाहर करती और ब्राह्मी मस्तिष्क को बल देती है—तुलसी बुखार पर नियन्त्रण रखती तथा दाल चीनी इसके—कीटाणु नष्ट करती है—ब्राह्मी वटी हृदय को बल देकर दोषों का शमन करती है इस प्रकार यह क्रम बड़ा उपयोगी हो जाता है।

इन्हीं अनुपान की औषधियों में यथावश्यक दूसरी औषधियों का भी मिश्रण किया जाता है—जैसे दस्त को रोकने के लिये जायफल आदि।

इसके उपरान्त कफ को न बढने देने और हृदय को बल देने के लिये दिन में २-३ बार यथावश्यक—नागार्जुनाम-१/१रत्ती मुक्ता पंचामृत-४/४ रत्ती देना चाहिये यही मन्थज्वर का सामान्य चिकित्सा क्रम है।

किन्तु मन्थज्वर में इतने ही से समस्या हल नहीं होती कभी २ बड़ी कठिनाइयें सामने आजाती हैं जिनका सम्भालना कठिन हो जाता है।

मन्थज्वर में किसी २ को आरम्भ ही से या बीच में दस्त लगने लगते हैं और दस्त ढीला आने से पेट की हवा बढकर हृदय की गति को बिगाड़ती और मस्तिष्क को बाधित करती है रोगी बेसान होकर प्रलाप करता उठता चीत्कार करता है।

मन्थज्वर की दोनों अवस्था दस्त लगना और प्रलाप, बड़ी कठिन हैं किन्तु भारतीय चिकित्सा, इस पर सुगमता से काबू पा लेती है।

मन्थज्वर में दस्तावर औषधी देना बड़ा खतरे का काम है और इससे बड़ी हानि होती है मन्थज्वर में दस्त के ढीला आने से भी कुछ न कुछ बिगाड़ ही होता है।

ऐसे समय मल को बांधने के लिये पाचन क्रिया को सुधार ने वाली औपधी देना चाहिये दस्त को रोकने की औपधी देने से अफारा बढ़ जाता है और हृदय गति बदल जाती है।

इस समय दस्त को रोकने और हवा को निकालने के लिये पंचकोल अति उत्तम उपचार है इसको ६ माशा से १ तोला तक की मात्रा में लेकर पानी में पकाकर अनुपान में या पृथक देने से पाचन क्रिया सुधर कर पेट की वायु हट जाती है और हवा के न रहने से मल स्वयं बंधकर आने लगता है।

पेट की हवा कम होने से हृदय और मस्तिस्क को आराम मिलकर प्रलाप और बेचैनी कम हो जाती है किन्तु बढ़े हुवे प्रलाप में पंचकोल के साथ ६ माशा ब्राह्मी और डालना चाहिये।

मन्थज्वर में ज्वर को नियमित और प्रलाप, मूर्च्छा, अनिद्रा, शीतांग, कम्पन, श्वास, कास आदि को दूर करने के लिये अनुपान रूप में या पृथक (मन्थयादि क्वाथ) देना चाहिये इसको अवस्थानुसार दिन में २।३ वार देने से भयंकर प्रलाप व दूसरे उपद्रव दूर होकर रोगी बड़ी शान्ती पाता है।

मन्थज्वर में बहुधा असावधानी से निमोनियां भी पकड लेता है इसके लिये भी मन्थ्यादि बड़ा उपयुक्त रहता है और दूसरी औपधी देने की दरकार नहीं रहती और यह एक दूसरे का विरोधी नहीं होता।

मन्थज्वर में हृदय और नाड़ी के बल के लिए यूनानी प्रयोग (दवा अलमिस्क) और (जवाहर मोहरा) बड़े हितकर हैं इनमें से कोई एक दिन में २।३ वार देने से बड़ा हित होता है।

मन्थज्वर की शीतांग अवस्था और दस्त को रोकने तथा हृदय के लिये कस्तुरी भैरव बड़ा हितकर रहता है।

मन्थज्वर में दस्त को रोकने मलको बांधने के लिये आनन्द भैरव और संजीवनी भी उपयोगी है।

मन्थज्वर की उस अवस्था में जब की प्रलाप इतना भयानक और बढा हुवा हो जिसमें रोगी दिन रात किसी समय भी चैन न ले तो रात्री में विश्राम के लिये।

(वातराज वटी) के उपयोग से आराम मिल जाता है।

इस ज्वर में दूध ही सर्वोत्तम पेय है किन्तु यदि रोगी को दस्त अधिक या ढीला आने लगें तो दूध भूल कर न देना चाहिये, ऐसी अवस्था में दूध को फाड कर किया पानी-छुहारे का जूस अथवा चाय, जो विशेष पानी से बनी हो देना चाहिये।

ठीक होने पर पथ्य में जौ का पानी नीबू मिसरी डालकर कुछ दिन देना और अग्नि की वृद्धी होने पर दाल का जूस आदि देना चाहिये।

इसमें फलो का रस भी अनुकूल नहीं किन्तु वेदाना अनार गरम कर दिया जा सकता है।

मन्थज्वर में लिखी गई औषधियों के योग आगे देखिये।

मन्थज्वर में लिखी अनुपान की औषधिये-इसी तोल से अधिक मात्रा से चूर्ण के रूप में सुविधा जनक बना कर रखा जा सकता हैं।

(इन्फ्लूएञ्ज़ा) या दूषित प्रतिश्याय (जुकाम)

श्लेष्मक सर्दी से होने वाला एक प्रकार का दूषित प्रतिश्याय है। इसमें बार-बार सर्दी-बुखार खांसी-छाती में दर्द इत्यादि होकर बुखार सप्ताह से लेकर १२ दिन तक रह जाता है।

इसको दूर करने के लिये

नागरादि क्वाथ, बदरी क्वाथ, मधुयष्टी क्वाथ—तीनों ही उत्तम हैं—प्रकृति के अनुसार रात्रि में देना भी एक को पकाकर चीनी डाल कर दिन में २ बार सवेरे और इनमें से कोई चाहिये और साथ में—

शृंगाराभ्रक—लक्ष्मी विलास रस, अष्टांगा वलेहिका कोई भी एक प्रातः सायम् शहत के साथ-तथा कफ को उखाडने के लिये—

व्योषादि वटी—मरिच्यादि गुटी इस प्रकार की गोली मुह में रख कर चूसना चाहिये।

इससे सर्दी कफ जुकाम-बुखार-खांसी सब दूर हो जाते हैं।

सामान्य प्रतिश्याय (जुकाम)

जुकाम घ्राण मूल से शुरू होता है इसमें शरीर भारी नाक में खुश्की सिर में दर्द बेचैनी गले में खरखरी नाक से पानी, कभी पकामल आता है।

इसके बिगड़ने पर—नाक से पीला गाढा मल, छिलके जमना, सिर में पीड़ा, नाक से गंध और कदाचित खुश्की की अधिकता के कारण नाक से रक्त भी आने लगता है।

इसके लिये बदरी क्वाथ मधुयष्टी क्वाथ अति उपयोगी है इसे सर्दी में पकाकर और गर्मी में ३-४ घंटा भिगो कर छान कर चीनी १ तोला डालकर सवेरे और सोते समय पीना चाहिये।

खांसी इसके साथ होने से पूर्ववत शृंगाराभ्रक लक्ष्मी विलास आदि रस और चूसने के लिये व्योसादि मरिच्यादि खादिरी गुटी।

जुकाम की उस अवस्था में जब कि खुश्की अधिक हो सवेरे शाम और रात्री में अर्क गावजवां १/१ छटांक और शर्बत बनफशा २/२ तोला मिलाकर लेने से बडा लाभ होता है।

गर्भवती स्त्री का जुकाम

गर्भवती स्त्री को सर्दी से जुकाम और बुखार होने पर ऊपर लिखा अर्क और शर्बत देने से पूर्ण लाभ होता है और कोई बिगाड की आशंका नहीं रहती।

जुकाम की ऐसी अवस्था जिससे आधे शिर में या भ्रू स्थान पर भारी पीडा हो जुकाम रुका हो।

अथवा जुकाम के बिगड़ जाने और रुक जाने से नाक में सड़ांद होकर दुर्गन्ध आने लगी हो।

बन्डाल फल नग १ को कांच के पात्र में १ तोला जल में घन्टा भर भिगो कर मसल छान कर इस पानी की २-४ बूंदें मनुष्य को लेटा कर नाक के उस भाग की ओर जिधर पीडा हो या दोनों ओर सुंघाना।

इससे नाक द्वारा रुका पानी निकल कर पीडा शान्त हो जायगी किन्तु सूंघने से पैदा हुवे नये जुकाम और गले की पीडा के लिये २-३ दिन जुकाम की औषधी देना आवश्यक है अथवा पूर्ववत अर्क गावजवां और शर्बत बनफसा।

विगडे हुवे जुकाम से कदाचित नाक में कृमि भी पैदा हो जाते हैं जो नाक के मांस को खाकर नाक को चिठा देते हैं इन कृमियों को दूर करने के लिये भी बन्डाल का नस्य थोडे से समय में कृमियों को निकाल देता है।

पीनस—जो जुकाम के विगाड से ही होता है और घ्राण मूल को सड़ा कर पीप के साथ दुर्गन्ध देता रहता है। बन्डाल उपयोगी है

आनूप देश में रहने वाले मनुष्यों को निरन्तर जुकाम के रहने से नासास्थि फूल जाती और नाक में मांसाकुर नासार्श के रूप में हो जाता है, जो नाक से गिरने वाले मल या पानि को रोक देता है और रुका मल घ्राण मूल से श्वास नाली में उतरने लग जाता है। जो क्रम से श्वास की उत्पत्ति करता है इसको दूर करने के लिये।

नासार्श मलहर—*दिन में २ बार लगाना और प्रति श्याम की औषधी लेना* हितकर रहता है।

निरन्तर रहने वाले जुकाम खांसी के लिये उपयोगी अन्य उपयोगी औषधियां।

राज रसायन दन्ती चित्रक, हरीत की, चिन्तावलेह यह तीनों ही बड़े उपयोगी हैं। निरन्तर बने रहने वाले पुराने जुकाम जिससे श्वास रोग की उत्पत्ति की आशंका हो और खांसी सांस के लिये।

अग्निजार वटी *दिन में १ बार लेना* उपयोगी है इसको देख कर प्रकृति के अनुसार देना चाहिये।

घ्राण मूल की खुश्की श्वास की रुकावट में षड बिन्दु तेल भी उपयोगी है।

वातश्लेष्मक ज्वर (निमोनिया)

वातश्लेष्मक अधिकतर तप्त शरीर में वाह्य शीत के आघात से होता है।

साधारण अवस्था में अनुकूल चिकित्सा मिलने पर रोगी १ सप्ताह में ठीक हो जाता है रोग की प्रबलता व अन्य कारणों से दस बारह दिन, और पीप आदि हो जाने पर अधिक समय ले लेता है।

इसके लिये नीचे दिया प्रयोग इस प्रकार का सफल और उपयोगी प्रयोग है जिसका

व्यवहार अनजान व्यक्ति के द्वारा किया जाकर भी सफल ही रहता है और किसी प्रकार की विपरीत प्रति क्रिया नहीं होती।

औषध व्यवस्था

१. हरिद्रादि क्वाथ—रोग के बल के अनुसार दिन में २ से ३ बार तक काढा कर देना।

२. शृंगाराभ्रक—२।३ रत्ती शृंगभस्म १।१ रत्ती और काली मिरच का चूर्ण २।२ रत्ती तीनों को मिलाकर दिन २।३ बार शहद और अदरक के रस में।

३. दवाउल मिष्क—१।१ माशा दिन में २।३ बार।

४. मरिच्यादि गुटी—दिन में ५-७ चूसना।

५. पर्श्व शूलारी लेप—इसको पीसकर पसली पर लगाना, इस प्रकार औषध उपचार से कठिन से कठिन निमोनियाँ खांसी सांस तेज बुखार खून का गिरना छाती का सूजन दर्द आदि सुगमता से दूर होकर कुछ दिन में ही आरोग्यता मिलती है निमोनियां कफ वात प्रधान रोग है और यह प्रयोग कफ को पका कर पके आम को निजोड़ने के समान कफ को बाहर निकाल कर शरीर को नीरोग कर देता है।

निमोनियां में पीप का हो जाना

निमोनियां में पीप के पैदा हो जाने पर मुंह से असह्य दुर्गन्ध आने लगती और रोगी छटपटाता है। हृदय की गति बदल जाती है फिर धीरे २ कफ और रक्त मिश्रित पीप आने लगता है इस अवस्था के लिए भी यही उपचार बड़ा अमूल्य है जो थोड़े समय में ही इसको साफ कर आरोग्यता प्रदान करता है।

इसी पीप के कदाचित ऐसे रोगी भी देखने में आते हैं कि जिनको महीनों हो जाने पर भी रोग नहीं गया और वह व्यक्ति जहां बैठे वह स्थान दुगर्न्ध मय हो जाय और पूरी मात्रा में पीप मिश्रित रक्त और कफ निकलने पर कुछ शान्ती पाये।

ऊपर दिये प्रयोग ऐसे जीर्ण रोगियों के लिए भी सफल है और यथा विधी आवश्यक समय औषधोपचार करने से निर्मूल करता है।

उरस्तोय (प्लूरसी)

उरस्तोय भी तप्त शरीर में बाहर के शीत के आघात से होता है उरस्तोय

फुफ्फुसावरण के शोथ के रूप में हो, या पानी के रूप में, पूर्वोक्त निमोनियाँ के चिकित्सा क्रम से ठीक होता है। किन्तु पानी के सुखाने में समय लगता है।

इसके लिये यही औपध क्रम उत्तम और निर्विकार है यथावश्यक साथ में अन्य उपयोगी रस कल्याण सुन्दर, सर्वाङ्ग सुन्दर आदि दिये जा सकते हैं।

ऋतुज्वर (मलेरिया बुखार)

यह पांच प्रकार का है, इनमें से ही एक सन्तत है, जो एक सप्ताह से १२ दिन तक बना रहता है, इसकी उत्पत्ति मलेरिया से होते हुवे भी किनाइन उपयोगी नहीं रहता और इससे कोई हित न होकर बुखार अपनी अवधि पर ही उतरता है।

इसके लिये दार्व्यादि क्वाथ विषम ज्वर को बड़ा उपयोगी है। इसको दिनमें दोबार पका कर शहद डाल कर देने अथवा इसका ऐक्स ट्रेक्ट १-२ ड्राम, पानी मिला कर देने से बुखार की बेचैनी आदि शीघ्र ही दूर होकर बुखार थोड़ी अवधि में उतर जाता है। और फिर लौट कर नहीं होता।

ऋतु ज्वर (मलेरिया)—में गुड्च्यादि क्वाथ भी बड़ा उपयोगी है। इसका काढ़ा बनाकर या ऐक्स ट्रेक्ट के देने से बुखार जल्दी उतर जाता है। और उल्टी-जलन बेचैनी नहीं रहती। बाद में बुखार रोकने की औपधी देने से बुखार आसानी से रुक जाता है।

ऋतु ज्वर के लिये—देशी औपधियां जो जल्दी से जल्दी बुखार को रोकने वाली हैं वह उग्र हैं, उनमें सावधानी की जरुरत है, जो हल्की हैं, वह ज्वर को देरी से रोकती हैं। किन्तु इनमें विशेषता है कि इनके द्वारा रोका हुवा बुखार बार २ लौट कर नहीं होता।

मलेरिया बुखार की औषधियें अनगिनत फैली हुई हैं और मनुष्य, अपनी २ रुचि के अनुसार लेते हैं। अतः इसके लिये लिखना आवश्यक नहीं। किन्तु प्रचलित औपधियों के जब यह काबू के बाहर हो जाता है। तब देशी औपधियें उसको निर्मूल करने में समर्थ होती हैं।

दूषित मलेरिया के लिए

१. ऐक्सट्रेक्ट सुदर्शन या सुदर्शन चूर्ण दो समय प्रातः सायम् ।

२. वसन्त मालती १ रत्ती पुटपक्क विषम ज्वरान्तक लोह २ रत्ती चौसठी पिपली १ रत्ती प्रातः सायम् दो समय शहद में ।

३. महाज्वरांकुश ३-३ रत्ती दो समय बुखार चढ़ने से पहले तीन २ घंटे बाद,

विना औषधी के मलेरिया बुखार को रोकने के लिए

मल्लतेल—इसको बुखार चढ़ने से घन्टा दो घन्टा पहिले हाथ पैरों के नख के अग्र भाग में लगाने से सर्दी लगना पहिले दिन बन्द हो जाता है और दूसरे दिन बुखार भी ।

अतीसार

अतीसार—अहार के न पचने से शेष रहे कच्चे रस को आम कहते हैं, अतः इसको रोकने के बजाय परिपाक ठीक करना इसकी उत्तम रीति है विना पचे खुराक के अंश को रोकने से रोग की जड़ प्रबल होती है ।

अमातिसार नया हो या पुराना

धान्य पंचक—अति श्रेष्ठ औषधि है इसका काढा या ऐक्स टैक्ट के लेने से पाचन क्रिया ठीक, आंव निर्मूल हो जाता है और फिर बार २ लौट कर नहीं होता ।

इस प्रकार का आम जिसके लिये बहुत सी बार जाने पर बड़ी ऐठन और मरोड़ के बाद कुछ बूंदे आंवकी गिरे अथवा रक्त मिश्रित होकर आये ।

शत पुष्प क्वाथ—अति उत्तम है इसको दिन में २।३ बार लेने से आंव शीघ्रता से निकल कर ऐठन मरोड़ मिट जाती है और मल आने लगता है ।

पेट में आंव के अत्यधिक और वायु भरी रहने के साथ मल के थोड़ा थोड़ा आने में ।

शुठयादि चूर्ण—बड़ा उपयोगी है इससे आंव का बनना बँद होकर दस्त साफ आने लगता है और मरोड़ मिट जाती है और भूख अच्छी लगती है ।

रक्त मिश्रित अमातिसार में

शतपुष्प चूर्ण—भी बड़ा उपयोगी है इसको ६।६ माशा की मात्रा में दिन में ४-५ बार लेने से आमातिसार में बड़ा हित होता है।

रक्त का भाग विशेष और आंव मिश्रित मल के लिए

इन्द्रयवादि चूर्ण—बड़ा उपयोगी है, पुराने रक्तातिसार के लिए जो आम सहित हो

द्विगुणोत्तर चूर्ण—तक्र के अनुपान से लिया जाने से रक्तातिसार को निर्मूल कर देता है पथ्य में किंचित लघु अन्न।

अमातिसार के लिये ऐक्स टैक्ट कुरज बड़ा उपयोगी है।

लाई चूर्ण—सर्वातिसार में उपयोगी है पक्कातिसार में आनन्द भैरव कर्पूरादिवटी सिद्ध प्राणेश्वर लोकनाथ उत्तम है।

ग्रहणी-अग्निमांद्य

परिपाक के बिगड़ने पर निरन्तर कुपथ्य करने से ग्रहणी होती है। और आम सहित अनेक प्रकार का मल आता है। अधिक समय हो जाने से दस्त कम होकर मल एक बार में इतना आजाता है जिससे उठना कठिन होजाता है, शरीर की चर्बी घटकर शरीर क्षीण हो जाता है। आहार नलिका में दाह और जीभ के माँस में कच्चापन आ जाता है। खाने की इच्छा होती है किन्तु पचता नहीं। ग्रहणी की चिकित्सा अन्न लेते बड़ी कठिन है। यदि ठीक भी हो तो समय अत्यधिक लगता है। अन्न छोड़कर दूध या तक्र पर रहने से थोड़े ही समय में रोग निर्मूल होकर स्वास्थ पहिले से भी अच्छा हो जाता है।

ग्रहणी की प्रयोग के रूप में चिकित्सा न केवल पर्पटी अपितु आनन्द भैरव, अग्नि तुण्ठी, इनको भी बढ़ाकर देने से रोग दूर हो जाता है।

(ग्रहणी रोग की सामान्य चिकित्सा)

अग्नि कुमार रस, या आनन्द भैरव, या अग्नि तुण्डी वटी, या सञ्जीवनी वटी,

कोई भी एक यथारुचि सवेरे शाम धान्यपाचक क्वाथ या धान्यपाचक के एक्सट्रैक्ट के साथ, अथवा पञ्चकोल या पञ्चकोल के एक्सट्रैक्ट के साथ।

सिद्ध प्राणेश्वर, लोकनाथ रस, या ग्रहणी कपाट कोई एक-शहद के साथ दो समय हिंग्वेष्टक चूर्ण दोनों समय भोजन के प्रथम ग्रास में समय २ पर पेट के भारी पन या जल्दी पचने और वायु के अनुलोमन के लिये—शँखवटी, चित्रक वटी १।२ लेना हल्का आहार और दूध या तक्र लेना। इस प्रकार भी अधिक समय तक औषधी लेने और पथ्य में रहने से रोग के मिटने की आशा की जा सकती है। वास्तविक लाभ के लिये पर्पटी का उपयोग ही सर्वोत्तम है।

ग्रहणी में पेट के भारी होने और अफारे के लिये—ग्रन्थीकादि चूर्ण, पञ्चकोल, हिंग्वाष्टक, भास्करलवण, यह देने से अग्नि मांद्य, पेट का वायु, दर्द अर्श, ग्रहणी, हृदरोग, कृमी, आदि, उचित अनुपान से हितकर होते है।

ग्रहणी और अग्नि मांद्य में पर्पटी का प्रयोग

पर्पटी आयुर्वेद की अत्युत्तम देन है, जिसने अपनी उपयोगिता से चिकित्सकों को मान दिलाकर आयुर्वेद का स्थान ऊँचा रखा। जीवन से निराश संग्रहणी, मन्दाग्नि, के इस प्रकार के मनुष्य जिनका शरीर रक्त मांस और मज्जा के क्षीण हो जाने से चमड़ी लटकने लगी, या जिनमें पूरी तरह बात चीत करने या शारीरिक आवश्यकतायें पूरी करने की भी शक्ती नहीं। पर्पटी से अन्न और गिने चुने दिनों में ही आरोग्यता पाकर स्वस्थावस्था से अधिक स्वस्थ और कान्ति मान होजाते हैं।

जिन मनुष्यों में १ तोला दूध के पचाने की शक्ती नहीं, वह मनुष्य आश्चर्य जनक मात्रा में दूध लेते हुवे, प्रति दिन प्रति पौण्ड से शारीरिक वृद्धी करते हुवे, नीरोगता और बल दोनो ही एक साथ, पालेने हैं।

इस क्रम की उपयोगिता से मुग्ध होकर दूसरे चिकित्सक भी इस को अपनाने लगे हैं। पर्पटी मुख्यतः—रस पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, लोह पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, विजय पर्पटी, इन नामों से पांच प्रकार की हैं। और यह जितने अधिक संस्कार किये पारद से बनी होगी उतनी ही उत्तम होगी।

चिकित्सक-रोग-ऋतु-और प्रकृति को देखकर यथा रुचि जहाँ जिसका देना उचित

समझते हैं देते हैं। यथा विधि वनाई गई पर्पटी सभी उत्तम होती है। पर्पटी प्रारम्भ में खूब सोच समझ कर देनी लेनी चाहिये। दुर्वल शरीर में जितनी फल प्रद होती है, उतनी वलवान शरीर में नहीं।

पर्पटी दूध और वक्र दोनों में ही दी जाती है। दूध के साथ प्रत्येक ऋतु में, और वक्र के साथ शीत चाल में उपयोगी रहती है। दूध और वक्र प्रकृति को देखकर देना चाहिये।

वक्र का प्रयोग विशेष उपयोगी होते हुवे भी दूध का प्रयोग निर्विघ्न है। दूध में वक्र के समान विशेष सावधानी की दरकार नहीं। वक्र के प्रयोग में थोड़ी सी भी असावधानी घातक हो जाती है।

चीण व्याम रोगी सर्दी का समय और पर्पटी पूरी मात्रा में दी जारही हो और वक्र भी यथेष्ट मात्रा में लिया जाता हो। ऐसे समय में रोगी यदि असावधानी से ठण्ड लगाले। साथ ही कुछ बुखार भी होजाय तो बड़ी कठिन समस्या वन जाती है। एसे में वक्र लेने से तुरन्त ही प्लूरसी या निमोनिया हो जाता है, उस हालत में यदि वक्र वाले को वक्र न दिया जाय तो एका एक उसकी समानता की दूसरी खुराक जा नहीं सकती, और न उस मात्रा में पर्पटी ही दी जा सकती है। इस प्रकार अकारण प्रयोग में बांधा पड़कर उल्टा गले पड़जाता है। अतः वक्र के प्रयोग में सावधानी की दरकार है।

दूध के प्रयोग में यह कठिनाई नहीं। दूध का सेवन करने वाले को यदि सर्दी लग जाय बुखार होजाय भय नहीं। दूध चालू रहता है। और पर्पटी का क्रम टूटता नहीं है।

दूध के प्रयोग में दूसरी ज्वरघ्न औषधी भी दी जा सकती है। अतः कौन व्यक्ति तक्र और कौन व्यक्ति दूध के योग्य है। प्रारम्भ में पूर्ण निश्चय कर पर्पटी शुरू करनी चाहिये।

वीच में लौट बदल करना ठीक नहीं रहता, इससे रोगी का मन शंकित हो जाता है। पर्पटी प्रत्येक ऋतु में दी जाती है यदि विशेष गर्मी हो तो कृत्रिम ठण्ड वनाये स्थान में रह कर लेना चाहिये, और अनुपान में भी शीत वीर्य औषधी देनी चाहिये।

जैसे जीरे और धनिये का क्वाथ। पर्पटी निरन्न और सान्न दोनों प्रकार से दी जा सकती है। ऐसे व्यक्ति जो स्वस्थ होते जो स्वास्थ को उन्नत करना चाहें, या जो शरीर में दुर्बल हैं, और शरीर को भारी करना चाहें। तथा ग्रान्थ्यक्षय-अस्थिक्षय के रोगी और गण्डमाल, वालों को सान्न ही देना ठीक रहता है। किन्तु संग्रहणी मन्दाग्नि के रोगी को अन्न सहित देने से रोग निर्मूल होने में शङ्का रहती है और समय विशेष लगता है।

पर्पटी में दूध और तक्र की मात्रा रोग और मनुष्य की प्रकृति पर आधारित है। स्वभावतः रुचि रखने वाले व्यक्ति को ऊपर में ३२ सेर दूध प्रतिदिन लेते देखा है और साथ में एक सेर बेदाना अनार भी।

तक्र लेने वालों में २५-२६ सेर दूध का तक्र जो लगभग १ मन के होता है लेते देखा है। ऐसे व्यक्तियों की शारीरिक तोल प्रतिदिन १ पौंड से बढ़ते पाया है।

पर्पटी का प्रयोग गृहस्थ के झंझट से बच कर एकान्त और मन लगने वाले हवादार स्थान में करना चाहिये। जहाँ शौचादि की व्यवस्था नजदीक में हो। परिचारक योग्य, सुशील और नम्र प्रकृति का समझदार होना चाहिये।

दूध बराबर एकसा होना और गौ का ही होना चाहिये। गाय न ज्यादा समय और महीने के भीतर की ब्याई हुई हो। दूध देने वाला एक ही व्यक्ति हो, और दूध हरेक के सामने न दिया जाकर एकान्त में लेना चाहिये।

दूध की तोल हरेक को न बतानी चाहिये, और हर बार छान कर पीना चाहिये। दूध में मीठा नहीं डालना चाहिये। किन्तु अम्ल पित्त वालों को किञ्चित् मीठा डाला जा सकता है। दूध को एक उफान का गरम कर गरम पानी से भरे भगोने में दूध के पात्र को रख कर नीचे किञ्चित् अग्नि रखनी चाहिये।

शीत काल में दूध सवेरे का तीसरे पहर तक लिया जा सकता है और साम का, सोते समय तक। ग्रीष्म और वर्षा में सवेरे का दूध १२ बजे तक साम का सोते समय तक। सोने के बाद भी प्यास लगने पर दूध लिया जा सकता है। मध्यान्ह के बाद एक दो समय मौसमी या बेदाने का रस देना चाहिये।

पर्पटी शुरू करने पर न तो एक साथ पर्पटी बढ़ाना और न एक साथ अन्न बन्द

करना चाहिये, और न एक साथ ही अधिक मात्रा में दूध लेना चाहिये। प्रारम्भ में दूध का अजीर्ण हो जाने से आखिर तक वास्तविक रुचि नहीं होती।

पर्पटी हल्की मात्रा में एक रत्ती से शुरू कर धीरे २ अन्न की मात्रा क्रम से घटाकर दूध बढ़ाना चाहिये। पहले एक समय का अन्न बन्द करना और जब दूध २-२॥ सेर तक हो जाय, तब भी एक दो दिन एक समय थोड़े २ भात पर रह कर पीछे अन्न बन्द कर देना चाहिये। ऐसा करने से अन्न पर अरुचि होकर दूध पर रुचि बन जाती है। इसके बाद जब भूख या प्यास लगे या खुश्की मालुम हो, दूध ही लेना चाहिये। इस तरह हर घन्टे आधे घन्टे से दूध पीते रहना चाहिये। दूध एक बार में इतना ही लेना जितने में पेट पर भारी पन न हो।

पर्पटी में प्यास लगने पर प्यास दूध से रोकनी चाहिये दूध से न रुकने पर दूध में पानी अधिक डाल कर लेना। अथवा मौसमी, अनार का रस, अथवा नारियल का पानी पीना और यदि किसी प्रकार भी प्यास न रुके तो जीरे धनिये का ठण्डा पानी पीना चाहिये।

ज्यादा पानी पीने से फिर दूध चढ़ता नहीं है और रोग के मिटाने में शंका रह जाती है। दूध के प्रयोग में दस्त का पतला आना या अधिक आना अच्छा रहता है, किन्तु मल में हल्का पीलापन रहना चाहिये। मल का गहरा पीला अथवा हरा होना पित्त के बढ़ जाने का चिन्ह है। इसको ठीक करने के लिये सोंफ धनिया जीरे का पानी देना चाहिये।

दस्त जैसा दूध लिया जाय, उसी के अनुरुप हो, दूध एक पाव जाय और दस्त ५-४ लग जाय ठीक नहीं। दूध की यथेष्ट मात्रा रहते यदि दस्त विशेष आयें तो डर नहीं किन्तु रंग सफेद न होकर हल्का पीला हो।

पर्पटी में मलका शुरू में ही कठिन हो जाना—बाद में ठीक नहीं रहता। अतः दस्त ठीक न होने पर हरड या अमल तास, अनुपान में देना चाहिये। सनाय का प्रयोग ठीक नहीं। आंतो में खराश कर आंव का आना शुरू कर देता है।

इसमें कदाचित् वायु का अनुलोमन न होने या मल के संग्रह होने से वमन भी हो जाती है। और वमन होने से दूध पर अरुचि होती है। ऐसे समय दूध की मात्रा

घटा कर रोचक स्वादुलेह जो मुनक्का आदि से बना हो, और वायु के अनुलोमन के लिये हिंगु पर्पटी, चित्रक वटी आदि देनी चाहिये। पर्पटी की मात्रा बढ़ने पर गर्मी से भी किसी किसी को उल्टी हो जाती है, अतः सावधानी से मात्रा बढ़ानी चाहिये। पर्पटी में बहुधा मस्से भी जोर कर जाते हैं। ऐसे समय औषधी लगाना, धूनी देना, दस्त साफ लाने के लिये हरड़ का लेना अच्छा है। मस्से से खून आने पर नागकेशर का चूर्ण ३।३ माशा खून खराबा ३।३ माशा सत रसोत ३।३ माशा दूध के साथ देना या दूसरी कोई उपयुक्त औषधी देकर खून को रोकना चाहिये।

सर्दी जुकाम बुखार होने पर तदुपयुक्त औषध पर्पटी लेने के साथ दी जा सकती है। कफ खांसी के लिये शगेराम आदि कोई भी औषधी सवेरे शाम शहद में और रात्री में मधुयष्टी या बदरी काथ जो आगे दिया है शहद डालकर देना चाहिये।

पर्पटी के साथ उत्तम स्वास्थ और लाभ के लिये अन्य रसों का प्रयोग भी किया जा सकता है। जैसे पर्पटी के बाद दिन में २ बार बृहद् पूर्णचन्द्र रस, सिद्ध प्राणेश्वर लोक नाथ, ग्रहणी कपाठ, नपारीवल्लभ, नवायसलोह, आदि देना चाहिये।

पर्पटी के प्रयोग में पत्नी का पास में रहना ठीक नहीं केवल माता पिता बहन भाई, मित्र, या प्रकृति से विज्ञ सेवक का रहना उचित है।

पर्पटी प्रत्येक ऋतु में दी जाती है किन्तु गर्मी में कृत्रिम शीत स्थान और सर्दी में कृत्रिम गरम स्थान रहने के आवश्यक साधनों के साथ होना चाहिये।

पर्पटी अनुकूल होते, कभी असह्य प्यास नहीं होती, और न किसी प्रकार की घबराहट या बेचैनी ही—यह सब अननुकूलता में ही होते हैं।

पर्पटी की मात्रा में बड़े अनुभव की दरकार है। अनभिज्ञता से मात्रा के क्रम में अन्तर पड़ने से रोगी कष्ट पाता और हित का अनहित होकर, पर्पटी को ठेस लगती है। अतः हरेक बात का ध्यान रखते बढ़ाना चाहिये।

पर्पटी मात्रा क्रम

पर्पटी की हरेक मात्रा के साथ भुना हुवा जीरा बारीक पीस कर १।१ माशा डालना चाहिये और रोगानुसार अनुपान के साथ जीरा सफेद ३ माशा धनिया ३ माशा कूट कर और काथ बनाकर ठण्डा कर देना चाहिये। जीरे धनिये का काढ़ा प्यास को

रोक कर अग्नि को बढ़ाता, आम को पैदा नहीं होने देता और पेशाब को साफ लाता है।

पर्पटी एक रत्ती से शुरू कर रोगी की ओर से तसल्ली होने पर और सब प्रकार से प्रकृति का निश्चय हो जाने पर बढ़ाना चाहिये पर्पटी की प्रत्येक रत्ती रोगी के बल अग्नि और सहन शीलता के अनुसार २।३ दिन एक ही तोल पर रोक कर बढ़ाते रहना चाहिये पर्पटी की हल्की मात्रा में यदि स्वास्थ अच्छी उन्नति कर रहा हो तो ऊँची मात्रा के लिये विशेष जोर न लगाना चाहिये पर्पटी दश रत्ती के ऊपर नहीं देनी चाहिये, किन्तु आवश्यक होने से दिन बढ़ा दिये जांय।

दिन	मात्रा पर्पटी की	खुराक	प्रातः	सायम्	कुल	
प्रथम दिन	१ रत्ती	दो	½	½	१	रत्ती
द्वितीय दिन	,,	,,	..	,,	१	,,
तृतीय दिन	,,	,,	,,	,,	१	,,
चतुर्थ दिन	२ रत्ती	,,	१	१	२	,,
पञ्चम दिन	,,	,,	,,	,,	२	,,
षष्टम दिन	,,	,,	,,	,,	२	,,
सप्तम दिन	३ रत्ती	,,	१॥	१॥	३	,,
अष्टम दिन	,,	,,	,,	,,	३	,,
नवम दिन	,,	,,	,,	,,	३	,,
दशम दिन	४ रत्ती	,,	२	२	४	,,
एकादश दिन	,,	,,	,,	,,	४	,,
द्वादश दिन	,,	,,	,,	,,	४	,,
त्रयोदश दिन	५ रत्ती	,,	२॥	२॥	५	,,
चतुर्दश दिन	,,	,,	,,	,,	५	,,
पञ्चदश दिन	६ रत्ती	,,	३	३	६	,,
षष्टदश दिन	,,	,,	,,	,,	६	,,
सप्तदश दिन	७ रत्ती	,,	३॥	३॥	७	,,
अष्टदश दिन	,,	,,	,,	,,	७	,,

दिन	मात्रा पर्पटी की	खुराक	प्रातः	सायम्	कुल	रत्ती
एकोन विंशति	८ रत्ती	दोबार	४	४	८	"
विंशति	"	"	"	"	८	"
एक विंशति	९ रत्ती	"	४॥	४॥	९	"
द्वा विंशति	"	"	"	"	९	"
त्रयो विंशति	१०	"	५	५	१०	"
चतुर्विंशति	"	"	"	"	१०	"
पञ्च विंशति	९ रत्ती	"	४॥	४॥	९	"
षट् विंशति	"	"	"	"	९	"
सप्त विंशति	८ रत्ती	"	४	४	८	"
अष्ट विंशति	"	"	"	"	८	"
नव विंशति	७ रत्ती	"	३॥	३॥	७	"
त्रिंशत	"	"	"	"	७	"
एक त्रिंशत	६ रत्ती	"	३	३	६	"
द्वा त्रिंशत	"	"	"	"	६	"
त्रय त्रिंशत	५ रत्ती	"	२॥	२॥	५	"

५ रत्ती आजाने पर पर्पटी की मात्रा इसी तोल पर रोका जाय।

दिन	मात्रा पर्पटी की	खुराक	प्रातः	सायम्	कुल	रत्ती
चतुस्त्रिंशत	५ रत्ती	"	२॥	२॥	५	"
पञ्च त्रिंशत	"	"	"	"	५	"
षट् त्रिंशत	"	"	"	"	५	"
सप्त त्रिंशत	"	"	"	"	५	"
अष्ट त्रिंशत	"	"	"	"	५	"
नव त्रिंशत	"	"	"	"	५	"
चत्वारिंशत	"	"	"	"	५	"
एक चत्वारिंशत	"	"	"	"	५	"

अथवा जितने समय पर्पटी देनी हो उन दिनों की पूर्ति होने तक ५ रत्ती आजाने

चाहिये। और ५ रत्ती पर्पटी के साथ ही अन्न शुरू कर देना चाहिये। इस प्रकार यथावश्यक १० रत्ती तक क्रम से चढ़ाकर फिर उसी क्रम से उतार कर जब पाँच रत्ती पर्पटी रहे तब पथ्य शुरू करना। और जब एक समय यथेष्ट अन्न हो जाय, तब पर्पटी क्रम से घटाकर बन्द करदी जाय। पर्पटी बन्द होने पर दूध जितना लिया जा सके लेते रहना चहिये।

पथ्य लेने का क्रम

प्रथम दिन—चांवल		६ माशा	तोलकर	
२ दिन	"	"	"	
३ "	"	"	"	
४ "	"	१ तोला	"	
५ "	"	१॥ तोला	"	
६ "	"	२ तोला	"	मूंग की दाल का पानी
७ "	"	२॥ तोला	"	"
८ "	"	३ तोला	"	मूंग की दाल
९ "	"	३ तोला	"	मूंग की दाल फुलके की पापड़ी १
१० "	"	३ तोला	"	मूंग की दाल २ फुलके की पापड़ी
११ "	"	३ तोला	"	मूंग की दाल ३ फुलके की पापड़ी
१२ "	"	३ तोला	"	मूंग की दाल ४ फुलके की पापड़ी
१३ "	"	३ तोला	"	फुलका १
१४ "	"	३ तोला	"	फुलका १

इसके बाद तोल की दरकार नहीं, थोड़ा चावल और १/२ हल्का फुलका लेते रहना चाहिये। और विशेष ध्यान दूध पर रखा जाय। शाम को लेने की इच्छा हो तो शाम को भी उसी क्रम से थोड़ा २ कर शुरु किया जाय।

प्रयोग की समाप्ति के बाद दो मास ब्रह्मचर्य रखना। तीन मास कढ़ाई की सभी वस्तु बन्द रखे। और ६ मास तक मिठाई नहीं लेना।

पर्पटी के समान-आनन्द भैरव, अग्नि तुण्डी, को भी क्रम वृद्धि से देकर पर्पटी का

समान लाभ उठाया जासकता है। अग्नि मांद्य में आरोग्य वर्धनी का प्रयोग भी हितकर रहता है। अम्ल पित्त में भी पर्पटी का उपयोग लाभकारी है, किन्तु पर्पटी की मात्रा न्यून ही रखी जाय-ज्यादा बढ़ाकर देने से पित्त भड़क कर उल्टी दस्त विशेष बढ़ जाते हैं।

विशूचिका

विशूचिका भारत के किसी न किसी भाग में प्रति वर्ष होता ही रहता है।

इस रोग का कारण और उपाय जानने से भी बड़े हित की आशा हो सकती है। और मनुष्य इससे सुरक्षित रहने का उपाय कर सकता है।

यह एक प्रकार का अजीर्ण है, जो इस प्रकार के व्यक्ति को जिसकी परिपाक क्रिया स्वयं बिगड़ी हो, दूपित आहार के द्वारा विशूचिका के कृमि जाने से शुरू होता है।

यह आशु प्राण हारी रोग है इसके आरम्भ में अन्य मनस्कता दौर्बल्य अरुचि प्रतीत होती है बाद में दस्त उल्टी घबराहट पेट का दर्द प्यास पसीना बांयटे आदि होकर मांस पेशी एंठने लगती है आंखे भीतर धंस जाती हैं, और मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है, शरीर ठंडा श्वास प्रश्वास ठंडा और नाड़ी शिथिल पड़ जाती है।

शरीर में जलयी भाग कम हो जाने से खून गाढा पड़ने लग जाता है, पेशाब नहीं होता पेट फूल जाता है, और मनुष्य इतना निर्बल हो जाता है कि बोलने की शक्ती भी नहीं रहती।

इस आशु प्राण हारी रोग का शीघ्र उपाय न होने से प्राणों का बचना कठिन हो जाता है इससे बचने के लिये वह स्थान जहां यह रोग संक्रामक रूप से फैला हो छोड़ देना चाहिये।

आमाशय को साफ रखना और इस प्रकार की वस्तु जो दूपित हो न खाना चाहिये भोजन के पहले और पीछे नीबू लेना चाहिए।

पानी उबाल कर पीना फल उबलते पानी में डाल कर खाना दूध ताजा और गरम ही लेना बाजार की बनी चीज न खाना चाहिए।

विशुचिका के लिये उपयोगी और सरल उपाय बड़ी तदूधी जो सर्वत्र ही पाई जाती है ६ माशा काली मिरच ५ और भांग जवान मनुष्य के लिये १ माशा तीनों को पानी में पीस छान कर रोग की बढ़ी अवस्था में दो और तीन घन्टों से साधारण में दिन में ३ बार देना चाहिये।

पहिली खुराक से पीछे की खुराकों में भांग कम करदी जाय इसके लेने से उल्टी दस्त रुक कर पेशाब आने लग जायगा।

उल्टी दस्त बन्द पेशाब साफ और अन्य उपद्रव न रहने पर भी दो तीन दिन प्रातः सायम औषधी देते रहना चाहिये।

अकेले दुद्धी हैजे के लिये अत्युत्तम औषध रत्न है जो विशुचिका से रक्षा करने में समर्थ हैं फिर भी दूसरे उपयोगी प्रयोग दिये जा रहे हैं, जो इस दुद्धी के प्रयोग के साथ उपयोग किये जा सकते हैं।

अर्कबटी--मात्रा दो गोली से ४ गोली तक इसी दुद्धी के साथ अथवा लौंग सौंठ पोदीना कपूर आदि के अर्क के साथ यथावश्यक समय उपरान्त देनी यह शीघ्रता से रक्त में गर्मी लाकर रक्त संचालन में सहायक होती है और अग्नि की वृद्धि करती है।

भल्लातकबटी--मात्रा दो गोली से ४ गोली तक यथावश्यक समय ऊपर लिखे अनुपान के साथ।

यह शीघ्रता से अग्नि की वृद्धी कर दस्त उल्टी को रोक देती है नाडी को बल देती है।

इन औषधियों से भी यदि किसी समय सन्तोष न हो या विपरीतता दीखे तो इसके साथ ही शिरा द्वारा नमक का पानी पूरी मात्रा में पहुंचाना चाहिये।

रोग ठीक होने पर पथ्य में नीबू का पानी जौ का पानी नीबू मिसरी डालकर देना चाहिये।

विशुचिका की कठिन अवस्था में हृदय के बल के लिए जवाहर मोहरा विशेष उपयोगी है।

"ऊपर लिखे विशुचिका के योग साधारण अग्निमांद्य अतिसार में भी बड़े उपयोगी हैं।"

अर्श रोग

अर्श दो प्रकार के हैं इनमें एक ऐसे मस्से जो पीड़ा दें किन्तु रक्त डाले नहीं स्पर्श में घड़े। दूसरे रक्त डालने वाले छोटे जो ज्यादा पीड़ा करें नहीं किन्तु रक्त डालें और शरीर को रक्त हीन कर दें।

सूखे मस्से जो केवल पीड़ा करे और रक्त न दे

राजिका चूर्ण—४ माशे की मात्रा में सवेरे १ समय मठ्ठे के साथ लेना इससे दस्त साफ आकर या कुछ अधिक होकर मस्से बैठ जाते हैं। सेवन अवधि सात दिन।

खून देने वाले मस्सों के लिये

रसाञ्जन वटी—मात्रा २ गोली दिन में तीन वार पानी के साथ देने से खून गिरना बन्द हो जाता है मस्सों की पीड़ा दूर हो जाती है।

रसाञ्जनादि लेप—इसको मस्से पर दिन में २ वार लगाने से जलन जख्म दूर होकर खून का गिरना रुक जाता है, फूले हुये मस्से बैठ जाते हैं।

दुग्धि का योग

दुद्धि बड़ी ६ माशा काली मिरच ५ नग डाल कर पानी में पीस छान कर ३ दिन सवेरे १ एक समय या २ दो समय पीने से रक्त गिरना बन्द होजाता है।

शंकर वगार नाम से मिलने वाले सफेद रंग के गोल खारदार छिलके १ तोला अन्दाज लेकर छाछ में बारीक पीस कर शौच के बाद गुदा को धोने से मस्सों का खून बन्द हो जाता हैं। रक्तार्श में रक्त को रोकने के लिये खून खराबा ३ माशा नाग केशर का चूर्ण ३ माशा तिल पीसे हुये ३ माशा मिसरी ३ माशा मक्खन ६ माशा दिन में दो वार मिलाकर लेना बड़ा उपयोगी है।

अर्श का वेगसे रक्त के गिरने पर जल्दी से रोकने के लिये रसौत उत्तम ६ माशा रात को भिगो कर रखना, सवेरे मसल छान कर इसका नितरा जल लेकर १ तोला मिसरी मिला कर पीना रक्त गिरना रुक जाता है, किंतु शीत काल में गरम करके देना

रक्तार्श में इशब गोल की भूसी भी बड़ी हित कर है इसको सोते समय जल के साथ लेने से दस्त आसानी से आकर खून को रोकने में सहायक होता है।

रक्तार्श में दूध उपयोगी नहीं, यदि दूध लिया जाय तो उसमें घी डालकर लेने से हित होता है। अर्श में, भारी, देर से पचने वाली वस्तु, और तीक्ष्ण पदार्थ, न लेने चाहिये।

अर्श में दस्त के साफ लाने और पेट की वायु को ठीक रखने के लिये प्राणदा गुटिका या चूर्ण मात्रा ६ माशा रात्रि में दूध या पानी के साथ लेने से पेट की वायु निकल जाती और दस्त साफ हो जाता है। यह अर्श, गुल्म, अम्ल पित्त अग्नि मांद्य सभी में हितकर है।

कृमिरोग

कृमि रोग केवल स्वयं ही कष्ट देता है, बल्कि दूसरी कठिन बीमारियों की उत्पत्ति भी करता है।

कृमि से हृदय रोग, मूर्च्छा, आदि अनेक रोग पैदा होते हैं। जिनका समझना कठिन होजाता है। अतः इसको निर्मूल करना ही अच्छा रहता है, कृमि मिटकर फिर होजाते हैं, अतः औषधी भी कईवार में छोड़ २ लेनी चाहिये।

विडंग चूर्ण—इसके लेने से नये पुराने कोष्ठ के कृमि दूर होजाते हैं।

विडंगादि क्वाथ—मलाशय के कृमियों को शीघ्रता से निर्मूल करता है।

छोटे बच्चों के बहुधा कृमि होजाते हैं, बालक रातको आराम नहीं लेकर रोता और ऐंठता है। इसके लिये-कृमिघ्न मलहर उपयोगी है। इसके लगाने से कृमि-जो मल द्वार पर आजाते हैं मर जाते हैं।

कामला रोग

जिसमें आंखें पीली, पेशाब पीला और त्वचा भी पीली हो जाय अन्न के सामने आते ही वमन सी होने लगे, पायखाना साफ न हो वही कामला है। कामला की उपेक्षा कर इसका अशांग में शेष रह जाना कठिन परिणाम बनाता है। अतः इसकी चिकित्सा पूरी सावधानी से करनी चाहिये।

कारत्यादि क्वाथ—कामला में बड़ा उपयोगी है, उसकी २-२॥ तोले की मात्रा भिगोकर (या पका कर) मिसरी मिला कर देने से यकृत और गुर्दे की क्रिया सुधर कर पेशाब अधिक होने लगता है। और कामला मिट जाता है। सर्दी के समय इसको गरम करके देना चाहिये। पुनर्नवादि और फल त्रिकादि क्वाथ भी कमला के लिये अत्युत्तम अंश हैं। आवश्यकता के अनुसार इनके लेने से अवश्य ही कामला दूर होता है।

१. एरण्ड का पत्ता १ काली मिर्च ५ पानी में पीस छान कर जल बनाकर एक हफ्ता लेने से कामला मिट जाता है।

२. पत्थर बेर चूर्ण १ माशा संगेयशब ४ रत्ती जहर मोहरा ४ रत्ती इसकी दो मात्रा शहद या आंवले के मुरब्बे में सवेरे शाम अन्यौषधी के साथ में लेना।

३. लि० ऐक्सट्रेक्ट पुनर्नवा १ ड्राम लि० ऐक्सट्रेक्ट मकोय २ ड्राम यवक्षार ३ माशा सोंफ का अर्क १० बूंद पानी ३ औंस डालकर इसकी दो खुराक कर पीना कामला में उत्तमोत्तम है।

ऊपर लिखी औषध व्यवस्था से कठिन से कठिन कामला निर्मूल हो जाता है। पथ्य में विशेषतः—मट्ठा जीरा डाल कर रूक्षान्न मूली पालक घिया आदि का शाक देना चाहिये।

क्षयरोग

क्षय रोग कई प्रकार के हैं और सभी दुस्साध्य हैं। इसकी परिचर्या चिकित्सा मूल्यवान होने के कारण शरीर के काम के साथ धन क्षय भी करता जाता है जो रोग वृद्धी में सहायक होता है। साधारण मनुष्य तो बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है।

शरीर की रक्षा करने वाले धातु हैं। क्षय रोग धातुओं का क्षय करता है और धातुओं की वृद्धी क्षय को दूर करती है। अतः इसमें बृंहण प्रयोग जो अग्नि बल को बढ़ाने वाले हैं दूसरी आवश्यक औषधियों के साथ उपयोगी रहते हैं. इनका उपयोग सुयोग्य चिकित्सक के द्वारा उपयुक्त रहता है।

चिकित्सा क्रम

१. क्षीराकी २ समय प्रातः या ४-४ तोला वासा क्वाथ २ तोला

२. सुवर्णभस्म १ रत्ती मुक्ता पंचामृत ४ रत्ती चौसठ्ठीपिप्पली १ रत्ती २ समय वासावलेह के साथ

३. प्रवाल पंचामृत २ समय ४-४ रत्ती, भोजन के बाद

४. क्षयादिगुटी ८ दिन रात चूसने के लिये

क्षय में सभी प्रकार के रत्नों की पिष्टी बड़ी उपयोगी है। वनस्पति से बनी शुभ्रश्वेत रौप्य भस्म भी इसमें अमूल्य है इसके सिवाय अवस्था के अनुसार राजमृगांक कल्याण सुन्दर रत्नगिरी व कांचनाभ्र वसन्त कुसमाकर वसन्ततिलक आदि का उपयोग करना चाहिये।

क्षय में सौम्य योग ही सफल होते हैं उग्र हितकर नहीं ऊपर दिये योग सब सौम्य हैं किन्तु मूल्यवान हैं और बिना मूल्यवान के सफलता मिलती नहीं।

ग्रान्थीक्षय

ग्रान्थीक्षय में सावधानी के साथ हल्की मात्रा में अन्न सहित स्वर्ण पर्पटी का प्रयोग कर बल बढ़ाने का उपाय किया जाय।

साथ ही ग्रन्थी की औषधी भी रखी जाय, इस प्रकार दूध की मात्रा यथेष्ट जाने पर बल की वृद्धि होती है और जैसे २ बल की वृद्धि होती जाती है ग्रन्थी मिटती जाती है।

स्वर्ण पर्पटी की मात्रा अनुकूल होने से ५ रत्ती से ऊपर न देनी चाहिये समय भले ही अधिक लगाया जाय।

- १ स्वर्ण पर्पटी २ समय काँच नार क्वाथ या इसके ऐक्सट्रैक्ट के साथ
- २ मुक्ता पंचामृत चौसठी पिप्पली २ समय
- ३ काँचनार गुग्गुलु २ समय
- ४ गण्डमालादि लेप १ समय

अलसक विलम्बिक और आंतों की उलझन

आंत में उलझन पड़जाने के कारण आंतें दो भागों में विभक्तसी हो जाती हैं। जो चीज भी ली जाती है, वह नीचे नहीं उतरती, ऊपर ही रुकी रहती है। पेट में दर्द अफारा, और मलमूत्र में रुकावट हो जाती है। प्यास के बढ़ जाने पर मनुष्य बार २ पानी पीता है किन्तु आमाशय में पड़ा रहकर इकट्ठा होने पर ऊपर को निकल जाता है। अफारा ऊपर को चढ़ता जाता और आखिर में हृदय को बाधित कर प्राण ले लेता है।

इसको शस्त्र साध्य माना गया है किन्तु ५-७ बार देखने में आया है औषधी से भी ठीक होता है। इसमें वह प्रयोग जो वायु का अनुलोमन करने वाले हैं, सफल होते हैं। किन्तु वह सामने आने वाली अनेक कठिनाइयों का धैर्य के साथ सामना करने पर ही सम्भव है।

इसमें विशेषतः—वायु अनुलोमन के लिए अग्निमुख चूर्ण, वचादि चूर्ण गुल्म अभयामोदक, दिग्वादि चूर्ण विजयचूर्ण, नरायणचूर्ण आदि जो आवश्यक हो क्रमशः दो या तीन २ घन्टे से ३।६ माशा की मात्रा से जल में पीस छानकर देते रहना चाहिये।

पेट की वायु पर दबाव डालने के लिये आगे लिखा उपनाह (पुलटिस) पेट पर बांधना चाहिये। तथा उपनाह (पुलटिस) ठण्डा होते ही दूसरा उपनाह तैयार कर फिर बांधना चाहिये। उपनाह से खाली पेट न रहने देना चाहिये। उपनाह

(पुलटिस) दो अगुंल मोटा पेट के सभी भागों पर रहना चाहिये। उपनाह बंधने पर पेट का वायु निकालने की कोशिस करेगा। आँतों में गड़बड़ाहट होगी और आंतें पलटा खाने लगेंगी। उलझन निकल जायगी। ऐसा होने पर अपानवायु स्वयं ही आ जाता है। वायु का अनुलोमन होने से रोगी के वचने की सम्भावना होने लगती है।

वायु का साधारण अनुलोमन होने पर तीव्र वस्ति देने से ऊपर का मल आजाता है और हवा भी बाहर आजाती है और इस प्रकार विना ओपरेशन रोग दूर हो जाता है।

अलसक में—यवक्षार मूलकक्षार ३।३ माशा गरम पानी के साथ दिन में २।३ बार दिया जा सकता है। मल मूत्र होने पर जैसा आवश्यक हो पथ्य देना चाहिये। यह भरोसे का प्रयोग है जिसको धैर्य के साथ लगाकर करने से सफलता मिलती है। पथ्य में गरम चाय पीने को गरम पानी।

कास

खांसी को रोग का मूल माना है—और खांसी का मूल जुकाम है—क्योंकि अधिकतर खांसी जुकाम से होती है।

जुकाम होने पर गले और श्वास नालिका को बिगाड़ने वाले—स्निग्ध पदार्थ और रूक्ष वस्तु के व्यवहार से खांसी हो जाती है। अतः आदि कारण के अनुसार उपचार आवश्यक है।

कास रोग का उपयोगी चूर्ण

१. द्राक्षादि चूर्ण—समशकर चूर्ण—अष्टांगा वलोहिका—कट्फलादि चूर्ण—मधु मिश्रित कर लेने से खांसी दूर होती है।

खांसी के लिये उपयोगी रस

२. शृंगाराभ्रक—लक्ष्मीविलास—चन्द्रामृत रस सर्वांग सुन्दर वसन्त तिलक। यथानुपान लेने से खांसी के लिये उत्तम है।

अवलेह

३. राज रसायन-पिच्छावलेह—खांसी के लिये उपयोगी—कफ को पका कर बाहर करने में सहायक।

वटिकायें

४. खादिरी गुटी--मारिच्यादि गुटी--लवंगादि गुटी।

खांसी के लिये क्वाथ

५. मधुयष्टी काथ, बदरी काथ, हरिद्रादि क्वाथ—सोते समय लेने से कफ पक कर बाहर हो जाता है।

सूखी खांसी जो असह्य पीडाकर हो नीचे लिखा प्रयोग उपयोगी है।

बादाम की गिरी	मग्जकद्दू	मग्जखरबूजा	पोश्त
७	६ माशा	६ माशा	६ माशा

बड़ी इलायची १ नग—कालीमिरच ५ नग—पानी में बारीक पीस कर १॥ छटांक दूध में हल्का पकाकर—१॥ तोला मिश्री डाल कर सोते समय ली जाय।

श्वास

श्वास रोग के अनेक कारण है। किन्तु अधिकांश जनों में आदि कारण, प्रतिश्याय देखने में आता है। निरन्तर जुकाम बने रहने से प्रारम्भ में नासिका का भीतरी मांसल स्थान कशा पड़ जाता है। और इमली के चौंचे के समान नासिका में ग्रन्थि या सूजन बनाकर नाक से निकलने वाले मल का निकलना रोकने लगता है। रुका हुआ मल श्वास नलिका में उतरने लगता है और श्वास नाली के कफ से अवरुद्ध होने पर श्वास का रूप ले लेता है।

इसे अनेकों व्यक्तियों को पैतृक रूप में होते देखा है। अतः आदि कारण के अनुसार ही उपचार करने पर स्थिर लाभ की आशा की जा सकती है।

औषध क्रम

सामान्य श्वास रोग में

१. हरिद्रादि चूर्ण	२ समय गरम जल के साथ
२. कृष्णाक्षार	२ समय मधु के साथ
३. भार्गी गुड़	१ समय रात्रि में

अथवा

नूतन लोह भस्म

केवल एक ही समय १५ बादाम को पीस कर की गई लुगदी के साथ ४० दिन पर्यन्त इसके द्वारा कितनों के श्वास रोग को मिटते देखा है।

तीसरा

दरद स्निग्ध

बढ़े हुवे श्वास के वेग को शीघ्रता से रोकने के लिये अति उत्तम है।

जुकाम होने पर मधुयष्टी क्वाथ रात्री में एक समय।

गुल्म रोग

आधुनिक समय में विषमहार विहार देश और प्रकृति के विरुद्ध ठण्डाई शर्बत और विविध प्रकार के भोजन तथा व्यायाम करने वालों के व्यायाम छोड़ने व गुदा के मार्ग में मस्सों के होने से अपानवायु के आँतों में रुकने से गुल्म हो जाता है। बहुदा चिकित्सक—इस हवा का विचार न कर गुल्म से पैदा होने वाले पेट के दर्द के लिये पेट को चीर देते हैं।

कितने ही व्यक्ति नीचे की वायु के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ने से कार्य करने में असमर्थ होकर पड़े रहते हैं। कितने ही इस वायु की रुकावट से हृदय की गति बढ़ जाने पर हृदय रोग की चिकित्सा में लग जाते हैं। इस हवा की रुकावट से मनुष्य वहमी होकर तरह २ के रोगों के होने की मन में कल्पना भी करने लगता है।

अतएव गुल्म का निदान और चिकित्सा में सूझबूझ से काम लेना चाहिए। गुल्म होने पर खाली पेट डकार आना, दस्त में कमी, पेट भारी पेट में गड़ गड़, आफरा, पेट में दर्द, आहार का न पचना, कमजोरी इत्यादि लक्षण हैं।

इसमें वायु का अनुलोमन और परिपाक को सुधार कर दस्त को साफ लाने वाली औषधि देनी चाहिए।

गुल्म के लिये—शास्त्रोक्त औषधि

१. अग्निमुख चूर्ण, वचादि चूर्ण, बड़े उपयोगी हैं इनको भोजन से पहले यथावश्यक अनुमान से लेना।
२. कुमार्यासव — भोजन के बाद २।२ तोला।
३. हिंग्वादि चूर्ण— भोजन से पहले २ समय।
४. प्राणदा गुटिका— रात्रि में सोते समय।

हृद् रोग

हृद रोग के लिए भारतीय विज्ञान प्रमुख स्थान रखता है और यह न केवल क्षणिक लाभ अपितु रोग को निर्मूल करने में पूर्ण समर्थ है।

नीचे लिखा योग इस प्रकार का है जिसके द्वारा ऐसे हृद रोगी जिनके सर्वांग शोथ-खाँसी-साँस अस्थिर और बढ़ा हुई हृदय गांत-रक्त-हीन-शरीर होकर भी पूर्ण स्वस्थ हैं और मौजूद हैं।

१. अर्जुन चूर्ण — २ समय
२. ऐक्स ट्रैक्ट अर्जुन — २ समय
३. प्रभाकरवटी १ जवाहर मोहरान ४ र० २ समय
४. ऐक्स ट्रैक्ट काकमाची १/१ ड्राम
   एक्स ट्रैक्ट पुनर्नवा १ ड्राम २ समय (भोजन के बाद)
५. दवा अलमिष्क — १ समय (रात्रि में)

शीतपित्त

शीतपित्त ऐसा रोग है जो ठहर जाने पर बरसों तक पीछा नहीं छोड़ता है।

इसको निर्मूल करने के लिये

१. शीत पित्तान्तक बटी

आयु के अनुसार दो से चार गोली तक सवेरे शाम।

२. शीत पित्तान्तक क्वाथ अथवा ऐक्सटैक्म मधुयष्टी क्वाथ के साथ।

३. हरीत की खड। १ समय रात्रि में।

यह नये शीतपित्त को थोड़े समय और पुराने शीतपित्त को अधिक समय में निर्मूल कर देता है।

वीसर्प

वीसर्प के लिए भी यह किसी प्रकार का क्यों न हो उठते वेग को थोड़े समय में रोक देता है।

लगाने के लिए यथावश्यक रुचि के अनुसार देखकर लगाना। अथवा

काम्पिल्लकादि लेप—लगाना।

अम्लपित्त

अम्ल पित्त की चिकित्सा राजसी और सावधानी का है। संग्रहणी मन्दाग्नि जैसे रोग मिटने पर वापस नहीं होते किन्तु अम्ल पित्त अधिक कुपथ्य से फिर हो जाता है।

बढ़े हुए अम्लपित्त में ऋत्याद बड़ा उपयोगी है इसका पर्पटी के समान क्रमवृद्धि से अथवा सम मात्रा में दूध पर किया गया प्रयोग बड़ा सफल रहता है।

अम्लपित्त में अन्न न लेकर-जौका पानी नींबू मिसरी, अथवा जौका पानी दूध में मिलाकर दें-मौसमी अनार-देसी आम, और नारियल का जल, लेकर महीना डेढ़-महीना ऋत्याद लिया जाय तो उल्टी जलन खट्टी डकार पेट की पीड़ा सब दूर हो जाते हैं।

औषध क्रम

१. क्रव्याद् २ समय

२. यूनिम्बादि काथ के साथ

३. वसन्त कुसमाकर १, १, रत्ति

रसामृत २–२ रत्ति

चन्दन चूरा सफेद २–२ रत्ति

मिसरी ४–४ रत्ति

२ समय शहत या नींबू की सिकंजबीन अथवा आवले के अवलेह में।

४ शंख-भस्म २ समय, भोजन के बाद नींबू के पानी या सोंफ के जल के साथ।

५ हरीत की खंड १ समय रात्रि में दूध के साथ।

दूध पर रुचि कम हो तो क्रव्याद की मात्रा क्रम से बढ़ाकर १० रत्ति और घटाकर २ रत्ती तक दी जा सकती है। ऐसा करने से और भी विशेष और टिकाऊ लाभ होता है।

अम्लपित्त की सामान्य अवस्था में व्यवहार के लिये

१. द्राक्षादि चूर्ण—२ समय जल के साथ

२. तुगाक्षीरी चूर्ण—२ समय आमलक्य लेह के साथ

३. शंख भस्म—२ समय भोजन के बाद

४. हरीत की खंड—१ समय रात्रि में।

इस चिकित्सा क्रम से जलन खट्टी डकार सिर का दर्द चक्कर घबराहट-बेहोशी क्रम से दूर हो जाते हैं

अधोगत अम्लपित्त में

अमृतार्णव-सौभाग्य शुंठी—स्वल्प लवणादि इनको अम्लपित्त की उपर्युक्त औषधियों के साथ देना चाहिये।

आमवात

आमवात या गठिया इस प्रकार का कठिन और कष्ट देने वाला रोग है, जो मनुष्य को शरीर क्रिया में भी पराधीन बना देता है।

इसकी बढ़ी अवस्था में हिलना डुलना और अपने हाथ को उठाना कठिन हो जाता है। कभी २ अपनी छाती पर रखा हाथ महीने तक हटाना असम्भव सा होगया।

गठिया सोजाक या उपदंश से सम्बन्ध रखने वाला हो अथवा—स्वाभाविक दोष जन्य।

आरम्भ में—इन्द्र वारुणी क्वाथ परमोपयोगी है। इसको सात दिन पर्यन्त लेने से रेचन द्वारा आमांश निकल कर शोथ पीड़ा दूर होकर अंग क्रिया शील होने लगते हैं।

विरेचन के बाद–शास्त्रोक्त योग

१. योगराज—महायोगराज—सिहनाद—कोई भी एक दो समय।

२. अश्वगन्धादि—महारास्नादि—२ समय गूगल के साथ।

३. अमृत रस—१/१ चावल—२ समय शहत में।

४. रक्त तेल—का अभ्यंग एक समय

इस क्रम से आमवात शीघ्र ठीक हो जाता है।

सोजाक—उपदंश जनित दर्द—और ग्रन्थिवात ये तत्सम्बन्धी औषधी देने से लाभ होता है।

उपदंश जनित के लिये "चतुर्मुख" बड़ा उपयोगी है यह संधियों का शोथ और यत्रतत्र पीडा करती गाठों को मिटाने में समर्थ है। किन्तु विषैली होने के कारण सावधानी आवश्यक है। इसकी सेवन अवधि ७-८ दिन लवण रहित अन्न, दूध और घी।

पक्षाघात

पक्षाघात—दो प्रकार से होता है। एक रक्त के दवाव के बढ़ जाने से दूसरा–प्राकृतिक वायु से।

रक्त के दबाव के बढ़ जाने से हुवे पक्षाघात में विविध प्रकार के उग्र रस काम नहीं देते और न वह उपयोगी हैं। इनके देने से रक्त चाप उल्टा बढ जाता है और मनुष्य कष्ट पाता है, ऐसी अवस्था में रसादि न देकर यदि शहत और पानी ही पर रखा जाय तो अच्छा है।

रक्त चाप के बढ़ जाने से पक्षाघात में

रचाप नाम की वनस्पति जो हमारे यहां काम ली जाती है रक्तचाप (हाइब्लड प्रैशर) और इससे हुवे पक्षाघात में सर्व श्रेष्ठ उपाय है। इसकी समानता की अभी दूसरी कोई औषधी उपलब्ध नहीं।

प्राकृत्तिक वायु से हुवे पक्षाघात के लिये औषधियों से शास्त्र भरा है और एक से एक उत्तम है। और कठिन से कठिन आघात को मिटाने में समर्थ हैं।

पक्षाघात के लिये—प्रारम्भ की अवस्था में

१. रसोनादि क्वाथ या ग्रन्थ्यादि क्वाथ २ समय काढ़ा बनाकर और शहद डाल कर देना तथा।

२. एकांगवीर—२ समय मधु के साथ

३. ताप्यक तेल—२ बूंद १ समय जीभ पर लगाना या पान में लगाकर खाना।

४. एरण्ड तेल—दस्त साफ न होने से रात्रि में एक समय लेना।

पक्षाघात का जीर्ण अवस्था में

मुष्टिक लेह—योगराज गु० महा योगराज गु० महा रास्नादि क्वाथ के साथ उपयोग उपयोगी रहता है।

पक्षाघात का प्रारम्भिक रूप बड़ा भयानक दीखता है। मनुष्य अज्ञान व अचेत होकर बोलने व अन्य शारीरक क्रिया में असमर्थ होकर मृत के समान दीखने लगता है।

किन्तु कुछ समय बाद अज्ञानता क्रम से दूर होकर मनुष्य अस्पष्ट रूप में बोलने की कोशिश करने लगता है।

मनुष्य की इस अवस्था में जब जुबान काम न देती हो ताप्यक तेल बड़ा उपयोगी है इसको जीभ पर लगाने से जुबान शीघ्रता से ठीक होने लगती है।

प्रमेह

प्रमेह रोग होने पर इसके उपचार की ओर उपेक्षा रखना अनेक कृच्छ साध्य रोगों को आमन्त्रित कर सुख स्वास्थ्य से वंचित होना है।

प्रमेह के लिए शास्त्र में अनेकों प्रयोग दिये हैं उनमें से जो इसके लिये विशेष हित कर हैं दिये जा रहे हैं।

१. शिलाजतु वटी १।१—२ समय

२. फल त्रिकादि क्वाथ के साथ

३. चन्द्रकला रस—२ समय शहद के साथ

४. चन्दना सव भोजन के बाद

सुरामेह के लिए—जिसमें पिशाब के नीचे गाद सी जमती हो—

चन्द्र प्रभावटी २ समय गोक्षुरादि क्वाथ के साथ

चन्दनासव भोजन के बाद।　　प्रमेह के लिये सफल औषधियों में—

शुक्रमात्रिका-बंगेश्वर-वसन्त कुसमाकर मालती कुसमाकर आदि श्रेष्ठ मानी गई हैं—इनको यथावश्यक सेवन करने से अवश्य लाभ होता है।

मधुमेह

प्रेमह की ओर से उपेक्षा करने से समय पाकर मधुमेह हो जाता है मधु के भाग के मूत्र मार्ग से जाने पर मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

इस दुसाध्य रोग को मिटाने के लिये आतुरता करना लाभ से विमुख होना है। पूरे समय और पूरे पथ्य के साथ रहने से ही लाभ की आशा की जाती है—

मधुमेह के लिये महर्षियों ने इस प्रकार की औषधियां रखी हैं जिनके लेने से निश्चय ही मूत्रज शर्करा वरसों तक देखने में नहीं आती।

शरीर को बलवान कर मन में उत्साह पैदा करती है।

१. शिलाजतु वटी दो समय न्यग्रोधादि क्वाथ के साथ

२. वसन्त कुसमाकर दो समय बादाम की लुगदी या मक्खन के साथ।

३. बबूल चूर्ण दो समय रात्रि में दूध के साथ।

४. इस प्रकार २ महीने से ६ महीना पर्यन्त निरन्तर सेवन करने और पथ्य से रहने से शर्करा का जाना रुक जाता है और फिर बरसों तक देखने में नहीं आता—और प्रमेह पिडिका (अदीठ्) होने का भय नहीं रहता।

मधुमेह के लिये—डी-डाइ-बिटीज शर्करा को निर्मूल करने वाला पाया है।

अश्मरी (पथरी)

अश्मरी—पथरी गुर्दा और मसाना दोनों में होती है यह शस्त्र साध्य मानी जाती है—किन्तु यदि पथरी बहुत बड़ी न होकर छोटे छोटे टुकड़ों या रेत की सूरत में हो तो औषधी से भी बड़ी सुगमता से दूर की जा सकती है।

बड़ी पथरी काटने में समय बहुत लगता है और कटने पर शेष रहा टुकड़ा आगे खिसक कष्ट देता है और शस्त्र की दरकार पड़ जाती है कभी नहीं भी।

उपचार प्रयोग

शिलाजतु— दो समय

गोक्षरादि क्वाथ—या इसके ऐक्सट्रैक्ट के साथ

पथर बेर चूर्ण—२ समय भोजन के पहिले

शंखद्राव ५/५ बून्द ऐक्सट्रैक्ट १ पाषाण भेद १।१। ड्राम

तिल अपामार्ग, कदली।

पलाश, यव और मूली का क्षार—१॥-१॥ मासा पानी २-२ औंस भोजन के बाद।

इस प्रकार जब तक पथरी निर्मूल न हो निरन्तर लेना चाहिये इसके लेने से गुर्दे का दर्द गुर्दे से बुखार, पेशाब की रुकावट, और खून का आना सब दूर हो जाते हैं और पथरी कट कर रेत की सूरत से मूत्र मार्ग से बाहर निकल जाती है।

गुर्दे और मसाने की पथरी के लिये सर्वश्रेष्ठ योग है।

उन्माद

उन्माद के रोगी को मस्तिष्क की निर्बलता और रूक्षता के कारण निद्रा नहीं होती और निद्रा को न होना ही उन्माद का कारण होता है। इसीलिये उन्मादी के लिये निद्रा लाने का उपाय ही सबसे बड़ा और प्रमुख उपाय है।

साथ ही साथ मस्तिष्क की निर्बलता दूर कर मस्तिष्क को बलवान बनाने के लिये विविध औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

इन सबके लिये आयुर्वेद प्रथम स्थान रखता है और मस्तिष्क को स्थाई बल देने वाली औषधियों का भण्डार है।

औषध क्रमः

सर्पगन्धा १।१ माशा	२ समय अर्क गुलाब के साथ
स्मृतिसागर	२ समय शहद में
ऐक्सट्रैक्ट ब्राह्मी २।२। ड्राम	२ समय भोजन के पहिले
अश्वगन्धारिष्ट या ऐक्सट्रैक्ट अश्वगन्धा २ ड्राम	भोजनोत्तर
ब्रह्मी घृत	१ समय रात्रि में

उन्मादी को दस्त साफ नहीं होता अतः दस्त के लिये भी विरेचनीय द्रव्य देते रहना चाहिये।

इस प्रकार औषधोपचार से भयंकर उन्माद भी निर्मूल हो जाता है।

अपस्मार

अपस्मार (मृगी) इस प्रकार का रोग है जो मनुष्य को दुर्दशा में परिवर्तित कर देता है। मृगी रोग का मिटना बड़ा कठिन है और मिटता भी है तो अत्यधिक समय पर्यन्त औषधि लेने से अतः शीघ्रता करना और निष्फल औषधि के लेने मे समय बिताना दोनों ही उचित नहीं।

आयुर्वेद मे इसके लिए अनेकों योग होते भी वच और ब्राह्मी को प्रधान माना है।

वच, ब्राह्मी, इस रोग के कीटाणुओं को नष्ट कर बुद्धी और स्मृति को बढ़ाती और मस्तिष्क को बल देती हैं।

अतः इसके मिटाने में कितना भी समय क्यों न लगे वच और ब्राह्मी का उपयोग ही करते रहना चाहिये इनके साथ में इच्छानुसार दूसरे आवश्यक रस भी दिये जाय तो और भी उत्तम है।

क्रम

१. एक्सट्रेक्ट	वच १/१ ड्राम ब्राह्मी १/१ ड्राम	२ समय
२. योगेन्द्ररस		२ समय
३. एक्ट्रेक्ट अश्वगधा १/१ ड्राम		२ समय भोजनोत्तर
४. ब्राह्मीघृत		१ समय रात्री में
५. अपस्मारघ्न नस्य		१ समय नाक में सूंघने के लिए।

अपतानक

अपतानक—अनेक करणों को लेकर होता है—इस प्रकार का अपतानक जो गर्भ के गिरने या अत्यधिक रक्त के शरीर से निकल जाने के कारण हुआ हो—छोड़कर स्वाभाविक शारीरिक दोषों से हुवे अपतानक में नीचे प्रयोग सफल है।

१. सर्वांग वात हरी गुटी—३ से ४ समय

२. मन्व्यादि क्वाथ के साथ—

३. एक्सट्रेक्ट प्रसारणी २-२ ड्राम—३ से ४ समय

४. तारपक तेल—२ समय

यथावश्यक हृदय के बल के लिये जवाहर मोहरा या दवाअल मिष्क—२ समय।

जलोदर

जलोदर जैसे महान रोग से मुक्त हुवे व्यक्ती, जिन पर भगवान का बड़ा अनुग्रह है वही देखने को रहते हैं।

मुझे यह लिखते हर्ष होता है कि हमारे श्री वेंकटेश औषधालय को यह सौभाग्य प्राप्त है कि जहां से जलोदर के वह रोगी जिनको सुप्रसिद्ध सज्जनों द्वारा उत्तर मिल चुका-यहां जलोदर से मुक्त होकर और बहुत से वर्ष व्यतीत होने पर भी स्वस्थ हैं। मौजूद हैं।

जलोदर के लिये आयुर्वेद में सफल प्रयोग है किन्तु फिर भी आयु प्रधान है।

उदर में कितना भी पानी भरा हो-परन्तु शरीर में जीवनीय शक्ति मौजूद हो-रक्त में विषैला पन हो और मूत्र में कालिमा न आई हो अच्छे होने की आशा की जा सकती है।

चिकित्सा क्रम

जलोदरारि वटी—अवस्थानुसार १ से ५ गोली तक बढ़ाते हुवे पथ्य में-ऊंटनी का दूध चाहिये-दूध इतनी मात्रा में जाना चाहिये जिससे भली प्रकार जीवन रक्षा हो सके।

पानी—फल-शाक-अन्नादि नहीं लेना चाहिये-इस औषधी के लेने से-पेशाब और दस्त विशेष होकर कुछ ही दिनों में उदर जल रहित हो जाता है-और लिवर तिल्ली जिनके कारण जल हुवा देखने में आने लगते है, गुर्दे अपना काम करने लगते और सूजन हट जाती है और भूख बढ़ जाती है।

पेट में पानी न रहने पर भी कुछ दिन यही औषधी देते रहना चाहिये-पानी की ओर से तसल्ली होने पर भी लिवर आदि का उपचार करना चाहिये।

इस प्रकार उद्योग करते महीना डेढ़ महीना निकल ने पर जब पूर्ण स्वस्थ हो-तब पथ्य शुरु करना चाहिये पथ्य में कुछ दिन जौ का पानी देकर क्रमसे अपनी खुराक पर ले आना चाहिये।

मेदोरोग (चर्बी का बढ़ जाना)

शरीर में चर्बी विशेष बढ़ जाने से मनुष्य का जीवन दुःखद होकर मनुष्य अपने में सब कुछ होते भी सभी कामों में अशक्त और असमर्थ पाता है।

शरीर में पीड़ा, श्वास में फुलावट, हृदय की धड़कन, आलस्य इसके साथी हैं।

चर्बी को दूर करना कठिन है, और इसमें वही सफल होता है, जो मन पर काबू किये होता है।

मेदो रोगों में इस प्रकार के पदार्थ जो मज्जा को बढ़ाने वाले हैं छोड़ कर और अन्न की वास्तविक खुराक को घटाकर, फल शाक, आदि लेकर क्षुधा की निवृत्ति करें, किन्तु भूख निकाल कर शरीर को निर्बल नहीं करना चाहिये।

इस क्रम से कुछ महीने चलने और नीचे लिखी औषधी लेने से सर्वांग की चर्बी घट कर शरीर हल्का हो जाता है। मन प्रफुल्लित रहेगा। रक्त कणों की वृद्धि होगी।

शरीर के पूर्ण रूप से हल्का और स्वस्थ्य हो जाने पर और बहुत समय तक आहार का सन्तुलन रखने से मनुष्य पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाता है।

औषधि क्रम

१. प्रातः सायम्—आरोग्यवर्धनी वटी २ से ४ तक जल के साथ।

२. कुमार्यासव—भोजन के बाद २-२ तोला।

३. नारायण चूर्ण—रात्रि में एक समय जल के साथ।

औषध प्रयोग के साथ प्रतिदिन यथा शक्ति घूमना अच्छा रहता है।

गंडमाल

गंडमाल क्षय की संज्ञा में है—जब तक शरीर बलवान रहता है दबा रहता है किन्तु शरीर के निर्बल होते ही ज्वर और काम आदि उपद्रवों को बढ़ाकर क्षय के रूप में ले आता है—इसलिए गंडमाल की औषधियों के सहित बल वर्धक प्रयोग देने से रोग नहीं के तुल्य हो जाता है।

वल वृद्धि के लिये—गंडमाला की औषधी सहित या केवल स्वर्ण पर्पटी का अन्न सहित उपयोग सम्पूर्ण धातुओं को बढ़ा लेता है।

पर्पटी की मात्रा ऊपर में ५ रत्ती तक और दूध की मात्रा ५ सेर तक रखी जाय।

प्रवृद्ध रक्त चाप हाइब्लड प्रैशर

विपरीत आहार विहार मानसिक चिन्ता और विचारों से मस्तिष्क पर अत्याधिक दवाव पड़ने पर रक्त का दवाव बढ़ जाता है।

सुखी जीवन उत्तम आहार—शाररिक श्रम की कमी किन्तु चिन्ताओं से व्याप्त मनुष्यों को ढ़लती अवस्था में विशेषतः होता है।

रक्त चाप का बढ़ना वड़ी आयु वालों से अधिक छोटी उम्र वालों के लिये घातक है।

पेट में हवा के रुकने—दस्त के साफ न होने और तामसी पदार्थों के सेवन से इसे वल मिलता है।

रक्त चाप के बढ़ने पर सिर भारी मन व्याकुल विचारों में अस्थिरता हृदय की धड़कन आदि अनेक शिकायतें रहती हैं। जो दवाव के घटने पर घट जाती हैं।

इसको हटात ही कम करने के लिए सर्पगन्धा सर्पोपरि है। यह वढ़े हुए को नीचा कर देगी किन्तु नीचा गया हुआ—ऊँचा होवे ही नहीं यह इसका काम नहीं।

इसके लिये अपने यहां से प्राप्त होने वाली वनस्पति ही है जो निश्चय ही दो महीने सेवन करने से वढ़ना रोक देती है। इसका सेवन करने वाले अनेकों व्यक्ति मौजूद हैं जो अब सुख से जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वच्चों के ब्रांको नमोनियां (डव्वा रोग) के लिये अमोघ

इस रीती से वालक की सर्दी, जुकाम और वुखार के लिये द्राक्षादि क्वाथ उत्तम है।

१. हरिद्रादी क्वाथ ३ भाग, जन्मघूटी १ भाग, दोनों को मिलाकर काढा कर रोग के वल के अनुसार देना चाहिये।

२. गोरोचन दिन में दो वार माता के दूध में।

बाल रोग

शिशु के स्वास्थ्य की प्रारम्भिक सावधानी और देख रेख आगे आयु भर साथ देती है। अतः सतर्कता से ध्यान रखते हुये बच्चे के स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिये।

बच्चों की पेट की खराबी, दस्त की कमी पेट का दर्द, आफरा, उल्टी, कृमि खांसी सर्दी, बुखार, आदि के लिये उपयोगी।

जन्मघूटी, बच्चों के स्वास्थ्य रक्षा के लिए उपयोगी।

बालक की साधारण सर्दी जुकाम और बुखार के लिए द्राक्षादि क्वाथ उत्तम है।

बच्चों का ब्रांको निमोनियां (डब्बा रोग) के लिए अमोघ १ हरिद्रादि क्वाथ ३ भाग जन्म घूटी १ भाग, दोनों को मिलाकर काढ़कर रोग के बल के अनुसार देना चाहिये।

२ गोरोचन—दिन में दो बार माता के दूध के साथ।

बच्चों की कूकर खाँसी के लिये

रक्त शार्कर--जो शीघ्रता से कूकर खांसी निर्मूल करता है।

बच्चों को उल्टी और दस्तों के लिये

बालामृतवटी—सौंफ का अर्क या अर्क गुलाब में दो तीन बार।

बच्चों की प्यास के लिए

बाल तृषादि—गर्मी के समय की असह्य प्यास, और लू के लिये उपयोगी।

शीतला

शीतला (चेचक) और मसूरिका (खसरा)

इन सब का रक्त से सम्बन्ध है—और ऋतु परिवर्तन का समय ही इनके प्रकोप का समय है।

इनके लिये चैत्र आश्विन २ मास मुख्य हैं। इस परिवर्त्तन समय में बच्चों को आयु के अनुसार यदि एक सप्ताह शहद उत्तम, और पानी मिलाकर दे दिया जाय तो खून की तेजी घटकर चेचक निकलती नहीं और निकलती भी है तो बहुत हल्के रूप में।

इसी प्रकार आयु के अनुसार नीम का पत्ता पीसकर शहत पानी में मिलाकर और भी विशेष लाभ करता है।

चेचक और खसरा दोनों ही के आरम्भ में सर्दी जुकाम होता है। और चेचक निकलने पर भी कफ का भाग बना रहता है। अतः कफ की ओर विशेष सावधानी रखनी चाहिये।

चेचक और खसरा निकलने पर आयु के अनुसार नीम का पत्ता—हल्दी काली-मिरच और रुद्राक्ष जल में पीसकर देना चाहिये।

इस प्रयोग की हल्दी कफ को पकाती, काली मिरच कफ को उखाड़ती, नीम दूषित होने से रोकता, रुद्राक्ष रुके दानों को बाहर निकालता है।

चेचक में नीम का पेट में देना ही नहीं, नीम को बिछाना और पास में रखना भी बड़ा श्रेयकर है।

मसूरिका में निमोनियां होने पर यथावश्यक हरिद्रादि क्वाथ देना चाहिये।

चेचक में व्रणों की अधिकता और पीव के सुखाने के लिये बच्चों के बिस्तर पर नीम के पत्ते और जगली छाने की राख बिछानी चाहिये।

शिशु पक्षाघात

यह अधिकतर १ से ५ साल तक की आयु के बच्चों को आरम्भ में शरीर का तापमान बढ़ाकर अकस्मात ही अंग क्रिया हीन और शिथिल कर देता है और बालक शरीर की क्रिया में असमर्थ होकर पड़ा रहता है।

साधारण आक्रमण में मांस पेशी शिथिल हो जाती है और कठिन आक्रमण में मांस पेशी सूख जाती है हाथ पैर पतले पड़ जाते हैं।

इस रोग में शीघ्र लाभ की इच्छा करना बेकार है क्योंकि जब तक विनष्ट मांस पेशी भरती नहीं है तब तक बालक चल फिर नहीं सकता, और मांस पेशी भरने में समय लगता है, जिसकी अवधी ६ मास से १ वर्ष तक हो सकती है किन्तु निष्फल औषधी में समय बिताना उचित नहीं।

मुझे इस रोग से पीड़ित अनेकों बच्चों की चिकित्सा का अवसर मिला, और

उसमें जिन्होंने शीघ्रता नहीं की सर्वत्र सफल रहा।

यह औषधी प्रत्येक व्यक्ति के लिये सर्वथा प्रस्तुत है।

व्योपापस्मार (हिस्टीरिया)

हिस्टीरिया विशेषतः दो कारणों से होता है:

१. परिपाक के बिगाड़

२. गर्भाशय की खराबी से

नीचे लिखी औषधी इस प्रकार संचित की गई है जो कि दोनों ही प्रकार से होने वाले हिस्टीरिया में हित कर है—परन्तु गर्भाशय से सम्बन्धित हिस्टीरिया में मासिक समय ५-७ दिन इन औषधियों के सिवाय रजः प्रवर्तक औषधी भी देना आवश्यक होता है।

व्योपापस्मार दूर होता है इसमें संशय नहीं किन्तु इसकी औषधी सेवन अवधी ४,६, मास तक है।

औषध क्रम

१. किरातादि क्वाथ— २ समय

२. तुगाक्षीरी चूर्ण— २ समय आवले के मुरब्बे में या आवले के अवलेह में।

३. मगतगी चूर्ण— २ समय भोजनोत्तर

४. ब्राह्मी घृत— १ समय रात्रि में

शौच ठीक न होने पर किरातादि क्वाथ में अमल तास-और डालना इस प्रकार १-१॥ महीना औषध सेवन करने से इसका आक्रमण रुक जाता है और अधिक समय लेने पर वापस नहीं होता।

हिस्टीरिया के कठिन दौरे में जब कि हाथ पैरों की ऐंठन बहुत बढ़ी हो—या मूर्च्छा खुलती ही न हो तापक तेल की २ बूंद जीभ से लगाना चाहिये मूर्च्छा दूर हो जावेगी।

मासिक की रुकावट और पीड़ा के लिए मासिक धर्म के समय ४ दिन—

काकमाची क्वाथ—और देना चाहिये।

मलाशय के कृमियों से भी हिस्टीरिया के समान मूर्च्छा होती है अतः हिस्टीरिया वाले व्यक्ति के यदि मालाशयों में कृमि हो तो हफ्ते में १-२ दिन कृमिघ्न औषधी भी देनी चाहिये।

स्वेत प्रदर

स्वेत प्रदर बाहुल्यता से स्त्रीयों में पाया जाता है, प्रदर-विकृत आहार-विहार मन को दूपित करने वाले वातावरण तथा और भी अनेक कारणों को लेकर होता है, योनि पथ की पेशियों में खरास होकर झराव करने लगती है-इसीलिये पेट में ली गई औषधी ऐच्छिक लाभ नही करती-जितना धोने और लगाने की औषधी से, अतएव-धोने और लगाने की औषधी लिखी जा रही है।

स्वेद प्रदर में धोने और वस्ती के लिये

बंबूल की छाल, बठ की छाल-खैर की छाल-आम की छाल-लोध अर्जुन और अशोक की छाल-इनको कूट कर-काढा कर वस्ती द्वारा उपयोग करना।

स्वेत प्रदर में लगाने के लिये

माज, मोचरस, ६ माशा धाय के फूल, ६ माशा लोध, ६ माशा पिश्ते का छिलका ६ माशा जस्ता आँख में लगाने का ६ माशा रसौत १ तोला रसोत को ४ तोला पानी में भिगो के छानले-शेप दवाओं को बारीक कपर छान कर-८ तोला वैसलीन में मिलालें और थाली में कर रसौत के पानी को डालकर हाथ से मथे और एक जीव हो जाने पर-वैसलीन भाग निकालले-पानी छोड़ दे।

स्वेत प्रदर में खाने की औषधी

स्वर्ण वंग—१ समय शहत के साथ।

रक्त प्रदर

रक्त प्रदर का कारण जाने विना चिकित्सा में देरी लगती है।

रक्त प्रदर को सर्वत्र पित्ताधिक्य मान कर ठन्डी चिजों का प्रयोग किया जाता है।

किन्तु वायु की प्रकृति वाली भारी शरीर की स्त्री जिसका तमाम शरीर वायु से व्याप्त है प्रकृति विरुद्ध ठन्डी औषधी देने से-शरीर में दर्द, बेचैनी, घबराहट आदि बढ जाती है-और प्रदर भी रुकता नहीं है।

अतः कारण और प्रकृति के अनुरूप चिकित्सा व्यवस्था से ठीक रहता है।

सभी दोषों से होने वाले रक्त प्रदर के लिये अमृत बीज चूर्ण।

इसको रोग की अवस्था के अनुसार दिन में २/३ बार लेने से कठिन—रक्त प्रदर-श्वेत प्रदर दूर हो जाते हैं।

लाक्षादि चूर्ण

इसको अवस्था के अनुसार उचित मात्रायें देने से बढ़ा हुवा रक्त जल्दी रुक जाता है गर्भस्राव और रक्त पित्त में भी बड़ा उपयोगी है।

खून का दबाव बढे हुये स्त्री को रक्त प्रदर में रक्त चाप घटायें बिना प्रदर रुकता नहीं है अतः रक्त चाप कम करने के लिये औषध प्रयोग करना चाहिये।

प्रदर रोग में—दार्व्यादि क्वाथ भी बड़ा उपयोगी है।

गर्भ व्यापद (गर्भावस्था की छर्दि)

बहुत सी स्त्रियां गर्भ होने पर बड़ा कष्ट पाती हैं। पेट में कोई भी खाने की चीज रुकनी कठिन हो जाती है। और पेट में कुछ भी न रहने से शरीर क्षीण और पंजर हो जाता है।

इसको मिटाने के लिये पेट को साफ रखना इस प्रकार की दस्तावर औषधी जिसकी गर्मी गर्भ को बाधा न दें, और आंव को पैदा न करें, दस्त साफ लायें अथवा वस्ति द्वारा पेट साफ करना आवश्यक रहता है।

औषधी क्रम

१. एक्सटेक्ट चिरायता २०-३० बूंद दो समय

२. मुक्तापिष्टी १। १ रत्ती, जहर मोहरापिष्टी २ रत्ती नारिकेर भस्म ८ रत्ती तीनों को मिलाकर २ समय सिकंजबीन नीबू में।

३. हरीत की खंड १ समय रात्री में दस्त के लिये।

इस क्रम से कुछ दिनों में वमन बंद होकर स्वास्थ्य उन्नति करने लगता है।

सूतिका ज्वर

अधिकतर यह ज्वर प्रसव काल में मैले के रुक जाने पर उसके सड़ने और गर्भाशय में जख्म होकर पीप के पड़जाने से प्रसव के ५-६ दिन के बाद हल्की सी ठंड देकर शुरू होता है।

इसकी उपेक्षा से भंयकर परिणाम होते हैं। गर्भाशय की पीप रक्त में मिश्रित हो कर तीव्र ज्वर मूर्च्छा और अपतानक को पैदा कर संकट में डाल देती है।

कई जगह देखने में आया स्त्रियें प्रसव के बाद नीचे गन्दे वस्त्र अथवा रेत बिछा देती हैं। इन दोनों के दूषित और अज्ञात कीटाणु रक्त के साथ गर्भाशय में जाकर रक्त में मिश्रित हो अपतानक को पैदा करते हैं और आशु घाती हो जाता है।

इससे सुरक्षित रहने का श्रेष्ठ उपाय

१. देवदार्व्यादि काथ या इसका ऐक्सटैक्ट—	३ वार
२. लक्ष्मी नारायणरस—	२ समय
३. दवा उत्तभिक्क—	२ समय
४. वस्ती—	१ समय

देव दार्व्या क्वाथ साधारण योग नहीं–इसको भली प्रकार अनुभव में लाकर देखा गया है और वह इस रोग की अव्यर्थ औषधी है।

सूतिका उन्माद

प्रसव समय में मैले की रुकावट से मस्तिष्क पर दूषित प्रभाव पड़कर सूतिका उन्माद हो जाता है।

इसके लिए सूतिका ज्वर की समान मैले को साफ करने वाली औषधियों के साथ

मस्तिष्क को बल देने वाली औषधी महीना २ महीना निरन्तर देने से सूतिका उन्माद दूर जाता है।

१. देवदार्व्यादि क्वाथ या ऐक्सटैक्ट—२ समय
२. स्मृति सागर या योगेन्द्र—२ समय
३. ब्राह्मी क्वाथ या ऐक्सटैक्ट—२ समय
४. अश्वगन्धारिष्ट (भोजन के बाद)—२ समय

प्रसव में पंगुत्व

अर्थात्—

(प्रसव काल में स्त्रियों के अधो भाग का बेकार हो जाना।)

प्रसव काल में मैले की पूरी सफाई न होने और गर्म शरीर में बाहर की शीत हवा के लग जाने से कटि प्रदेश में पीड़ा होकर स्त्री चलने फिरने में लूली या लंगड़ी स्त्री के समान असमर्थ हो जाती है और यदि चलती भी है तो शरीर को टेढ़ा कर और झटका खाकर चलती है—कमर कुछ मुड़ी और छाती आगे को झुकी सी रहती है।

कितनी स्त्रियां चलने फिरने में असमर्थ हो जाती हैं।

इसको दूर करने के लिये

सिद्धार्थक—तेल अति उपयोगी है यथाविधी बने इस तेल के द्वारा महीना २ महीना व्यवहार से—शरीर पूर्ववत् निर्विकार होकर स्त्री चलने फिरने में समर्थ हो जाती है।

नेत्र रोग (अधिमन्थ)

आंखों के रोग में अधिमन्थ इस प्रकार का रोग है जिसमें अर्द्ध भाग में असह्य वेदना के साथ आंख में लाली, सूजन, पानी गिरना इत्यादि उपद्रव, होकर, अन्य समय

मे आंखों की ज्योति चली जाती है। कृष्ण तारिका गल जाती है, आंख बैठ जाती हैं, कदाचित बाहर भी निकल आती हैं।

इस असह्य पीडा से बचने और शेष रही ज्योति को रोके रहने के लिये यह उपचार उपयोगी है।

कड़वावन्डाल—एक नग लेकर घन्टा दो घन्टा काँच के पात्र में भिगोकर मसल छानकर जिस व्यक्ति को देना हो मुँह में पानी भरकर चारपाई पर नीचे गर्दन कर सुलाये और जिस भाग की आंख में पीडा हो नाक के उसी नथने में इसकी ५।४ बूंद डालकर खिचावे। खींचने के बाद मुँह के पानी को थूक दे और दूसरे पानी से २।४ कुल्ले करले। वन्डाल से गला कडवा होकर, गले की गांठे फूल जाती हैं और छींके आकर नाक से पानी गिरता है और तेज जुकाम हो जाता है।

नाक से पानी गिरते रहने देना, और रूमाल से साफ करते रहना चाहिये, और जुकाम ठीक करने के लिए अर्क गावजबा ५।५ तोला और शर्बत बनफ्शा २।२ तोला मिलाकर पीना चाहिए। बनफ्शे की पत्ती भिगोकर पानी से गिरारे करते रहना, साथ ही शिरोरोग की औषधि भी लेते रहना चाहिये।

इस उपाय से सूक्ष्म शिराओं द्वारा आंख में जाने वाला दूषित पानी नाक के द्वारा निकलकर सिर की पीड़ा दूर हो जायगी। और आंख की रोशनी रुक जायगी। ठीक होने पर भी जुकाम व सिरःशूल की औषधि लेते रहना और पेट को साफ रखना चाहिये।

१. जब तक गले में पीडा और जुकाम नाक का बहना या खुश्की बनी रहे सवेरे और रात्री में अर्क गावजबा ५ तोला शर्बत बनफ्सा २ तोला मिलाकर पीना चाहिये।

२. खाने के पहले पथ्यादि क्वाथ शिरोरोग का शहद डालकर पीना।

३. सप्तामृत लोह, आदि शहद में दो दफा।

४. रात्री में सोते समय अतरीफल धनिया दूध के साथ लेना आंख पर बिडालग-लेप का लेप करना।

साधारण आंख के दुखने आदि के लिये रसांजन रसक्रिया उपयोगी है।

कर्णरोग

कर्णरोग (कर्णशूल, कर्णस्राव, कर्णनाद कर्ण बाधीर्य) कान के अधिकांश रोग विशेषतः जुकाम के बिगाड़ से होते हैं। गला नाक कान, इनके मार्ग का एक दूसरे से सम्बन्ध होने के कारण जुकाम द्रव या सूखना, कान के परदे पर भी प्रभाव डालता है। जिससे कान का बहना या बहिरापन हमेशा को हो जाता है और बार बार जुकाम होना उसका सहायक रहता है। अतः कर्ण रोग की चिकित्सा में कान की औषधि के साथ जुकाम की औषधि देते रहने से कान का रोग ठीक हो जाता है। अन्यथा लाभ होता भी है तो टिकाऊ नहीं होता।

जुकाम के लिए दो समय अर्क गावजवा ५।५ तोला और शर्बत बनफशा चार तोला मिलाकर पीना। रात्री में दन्ती चित्रक हरीत की लेना उत्तम है।

कान में डालने के लियेः–निर्गुण्ड्यादि तेल जो विधिपूर्व बना हो। शब्द शूल, बहिरापन, बहना इत्यादि सबको दूर करने में सफल है। कर्णस्राव में कान से गिरने वाली पीप भूलकर भी रोकना नहीं चाहिये। क्योंकि स्राव को रोकने वाले चीजें, जैसे कपर्दिकाभस्म समुद्रफेन चूर्ण, आदि कान में डालने पर कभी पीप से मिलकर सीमेन्ट का काम कर डाट बन जाती है और बहने वाली पीप रुककर कर्ण पालीपर फोड़े का रूप बना देती है और शस्त्र की दरकार पड़ जाती है। और रुकी हुई पीप प्राण भी ले लेती है। अतः कर्णस्राव में कान की सफाई रखना और निर्गुण्ड्यादि तेल का डालना उत्तम है।

उपदंश

उपदंश—बड़ा ही गन्दा और हीन रोग है, यह मनुष्य को पीढ़ियों तक सताता है। और सन्तति में दूषण पैदा करता है। इससे होने वाले भयानक परिणामों और रोगों की गिनती नहीं जिनको समझना दूभर हो जाता है।

उपदंश को शान्त करने वाली अनेक औषधि हैं। किन्तु मिटना कठिन होता है। इसको मिटाने के लिये मुँह पर आने के प्रयोग जिनके द्वारा मसूड़े फूल जाते हैं और

मुँह से निरन्तर पानी झरता है, उपदंश को निर्मूल करता है। यह बड़े. सहनशील व्यक्ति के ही योग्य है।

साधारण रूप में उपदंश और उपदंश जनित रोगों को दूर करने वाले प्रयोग दिये जा रहे हैं।

कर्पूर वटी:—मुँ के द्वारा उपदंश के विकार को निकालने के लिये।

उपदंशादि वटी:—उपदंश जनित रोगों को दूर करने के लिये उत्तम।

सर्प विष

सर्प विष के लिये निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि:—इसमें ऐसी जाति बहुत हैं जिनका विष घातक न होकर केवल साधारण शोथ आदि करने वाला होता है। कुछ ऐसी जाति हैं जिनके विष से कुछ घण्टों में, मृत्यु हो जाती है।

सर्प विष के लिये कई औषधि पाई और सुनी जाती हैं किन्तु इनके अनुभव के लिये चिकित्सक को बहुत ही कम अवसर मिलता है क्योंकि सभी सर्प विष के व्यक्ति मन्त्रोपचार में लग जाते हैं।

अतः इसकी विशेष जानकारी न होकर साधारण तथा जो औषधि व्यवहार में आने पर इसके लिये उचित प्रमाणित हुई प्रस्तुत की जाती है।

पहाड़ी स्थान पर सर्प विष के लिये विषघ्नी नाम की एक वनस्पति पीले, नीले. और सफेद तीन प्रकार के फूलों की पाई जाती है। इसको ६ माशा की मात्रा में ५ काली मिर्च सहित घोट कर घण्टा दो घंटा बाद देने से विषैले सर्प का विष दूर हो जाता है।

इसको नकुल विष और छिपकली के विष पर भी हितकर पाया है।

सर्प विष के लिये कण गूगल चिलम के द्वारा पीना या दूसरे व्यक्ति द्वारा गूगल के धुए को नाक या गुदा से पहुँचाना विषनाशक है।

श्वविष

कुत्ते के विष के लिये हमारे लौकिक प्रयोग और पथ्य जिनकी ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है—बड़े उपयोगी हैं।

कुत्ते के काटे हुवे के लियेः—वर्षा में घूमना, नहाना, मुँह देखना, वर्षा का पानी पीना, कढ़ाई की वस्तु व दूध का न खाना जो पथ्य बताते हैं सर्वथा ठीक हैं।

मेरे देखने में ऐसे कई व्यक्ति आये जिनको इसके विष की चिकित्सा के लिये भेजा, और पूर्ण उपचार के ३ मास बाद वर्षा के जल के प्रयोग से विष जागृत होकर मृत्यु हो गई।

अतः इस पर ध्यान रखना आवश्यक है कि कुत्ते के विष के लिये वर्षा का जल कदापि उपयोग में न लायें।

कुत्ते के विष के लिये

श्वविषारिवटीः—जो आगे दी जायगी १ सप्ताह तक देना बड़ा हितकर है, इसके लेने से रेचन द्वारा-काटने वाले कुत्ते के बालों के रंग वाले बाल निकलते हैं।

इसी प्रकार

मत्स्याक्षीः—वनस्पति को घोट कर पीना इसके विष को निर्मूल करता है।

बघेरे के चर्म की चना प्रमाण गोली ३ दिन देने से भी विष दूर होता है।

विष के जागृत होने पर बघेरे के चर्म को ओढ़ा देने से तुरन्त मुक्ति हो जाती है।

व्रण

प्रत्येक व्रण के लिये उपयोगी मलहर। नित्य मलहर।

यह नये पुराने हर प्रकार के व्रण-नासूर और फोड़े फुन्सी के लिये बड़ा उपयोगी है।

भग्न

किसी भी स्थान की चोट सूजन हड्डी का टूटना दर्द मद के लिये महान उपयोगी है।

मधूच्छिष्ट तेल

इसको बहुत थोड़ी मात्रा में हल्के हाथ से मसलने से भीतर प्रवेश कर जाता है और पसीना भी लाता है।

वाजीकरण

माननीय चरक का चार्य जैसे महर्षि महोदय ने वाजीकरण प्रयोगों को उपयोगी ही नहीं धर्म, अर्थ, प्रीति-यश और पुत्रोत्पति का कारण माना है।

एतदर्थ परमोपयोगी योग

वट दुग्ध पाक प्रस्तुत किया जा रहा है यह सब प्रकार से मनुष्य के लिये बड़ा उपयोगी वड़े हित की औषधी है। और सेवन करने योग्य है।

विविध क्वाथ

गुड़ूच्यादि क्वाथ—गिलोय, नीम की छाल, धनिया, पद्माख, चन्दन लाल, सब संम, मात्रा २ तोला, सब ज्वरों में उपयोगी है।

पंचकोल क्वाथ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, सबसम मात्रा १ तोला तक, आम, आमशूल अग्निमांद्य, वायु की रुकावट में उत्तम है।

ग्रन्थ्यादि क्वाथ—पीपलामूल, इन्द्रजौ, देवद्वार, भार्गी, वायविडंग, भंगरा, सोंठ मिरच, पीपल, चित्रक छाल, पोहकर मूल, कायफल, रास्ना, हड, कटेली दोनों, अजवान, जटामांसी चिरापता, वच, चव्य, वासा, ब्राह्मी, सब समान मात्रा २ तोला सन्निपात ज्वर, मूर्छा, प्रलाप, श्वास, कास कफ, पार्श्वशूल, आफरा वातव्याधी सूतिका रोग सबके लिये अमृत है।

नागरादि क्वाथ—सोंठ, देवदार, धनियां, कटेली दोनों सबसम मात्रा २ तोला ज्वर बचाने के लिये उत्तम है।

बदरी क्वाथ—गुलबनफशा ६ माशा, गावजवां ६ माशा, मुलैठी ६ माशा,

खतमी ३ माशा, उन्नाब नग ४, मुनक्का नग ७, खूबकला ३ माशा, जूफा ३ माशा लेसुड़ा नग ३, काढ़ा कर चीनी डाल कर पीने से जुकाम, खाँसी, कफ, सर्दी का बुखार दूर हो जाता है।

मधुयष्टीकाथ—मुलैठी १ तोला, कुलीजन १॥ माशा, काली मिरच ७, धनियां ६ माशा, गेहूँ का चोकर, मिसरी १॥ तोला,–जुकाम, खांसी, सर्दी, कफ के लिये हितकर है।

पथ्यादिकाथ—(शि० रो०) हड़, बहेड़ा, आंवला, चिरायता, हल्दी, नीम की छाल, गिलोय, सब समान–गुड़ डालकर लेने से शिर का दर्द, आधे सिर का दर्द, शंखक, सूर्यावर्त्त, रतौंधी के लिये प्रसिद्ध है।

हरिद्रादि क्वाथ—हल्दी ६ माशा, बादाम की गिरी ६ माशा, काली जीरी ६ माशा, वासा ६ माशा, मिसरी १॥ तोला–काढ़ा कर देने से सर्दी, बुखार, खांसी, कफ, पसली का दर्द, श्वसनक (इन्फ्लुएञ्जा) निमोनिया, प्लूरसी, खून, या पीप का आना सबके लिये अनुपम है।

धान्यपंचक—धनियां, सोंठ, मोथा, नेत्रबाला, बेलगिरी, सब समान नये पुराने आमातिसार, अग्निमांद्य के लिये उत्तम है।

शतपुष्प क्वाथ—सोंफ २ तोला, गुलकन्द २ तोला, मुनक्का ७ नग, हरड छोटी ३ नग इनका काढा आंव, खून के दस्त, जिसमें बहुत कांखने पर कुछ बूँद आंव खून आवें, यह क्वाथ उत्तम है।

शुण्ठ्यादिशीत कषाय—हरड छोटी ३ माशा, सोंठ ६ माशा, पोदीना, बड़ी इलायची ३ नग काला नमक ६ माशा, सुहागे की खील ३ माशा, जीरा सफेद १॥ तोला, जीरा स्याह, हींग भुनी हुई १ माशा, पानी में पीस छान कर पीने से आंव, आंव का दर्द, वायु की रुकावट दूर हो जाती है। मात्रा ६ माशा।

वासाक्वाथ—वासा ६ माशा, गिलोय ६ माशा, पित्त पापड़ा ६ माशा, नीलोफर ६ माशा, मात्रा दो तोला भिगोकर अथवा काढा कर देने से बुखार, ज्वरजन्य रक्त, सर्दि, कफ–मिश्रित रक्त में उत्तम है।

विडंगक्वाथ—वायविडंग, दकपणी, अजवायन, नीम की छाल, वच, पीपलामूल मलाशय के कृमि, कृमिजन्य विकारों को निर्मूल करता है।

महारास्नादि क्वाथ—रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ, एरण्डछाल, जवासा, कचूर, वच, वासा, हरड, चव्य, नागरमोथा, पुनर्नवा, विधारा, सौंफ, गोखरु, असगन्ध, अतीस, अमलतास, शतावर पीपल, पियावांसा, धनियां, कटेली दोनों, सम भाग मात्रा २ तोला, काढाकर देने से आम वात, शरीर का कम्पन, कुवड़ापन, पक्षावात अपबाहुक गृध्रसी, श्लीपद, जांघ और जानू इनके दर्द में वन्ध्या रोग और योनि रोग में लाभ प्रद है।

इन्द्र वारुणी क्वाथ—काञ्चनार छाल, १ छटांक इन्द्रायण जड़ १ छटांक नीम छाल १ छटांक बब्बूल की फली १ छटांक कटेली छोटी १ छटांक गुड़ पुराना १ छटांक जल १॥ सेर में पकाना, आधा शेष रहे छानकर बोतल में भर कर रखना, सवेरे १॥- छटांक सोते समय आधा कर पीना, पथ्य में मूंग चावल की खिचडी घी डाल कर खाना विरेचन से आमांश निकल कर, गांठया दूर हो जाता है। बढे हुये रक्त विकार, उपदंश वीसर्प में भी उपयोगी है, सेवन अवधि ३ से ७ दिन तक, पेट में कटाव होने पर सौंफ को पका कर पीना चाहिये।

शीत पित्तान्तक क्वाथ—उन्नाव ७ नग, चन्दन लाल ३ माशा, पित्त पापड़ा ३ माशा, मेहन्दी की पत्ती ३ माशा, कंचनार की छाल ६ माशा, ब्रह्म दंडी ३ माशा, नील कंठी ३ माशा, मुण्डी ४ माशा, शर पुंखा ४ माशा, मात्रा २ से ३ तोला तक पका कर या भिगो कर मधु मिश्रित कर लेने से हर प्रकार का शी० पि० (पित्ती रोग), रक्त विकार वीसर्प (ऐग्जिमा) आदि दूर हो जाते हैं।

अश्व गन्धादिक्वाथ—असगन्ध, चोप चीनी, आंवला, उशवा, रास्ना, इनका काढा कर मधुमिश्रित कर लेने से, आम वात सर्वांग का जुड़ जाना ग्रन्थि वात आदि दूर हो जाते हैं। सेवन अवधि १ सप्ताह से २० दिन ठण्डे जल से स्नान ठंडी वस्तु का-खटाई का सेवन, वर्जित है।

रसोनादि क्वाथ—लहसन (इक पोथिया) पीपला मूल, सोंठ, भार्गी पोहकर मूल, चिरायता, अकरकरा समान भाग मात्रा २ तोला शहद डालकर लेने से पक्षाघात आदि में लाभ करता है।

फलत्रिकादि क्वाथ—मेंहदी, त्रिफला, मोथा, दारुहल्दी, देवदारु सब सम भाग, सभी प्रकार के प्रमेहों में उपयोगी है।

गोक्षुरादि क्वाथ—गोखरू, हरड़, जवासा, अमलतास, पाषाणभेद, सब बराबर गुर्दे, मसाने की पथरी, पेशाब की रुकावट, जलन, मूत्र, शर्करा और रक्त का आना दूर हो जाता है।

कांचनार क्वाथ—(गण्डमाला) कचनाल की छाल, सोंठ, वरना की छाल, मुण्डी, सब समान गंठमाला, अपची, और ग्रन्थिक्षय में उपयोगी है।

किरातादि क्वाथ—(ज्योषापस्मार) चिरायता, नीम की छाल, ब्राह्मी, हरड़बहेड़ा आमला, पटोल पत्र, वासा, गिलोय, पित्तपापड़ा, सब समान उल्टी, जलन, खट्टी डकार, सिर का दर्द, हिचकी, घबराहट, चक्कर, आदि उपद्रव सहित हिस्टीरिया को निर्मूल करने वाला उत्तम प्रयोग है।

ब्राह्मी क्वाथ—(उन्माद) ब्राह्मी, शंखपुष्पी, वच, पोहकर मूल, शतावर, सब समान, उन्माद, मानस और मस्तिष्क रोग अपस्मार में उपयोगी है।

देव दार्व्यादि क्वाथ—(सूतिका) देवदारु, वच, कूठ, सोंठ, पीपल, कायफल, नागर मोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, हरड़, गजपीपल, जवासा, गोखरू, धमासा, कटेली, गिलोय, अतीस, काकडा सींगी, काला जीरा, सब समान मैले की रुकावट, बुखार, सिर का दर्द, खांसी, सांस, मूर्छा, पीप, शरीर कम्प, आदि के लिये उत्तम है।

धान्यादि क्वाथ—(कामला) जीरा सफेद ६ माशा, अजवायन ६ माशा, पुनर्नवा ६ माशा, सौंफ ६ माशा, मकोय १ तोला मिश्री डाल कर लेने से यकृत और गुर्दे की क्रिया सुधर कर पेशाब को अधिक लाता और कामला तथा शोथ को दूर करता है।

फल त्रिकादि क्वाथ—(कामला) त्रिफला, गिलोय, कुटकी, नीम की छाल, चिरायता, वासा, सम भाग मात्रा २ तोला से तीन तोला तक दोषानुसार पकाकर या भिगोकर मधु मिश्रित कर लेने से कामला निर्मूल होता है।

पुनर्नवादिक्वाथ—पुनर्नवा, हरड़ बड़ी, नीम की छाल, पटोल पत्र, कुटकी, सोंठ गिलोय, दारु हल्दी, सम भाग मात्रा २ तोला कामला, पान्डु और सर्वांग शोथ के लिये उपयोगी है।

दार्व्यादि क्वाथ प्रदर—दारू हल्दी, रसोत, मोथा, भिलावा, अरडूसा, बेल की छाल, चिरायता सम भाग मात्रा २ तोला यह सफेद, लाल सब प्रकार के प्रदर के लिये उपयोगी है।

न्योग्राधादि क्वाथ—बड़ की छाल, खिलखन की छाल, आम की छाल, बेल की छाल, तुन की छाल, मुलैठी, चिरौंजी, लोध, उदुम्बर (गूलर) पीपल की छाल, महुवे की छाल, जामुन की छाल, हरड़, कदम्ब की छाल, अर्जुन की छाल, सम भाग मात्रा २ तोला मेह, मधुमेह, योनि रोगों, अस्थि भंग में उपयोगी है।

द्राक्षादिक्वाथ (बाल रोग)—गुल बनफशा, गावजवां, खूबकला, मुलैठी, खत्मी, अरडूसा, जूफा, अजवाईन, मुनक्का, सब समान साधारण सा कूट कर पका कर मिश्री या मधु मिलाकर देना, १ वर्ष के बालक के लिये मात्रा ६ माशा, जल का प्रमाण १ चाय का चम्मच जितना, बच्चों की सर्दी, जुकाम, खाँसी, बुखार के लिये उपयोगी है। दस्त लगाना आवश्यक हो तो इसमें अमलतास और डालना चाहिये।

काकमाची क्वाथ—(व्योम) सौंफ ४ तोला, आकाश बेल १ तोला, भारङ्गी २ तोला, मकोय ४ तोला, अजवाईन ३ तोला, पोहकरमूल २ तोला कासनी २ तोला, चित्रक १ तोला, मात्रा २॥ तोला काढ़ा कर गुड़ डाल कर पीने से मासिक समय की असह्य पीड़। मासिक का न होना कम होना सबके लिये उपयोगी है।

जन्मघूटी—जीरा सफेद २ तोला, अजवाईन १ तोला, हरड़ बड़ी १ तोला, अमलतास २ तोला, ढ़कपन्ना ६ माशा, फूल गुलाब ६ माशा, वाय विडंग ६ माशा, सनाय ६ माशा, सौंफ २ तोला, मुलैठी ६ माशा, हल्दी ६ माशा, निशौत ६ माशा एक वर्ष के बालक को ३।४ साशा पकाकर शहद मिलाकर देने से दस्त की रुकावट, हाज्मे की खराबी, पेट के कृमि खांसी, पेट का दर्द और पेट की वायु के लिये उपयोगी है।

विविध चूर्ण

अष्टांगावलेहिका—कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासींगी, काली मिर्च, पीपल, सोंठ,

जवासा, काला जीरा, सम भाग, मात्रा २ माशा शहद में। सन्निपात, हिचकी, श्वास, कास, कण्ठरोध, कफ, स्वेद, ज्वर के लिये उपयोगी है।

सुदर्शन चूर्ण—त्रिफला, हल्दी दोनों, कटेली दोनों, कचूर, त्रिकुट, पीपलामूल, मरोड़फली, गिलोय ६ माशा, कुटकी, पित्त पापड़ा, नागरमोथा, बनफशा, नेत्रबाला, नीम छाल, पोहकरमूल, मुलैठी, कुड़े की छाल, अजवायन, इन्द्र जौ, भारङ्गी, सहजने के बीज, फिटकरी, वच, दालचीनी, पद्माख, चन्दन, अतीस, खरैटी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रक, देवदारू, चव्य, पटोलपत्र, लौंग, वन्शलोचन, कमल पुष्प, तेजपात, जावित्री, तालीसपत्र सम भाग। सबसे आधा चिरायता कड़वा। मात्रा ३ माशा, शीतल जल से। सब प्रकार के ज्वर, मोह, तन्द्रा, भ्रम, तृष्णा, श्वास, कास, पाण्डु, हृदरोग, कामला, त्रिकशूल, कटिशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, नष्ट होते हैं।

शतपुष्प चूर्ण—सौंफ ४ तोला, जीरा सफेद २ तोला, चीनी सम। मात्रा ३ माशा जल के साथ, ३/३ घंटे बाद लेने से आमातिसार, रक्तातिसार दूर होते हैं।

इन्द्रयवादि चूर्ण—(आमातिसार) इन्द्र जौ, कुड़े की छाल, अतीस, बेलगिरी, हड़ छोटी, जीरा सफेद, मोथा, समान भाग लेकर चूर्ण कर आधी खांड मिलाकर मात्रा ६ माशा जल के साथ—खून अधिक आंव मिश्रित अतिसार में उपयोगी—जल, बकरी का दूध अथवा तक्र के साथ यथा रुचि।

द्विगुणोत्तर चूर्ण—काली मिर्च १ तोला, सोंठ २ तोला, कुड़े की छाल ४ तोला। मात्रा ६ माशा छाछ के साथ। ग्रहणी, मन्दाग्नि, अतिसार, रक्तातिसार और अर्श को दूर करता है।

लाई चूर्ण—पारा ६ माशा, गन्धक शुद्ध १ तोला, दोनों की कज्जली कर, सोंठ मिर्च, पीपल १।१ तोला, पांचों नमक ७॥ तोला, हींग भुनी १ तोला, जीरे दोनों २।२ तोला, भांग भुनी ७॥ तोला, २४ घंटे घुटाई करे। मात्रा १ माशा, ग्रहणी, मन्दाग्नि और अतिसार के लिये।

रवल्प लवंगादि चूर्ण—लौंग, अतीस, मोथा, बिल्व छाल, पाठा, मोचरस, जीरा सफेद, धाय के फूल, लोध, इन्द्र जौ, नेत्रबाला, धनिया, राल, काकड़ा सिंगी, पीपल, सोंठ, दगलकाना, यवक्षार, सेन्धव, रसौत, सम परिमाण में। मात्रा ३।३ माशा।

मन्दाग्नि, संग्रहणी, अतिसार, शोथ, पाण्डु, कामला, अष्टीला, कास, श्वास, ज्वर, वमन, जी मिचलाना, अम्लपित्त, शूल आदि रोगों को नष्ट करता है।

विजय चूर्ण—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, विडंग, मोथा, चित्रक, हींग भुनी, पांचों नमक, पीपलामूल, पाठा, यवक्षार, हल्दी, दारू हल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्र जौ, चित्रकमूल, सौंफ, बेलगिरी, अजमोद, सब सम, मात्रा ६ माशा गरम जल से, कास, शोथ, हृदरोग, अर्श, भगन्दर, पार्श्वशूल, वातगुल्म, उदर रोग, आयुक्त, उदावर्त, आन्त्र वृद्धि, गुदा के कीड़े, ग्रहणी दोष, ज्वर, भूतोन्माद, वन्ध्या, स्त्रियों के लिये परमोपयोगी है।

अग्निमुख चूर्ण—हींग भुनी हुई १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हरड़ ६ भाग, चित्रक ७ भाग, कूठ ८ भाग, इनका चूर्ण करना। मात्रा ४ से ६ माशा तक। उदावर्त, अजीर्ण, तिल्ली, उदर, अंगों का दुखना, अर्श, गुल्म, शूल, कास, श्वास, अग्निमांद्य, में लाभप्रद है।

नारायण चूर्ण—चित्रक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सौंठ, मिर्च, पीपल, जीरा सफेद, हाऊबेर, वच, अजवायन, पीपलामूल, सौंफ, वनतुलसी, अजमोद, कपूर, धनिया, वायविडंग, कलौंजी, पोहकरमूल, सज्जीखार, जवाखार, सेंधा नमक, काला नमक, विड़ नमक, समुद्र नमक, कचिया नमक, कूठ १।१ तोला, इन्द्रायन २ तोला, निशोथ ३ तोला दन्ती ३ तोला, सब समान। मात्रा ४-६ माशा विविध अनुपानों से। उदर रोग, मैदा रोग, हृदरोग, पाण्डु रोग, खांसी, श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कुष्ठ, पेट का फूलना, गोले का दर्द, पेट की चुभन, अर्श में लाभ देता है।

हरीतकी खण्ड—हरड़, बहेड़ा, आँवला, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, अजमायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, धनियां, सौंफ, सौंप के बीज, लौंग १।१ तोला, निशोथ, सनाय, ४।४ तोला, हरड़ १६ तोला, खांड ६४ तोला। मात्रा ६ माशा जल या दूध के साथ। अम्लपित्त, शूल, अर्श वातरोग, कोष्ठवात, कटिशूल, आनाह, आदि में उपयोगी है।

द्राक्षादि चूर्ण—मुनक्का, मुलैठी, पिंडखजूर, पीपल, काली मिर्च, सबको सम भाग लें। मात्रा ४।६ माशा शहद में। खांसी में उपयोगी है।

समशर्कर चूर्ण—लौंग २ तोला, जायफल २ तोला, पीपल २ तोला, काली मिर्च ४ तोला, सोंठ ३२ तोला, खाँड ४२ तोला, मात्रा ३ माशा शहद में। कास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मन्दाग्नि, ग्रहणी, इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

हिंग्वेष्टक चूर्ण—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोद, सेंधा नमक, जीरे दोनों, हींग भुनी, सम। मात्रा ६ माशा भोजन के पहले ग्रास में घी के साथ लेने से अग्नि प्रचन्ड होकर विविध वात रोग नष्ट होते हैं।

लवण भास्कर चूर्ण—समुद्र नमक ८ तोला, काला नमक ४ तोला, सेंधा नमक, बिड नमक, खारी नमक, धनियां, पीपल, तेजपात, पीपलामूल, जीरा स्याह, नागकेशर तालीस पत्र, अम्लबेत, २/२ तोला, काली मिर्च, जीरा सफेद, सोंठ १/१ तोला, अनारदाना ४ तोला, दालचीनी, इलायची बड़ी ६।६ माशा। मात्रा ३।३ माशा। वात, कफ, गुल्म, प्लीहा, उदर रोग, क्षय, अर्श, संग्रहणी, बद्ध कोष्ठ, भगन्दर, सूजन, शूल, श्वास, कास, आमवात, हृद्रोग, मन्दाग्नि को दूर करता है।

राजिका चूर्ण—(अर्श) राई, कपीला, नीम की निबोरी की गिरी, तीनों सम भाग। मात्रा ३।४ माशा छाछ के साथ लेने से मल साफ होकर फूले हुये मस्से बैठ जाते हैं। गुदा की चुभन एकदम बन्द हो जाती है।

वचादि चूर्ण—बच, हरड़, हींग भुनी, सेंधा नमक, अम्लबेत, यवक्षार, अजवायन, सम मात्रा में। मात्रा तीन माशा गरम जल से। शूल, उपद्रव सहित गुल्म नष्ट होता है और अग्नि दीप्त होती है।

अभयामोदक चूर्ण—हरड़, पीपलामूल, काली मिर्च सोंठ, तज तेजपात, पीपल नागर मोथा, वायविडंग, आंवला १।१ तोला, दन्ती ३ तोला, मिश्री ६ तोला, निशोथ ८ तोला, शहद में गोली। मात्रा १ तोला, शीतल जल के साथ। पाण्डु रोग, विषरोग, मूत्रकृच्छ, अर्श, भगन्दर, पथरी, प्रमेह, कुष्ठ, दाह, शोथ, उदर रोग में उपयोगी है।

हिंग्वादि चूर्ण—(शा० भ०) हींग भुनी, पाठा, हरड़, धनिया, अनारदाना, चित्रक, कचूर, अजमोद, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, दारुहेर, अम्लबेत, बन तुलसी, तिन्तड़ीक, जीरा सफेद, पोहकरमूल, बच, चव्य, सज्जीखार, यवक्षार, सेन्धा नमक,

काला नमक, विड नमक, खारी नमक, सांभर नमक, सब बराबर। मात्रा ३ माशा, छाछ, गरम जल, मद्य के साथ लेने से वात कफ, गुल्म, हृद्रोग, अष्ठीला, कुक्षिशूल, हृच्छूल, गुदा शूल, योनि शूल, मूत्र कृच्छ, पाण्डु रोग, अरुचि, हिचकी, यकृत्रोग, प्लीहा, कास, श्वास, कण्ठरोग, संग्रहणी, अर्श, दूर होते हैं।

कट फलादि चूर्ण—कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, कांकड़ा सींगी, सब समान चूर्ण करना। शहद में लेने से श्वास, कास, ज्वर को दूर करता है। मात्रा ३ माशा।

हरिद्रादि चूर्ण—हल्दी ४ तोला, मैदा लकड़ी ४ तोला, सज्जी ६ माशा, फिटकरी सुर्ख भुनी हुई ६ माशा, चीनी २० तोला। मात्रा ६ माशा। श्वास, कास, छाती का दर्द, और चोट आदि इससे दूर होती है।

कृष्ण क्षार—इन्द्रायन का फल ऽ।, धतूरे के फल ऽ।, गवारपाठा ऽ।, पुराना गुड़ ऽ।।, पाँचो नमक १। सेर, छोटी कटेरी के फल ऽ। बड़ी कटेरी के फल ऽ।, कद्दू के फल ऽ।, अरडूसा ऽ।, डण्डा थोर ऽ।, अर्क पुष्प ऽ।, सज्जी सफेद ऽ~, फिटकरी ऽ~, सुहागा ऽ~, गोमूत्र २।। सेर, सबको हाँडी में जला कपड़छन कर। मात्रा १–२ माशा शहद में लेने से खाँसी, श्वास, कास और बच्चों की कूकर खाँसी में उपयोगी है।

अर्जुन चूर्ण—केवल अर्जुन की छाल का चूर्ण २।३ माशा जल, या दूध आदि विविध अनुपान के साथ।

रसादि चूर्णतृषा—पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, कापूर ३ तोला, छरील ४ तोला, खस ५ तोला, मिर्च ६ तोला, मिसरी ७ तोला, कपड़ छन कर घुटाई। मात्रा ३ रत्ती। तृषा में लाभप्रद है।

द्राक्षादि चूर्ण-(अ० पि)—मुनक्का, धान की खील, नीलोफर, मुलैठी, खजूर, बंसलोचन, हाउबरे, धनिया, आंवला, मोथा, चन्दन सफेद, तगर, कंकोल, दालचीनी, इलायची बड़ी, तेजपात, नागकेशर, सम भाग लेना चीनी आधी डालकर। उल्टी, जलन, खट्टी डकार, जी मिचलाना, मुँह से पानी गिरना और अरुची को दूर करने के लिये जल के साथ।

तुगाक्षीरी चूर्ण—(अ० पि०) वंशलोचन ३ तोला, इलायची बड़ी १ तोला, आँवला २ तोला, चन्दन भूरा सफेद १ तोला, हरड़ बड़ी ३ तोला, पीपलामूल २ तोला, लौंग ६

माशा, तेजपात ३ माशा। कपड़छन कर आधा भाग मिश्री मिलाकर। मात्रा ४।६ माशा शहद, आँवले का मुरब्बा या आँवले की लेह के साथ। छाती और पेट की जलन, खट्टी डकार, सिर का दर्द, चक्कर, बेहोशी, घबराहट के लिये उत्तम है।

अमृत बीजा चूर्ण—(प्रदरे) आँवले की गुठली के भीतर से निकलने वाले छोटे बीज बारीक पीस कर समान देसी खाँड या मिश्री मिलाकर। ६ माशे की मात्रा में जल के साथ देना। सभी प्रकार के प्रदर रोग में सफल योग है। रक्त पित्त अम्लपित्त में भी उपयोगी है।

लाक्षादि चूर्ण—(रक्त प्रदरे) वंशलोचन, छोटी इलायची, नागकेशर, शीतल चीनी, कमल गट्टे की गिरि, दम्मुल अखवैन (खून खराबा) अंजनार की जड़, सोना गेरू, सेलखरी, लाख पीपल की कच्ची, कमलकेशर, गुलाब जीरा, चन्दन चूरा सफेद, आँवला, सब समान और सबके समान मिश्री। मात्रा ६ माशा जल के साथ। रक्त प्रदर, रक्त पित्त, दाह, तृषा, वमनादि पित्त प्रधान रोगों में हितकर है।

मस्तंग्यादि चूर्ण—(व्यो प्र०) सौंफ ४ तोला, मस्तगी भुनि हुई ६ माशा, जीरा सफेद १ तोला, बड़ी इलायची १ तोला, मिश्री ८ तोला, । मात्रा ६ माशा जलके साथ। कंठ की जलन और परिपाक को सुधारने के लिये।

एलादि चूर्ण छर्दि—इलायची बड़ी, लौंग, गजपीपल, नागकेशर, उन्नाव, धान की खील, प्रियंगु, नागर मोथा, चन्दन सफेद, पीपल, सम। सर्वसम मिसरी, मधू के साथ मात्रा २ माशा। समस्त छर्दि लाभप्रद है।

बब्बूल चूर्ण—बबूल के फूल, बबूल की फली, और छाल, तीनो को बराबर लेकर बारीक कपड़ छन्न कर ६/६ माशा की मात्रा में। पथ्य के साथ अधिक समय लेने से—अकेले—मधुशर्करा को निर्मूल कर देता है। अनुपान जल।

रसामृत चूर्ण—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविडंग, चित्रक ४/४ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, पारा १ तोला। कज्जली कर खरल में पीस कर। मात्रा ४ रत्ती शहद के साथ लेने से अम्लपित्त, अग्निमांद्य, शूल, परिणाम शूल, और यकृत विकार में उपयोगी है।

प्राणदा चूर्ण—हरड़ १२ तोला, मिर्च ४ तोला, पीपल ८ तोला, चव्य ४ तोला,

तालीसपत्र ४ तोला, नागकेशर २ तोला, पीपलामूल ८ तोला, तेजपात ६ माशा, इलायची १ तोला, दालचीनी ६ माशा, कमलनाल ६ माशा, चीनी १२० तोला। सब प्रकार के अर्श, मूत्रकृच्छ, वातरोग, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कृमि, हृद्रोग, गुल्म, शूल, श्वास, कास, अम्लपित्त को नष्ट करता है।

पथर बेर चूर्ण—पथर बेर को अग्नि में तपाकर मूली के रस में बारीक पीस कर रखना। मूत्रकृच्छ, अश्मरी आदि में उपयोगी।

बालतृपारी चूर्ण—संगेयासव ३ माशा, वंशलोचन ६ माशा, छोटी इलायची ३ माशा, सतगिलोय ३ माशा, जहर मोरा ३ माशा, कमल गट्टा ६ माशा, शीतलचीनी ३ माशा, मुक्तापिष्टी १॥ माशा, बारीक पीस कर रखना। बच्चों की प्यास, गर्मी, लूँ लग जाना आदि में उपयोगी। १ वर्ष के बालक को २/३ रत्ती सौंफ के अर्क या गुलाबजल से देना।

चातुर्भद्रावलेहिका—कायफल, पोहकरमूल, काकडासींगी, पीपल, इनका बारीक चूर्ण कर शहत के साथ लेने से खांसी-सांस- बुखार-कफ दूर हो जाता है।

शृंग्यादि लेह—काकडासींगी, त्रिकटु त्रिफला, छोटी कटेली, भारंगी, पोहकरमूल, पांचो नमक, सम कपरछन कर मात्रा २ माशा गर्म जल या मधु से। हिक्का श्वास ऊर्ध्व वात कास अरुचि तथा प्रतिश्याय में लाभप्रद है।

वटिकाएँ

ब्राह्मी वटी—ब्राह्मी, तज, लौंग, केशर, पीपल, पोहकरमूल, पीपलामूल, सौंठ, शतावर, जायफल, जावित्री, काली मिर्च, मीठा चिरायता, शँखपुष्पी, बड़ी इलायची, चित्रक छाल, नागकेशर, अजवायन, अजमोद, कुलिञ्जन, दालचीनी, तेजबल, तेजपात, अकरकरा, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, कस्तूरी, अम्बर, मोती पिष्टी, १।१ तोला मुनक्का सबसे दूनी लेकर, बीज निकाल, सब औषधी कपटछन कर केशर, कस्तूरी, अम्बर दूध में घोट कर औषधियों में मिलादे और मुनक्का कूट कर औषधि मिलादे, १।१ रत्ती

की गोली बनावे। ज्वर, मन्थ ज्वर, आन्त्रिक ज्वर, घबराहट, हृद्रोग, वात, व्याधि, भ्रम, इत्यादि में अनुपान विशेष से देने से परमोपयोगी है।

व्योषादि वटी—व्योष, अम्लवेत, चव्य, तालीस पत्र, चित्रक, जीरा सफेद, तिन्तड़ीक १।१ तोला, तज, इलायची बड़ी, तेजपात १।१ तोला, गुड़ २० तोला, बेर, सम। गोली बना कर, पीनस, श्वास, कास, अरुचि, स्वरभंग नाश करती है।

मारिच्यादि वटी—काली मिर्च १ तोला, पीपल १ तोला, यवक्षार ६ माशा, अनार दाना २ तोला, गुड़ ८ तोला, १।१ माशे की गोली बनाकर मुख में रखने से सब प्रकार की खाँसी श्वास नष्ट होते हैं।

अर्क वटी—विशूची—आक की जड़ की छाल २ तोला, काली मिर्च ३ माशा, नीबू के रस में घोट कर गोली मटर बेर प्रमाण, २।२ गोली यथावश्यक ४।५ वार दुध्धी के साथ या लौंग और सौंफ के अर्क के साथ देनी चाहिये। इससे विशूचिका में लाभ होता है।

भल्लातक वटी—(विशूची) शुद्ध भिलावा ४ तोला, काली मिर्च १ तोला, बारीक पीसकर इमली १ छटाँक भिगोकर, फूलने पर मसल छान कर निकाला हुआ रस मिलावे में डाल खरल करना, गोली छोटा बेर समान २।२ गोली दिन रात में ४।५ वार लौंग के पानी के साथ देना या दूध के साथ देना चाहिये। इससे विशूचिका में पूर्ण लाभ होता है। अजीर्ण, उल्टी, दस्त, साफ होकर अग्नि प्रदीप्त होती है।

रसाञ्जनवटी—रसौत ४ तोला, निबोली की गिरी १ तोला, बकायन की गिरी १ तोला, गेरू १ तोला, गोली जल के साथ बेर प्रमाण इसके सेवन से रक्तार्श में खून बन्द होकर मस्से में शान्ति मिलती है।

अग्निजारवटी—संखिया सफेद ४ रत्ती, शिलाजीत ६ माशा, लोहभस्म ६ माशा, अभ्रकभस्म ६ माशा, अभार ३ माशा।

जलमे मूंगप्रमाण गोली १ समय पानके साथ पुराना जुकाम, खांसी, सांस, नजले में उपयोगी।

लवंगादिवटी—लौंग, इलायची छोटी, काली मिर्च, बहेड़ा ४।४ तो०, कत्था १५ तो०, बबूल के क्काथ में २/२ रत्ती की गोली बनाकर चूसने से श्वास को दूर करती है।

योगराज गूगल—चित्रक, पीपलामूल, अजवायन, काला जीरा, वायविडंग, अजमोद, सफेद जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सेन्धा नमक, कूठ, रासना, गोखरू, धनिया, त्रिफला, नागर मोथा, त्रिकटु, दालचीनी, खस, यवक्षार, तालीसपत्र, तेजपात, इन सबका चूर्ण सम भाग सब चूर्ण के बराबर गूगल, गूगल को घी से कूट कर सब औषधी कपड़छन कर मिलादें। मात्रा २ माशा आमवात, उरुस्तम्भ, क्रिमि, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, अनाह अर्श एवं सन्धि तथा मज्जा गतवात रोग नष्ट होते हैं। अग्नि दीपक है तेज और बल को बढ़ाता है।

महा योगराज गूगल—त्रिकुट, त्रिफला, पाठा, सोये के बीज, हल्दी, दारु हल्दी, अजमोद, वच, हींग, हाऊबेर, गजपीपल, काला जीरा, कचूर, धनिया, बिड नमक, काला नमक, सेंधा नमक, पीपला मूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेज पात, नागकेशर, तुलसी, लोहभस्म, रास्न, गोखरू, गम्ना, अतीस, सोंठ, यवक्षार, अम्लवेत, चित्रक, पोहकर मूल, चव्य, वृक्षाम्ल, अनारदाना, एरण्ड मूल, असगन्ध, निशोथ, दन्तीमूल, देवदारु, हल्दी कुटकी, मरोर फली, आपमार्ग, जवासा, वायविडंग, वगं भस्म, अजवायन, अरडूसा, अभ्रक भस्म प्रत्येक समभाग सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर गूगल लेकर उसे घी से नरम कर कूट कर मिलाले मात्रा १ माशा इसके सेवन से आमवात, भग्न, कटि भग्न, एकांग शोष, क्षत कुष्ठ गृध्रसी सन्धिवात क्रोष्टु शीर्ष सर्वांङ्गवात तथा सम्पूर्ण वातज पित्तज तथा श्लैष्मिक रोग नष्ट होते हैं।

सिंहनाद गूगल—हरड़, बहेड़ा, आंवला इनका क्वाथ ३ पल, शुद्ध गन्धक १ पल, गूगल १ पल, एरण्ड तेल ८ पल, एक लोह पात्र में काढ़ा, एरण्ड तेल तथा गूगल देकर पाक करें जब गूगल मिल जाय तब नीचे उतार कर किञ्चित शीतल होने पर गन्धक डाल कर आलोडन करें। इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज रोक, लूलापन, लँगड़ापन, श्वास, कास, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदर रोग, दारुण, आमवात नष्ट होता है। निरन्तर सेवन से जरा और पलित नष्ट होते हैं। यह अग्नि वर्धक है। मात्रा ६ माशा तक।

चन्द्रप्रभा वटी—कपूर, वच, नागर मोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारु हल्दी, पीपलामूल, चित्रक, धनिया, त्रिफला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल,

दो दिन नीम के रस में घोट कर वेर सम गोली ४६ दिन सेवन करने से सभी प्रकार के कुष्ट समस्त ज्वर पाचन दीपन मनोहर मेद को कम करने वाली मल शुद्धि करने वाली भूख बढ़ाने वाली है।

बालामृत वटी—जहर मोहरा १ तोला, वन्शलोचन ६ माशा, इलायची ३ माशा, दरियाई नारियल १ तोला, पपीता १ तोला, पिस्ते का छिलका ३ माशा, नीवू के बीज ६ माशा, मुस्त्रा गिल्टी ३ माशा, अर्क गुलाब में घोटकर मूंग प्रमाण गोली बच्चों को देने से प्यास तथा सूखा रोग ज्वर लूँ का लगना गर्मी के दस्त दूर होते हैं। गर्मी से उल्टी गर्मी की दस्त प्यास आदि के लिये अर्क गुलाबी के साथ देना चाहिये।

कपूर वटी—लोंग, रस कपूर, मिर्च काली, अजवायन, अजवायन खुरासानी, सब २/२ माशा, लोहे की कढ़ाई में १० तोला बकरी का दूध डाल कर घोटे १/१ माशा की गोली बनावे। प्रातः १ गोली दूध के साथ, पथ्य दूध भात, मुँह आने पर कचनार की छाल के कुल्ले करें। इससे उपदेश और उपदेश जनित चत दूर होते हैं।

चतारि गुटी—काहू के बीज ५ तोला, कुरफे के बीज ४ तोला, वन्शलोचन २ तोला, सत मुलैठी २ तोला, फूल गुलाब १ तोला, धनिया १ तोला, गोंद कतीरा ६ माशा, सफेद चन्दन ६ माशा, कपूर १॥ माशा गेरू ६ माशा, अनार के फूल ६ माशा, बिहीदाना ३ माशा कपड़छन कर गुलाब जल में गोली वेर प्रमाण इनके चूसने से खांसी तर होकर कफ सुगमता से निकलता है और खून का जाना रुक जाता है।

काचनार गूगल—काचनार की छाल, ५ पल, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, प्रत्येक १ पल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, प्रत्येक आधा पल, वरने की छाल, १ तोला तेजपात, छोटी इलायची, दाल चीनी, प्रत्येक आधा तोला सब चूर्ण के समान गूगल इसको घी से कूट कर चूर्ण मिलाकर १।१ मासे की गोली बनावे प्रति दिन प्रातः सेवन करने से गल गण्ड, अपची अर्बुद, ग्रन्थि व्रण, गुल कुष्ट भगन्दर आदि रोग नष्ट होते हैं।

शुक्र मात्रिका वटी—गोरवस, त्रिफला, तेजपात, इलायची, रसौत, धनियां, चव्य, जीरा सफेद, तालीसपत्र, सुहागा भुना हुवा, अनारदाना, सब ४।४ तोला गूगल १ तोला पारा, गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म ४।४ तोला त्रिफला के काढ़े में खरल कर गोली झड़बेर, प्रमाण, सम्पूर्ण, प्रमेहों में उपयोगी।

खादिरी गुटी— खैर की छाल, पोहक मूल, काकड़ा सींगी, कायफल, मुलेठी, हड़ वड़ी, लौंग, सोंठ, मिरच, पीपल, अतीस, जीरा जवासा, गिलोय, कटेली छोटी, कटेली वड़ी, वहेड़ा, सव वरावर, और सवके वरावर कत्था डालकर खैर की छाल, कटेली, अनार के छिलके के काढ़े की भावना देनी, नई पुरानी खाँसी, और साँस के लिये उत्तम है।

उपदंशारि गुटी—इलायची छोटी, काली मिर्च, लौंग, रस कपूर, सम भाग सबको पीस कर १।१ रत्ती की गोली बनाकर ६ दिन, १४ दिन, २१ दिन, सुबह शाम लेने से उपदंश, उपदंश जनित दूसरे रोग दूर हो जाते हैं, पथ्य लवण रहित अन्न, दूध, घी।

एलादि गुटी तृषा—इलायची छोटी, लौंग, पीपल, खस, नागर मोथा, चन्दन सफेद, धनियां, आँवला, वटांकुर, कमल गट्टा की मींगी, मिश्री सम, मधू से गोली चणक प्रमाण, तृषा, शुष्क कास, क्षत कास में लाभप्रद है।

रसौषधियें

कस्तूरी भैरवः—हिंगुल १ तोला, शु० विष १ तोला, सुहागा भुना १ तोला, जायफल १ तोला, काली मिर्च १ तोला, पीपल १ तोला, कस्तूरी १ तोला, जल या अदरख के रस से १।१ रत्ती की गोली बनावें। अनुपान अदरख का रस वात कफ जन्य रोग, मन्दाग्नि, त्रिदोष, घोर कास, श्वास, क्षय, ऊर्ध्वज रोग, विषम ज्वर को दूर करता है, बल और ओज बढाता है।

आनन्द भैरव—हिंगुल, शुद्ध विष, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुहागा भुना, शुद्ध गन्धक, समभाग जम्बीर रस से एक पहर मर्दन कर गोली १।१ रत्ती की बनावें। कास, श्वास, सन्निपात, ग्रहणी हलीमक, अतिसार, प्रमेह, अजीर्ण, मन्दाग्नि रोगों में हितकर है।

वातराज वटी—(र० रा० सु) पारा, गन्धक (कजली कर), चातुर्जात, त्रिकुट, जीरे दोनों, भीम सेनी कपूर, तालीस पत्र, केसर, जायफल, लौंग, अजवायन, चित्रक,

एलुवा, गिलोय, सचन्दन, मुनक्का, जटमांसी, चव्य, शतावर, वच, जावित्री, वायविडङ्ग, धनिया, त्रिफला, तगर, वासा १।१ तोला, लोहभस्म ८ तोला, अफीम शुद्ध ४ तोला जल में घोट कर २।२ रत्ती की गोली—वातव्याधि, उरुस्तज ज्वर, दाह निद्रा का नाश, अतिसार, भ्रम, बवासीर, उपदेश पथरी, प्रमेह, रक्तपित्त, उरःक्षत, अरुचि, इत्यादि को दूर करता है। वाजीकरण है।

शृंगाराभ्र—अभ्रकभस्म ८ तोला, कपूर, जावित्री, नेत्रवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीस पत्र, तज, नागकेशर, कूठ, धाय के फूल, ४-४ माशे—हरड, बहेडा, आंवला, सोंठ, पीपल, मिर्च २-२ माशे, इलायची, जायफल, शुद्ध गन्धक ८।१८ माशे, रस सिन्दूर ४ माशा, शतावर के रस में घोट कर २-२ रत्ती की गोली बनावें।

ज्वर, उदरपीडा, राजयक्ष्मा, क्षय, कास, श्वास, शोथ, नेत्रपीडा, प्रमेह, वमन, शूल, अम्लपित्त, तृषा, गुल्म, पाण्डु रक्तपित्त, विषदोष, पीनस, प्लीहा, आमवात, कफ, वात, पित्त के रोग सेवन करने से दूर होते हैं।

लक्ष्मीविलास रस—वगंभस्म, कान्त लोह भस्म, अभ्रकभस्म, रस सिन्दूर, शुद्धहरताल, शु० मनः सिला; स्वर्पर भस्म, प्रत्येक ४-४ तोला छोटी इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, जीरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगर दालचीनी, वन्शलोचन प्रत्येक १-१ तोला केशराज और कुल्थी के रस में ३-३ भावना देकर घोट कर १-१ रत्ती की गोली बनावें। अनुपान जल या शहद। इसके सेवन से क्षत, कास, श्वास, ज्वर, हलीमक, पाण्डु, शोथ, शूल, प्रमेह, अर्श, नष्ट होते हैं।

कल्याण सुन्दर रस—अभ्रकभस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म चित्रक के क्वाथ से एक दिन मर्दन कर हस्ती शुण्ठी के रस को ७ भावना देकर १-१ रत्ती की गोली। शहद में सेवन से उरस्तोय, हृदरोग, वक्षोवात छाती में हुवा रक्त सञ्चय, प्रभति रोग तथा फुस्फुस (फेंफडे) में उत्पन्न होने वाली व्यधियां नष्ट होती हैं।

सर्वांग सुन्दरी रस—पारा १ भाग, शुगन्धक १ भाग, सुहागा २ भाग, मुक्ताभस्म १ भाग, प्रवाल भस्म १ भाग, शंख भस्म १ भाग, स्वर्णभस्म आधा भाग, इन्हें नीबू के रस में मर्दन कर पिण्डाकार कर लघु पुट दें। स्वांग शीतल होने पर तीक्ष्ण लोह

भस्म से आधा भाग हिंगुल मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करलें। मात्रा १ रत्ती अनुपान विशेष राजयक्ष्मा, अर्श, ग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर वातज रोग तथा श्लैष्मिक रोग नष्ट होते हैं।

वसन्त मालती—स्वर्ण भस्म ६ माशा, मुक्ता १ तोला, हिंगुल १॥ तोला, काली मिर्च २ तोला, खर्पर ४ तोला मक्खन से स्निग्ध कर पीछे नीबू के रस से घोटे चिकनाई दूर होने पर ४/४ रत्ती की गोली बनावें। मात्रा १/१ रत्ती पीपल मधु के साथ लेने से जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, कास दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है।

पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लोह—पारद १ तोला, गन्धक शुद्ध १ तोला, (कज्जली) पर्पटी की तरह पाक कर इसके साथ स्वर्णभस्म २ माशा, लोहभस्म २ तोला, ताम्रभस्म २ तोला, बंगभस्म ४ माशा, स्वर्ण गैरिक ४ माशा, प्रवाल भस्म ४ माशा, मुक्ताभस्म २ माशा, शंख भस्म २ माशा, मुक्ताभस्म २ माशा, इन्हें जल से पीस गोला बना सीप में रख सन्धि बन्धन कर कपोत पुट दें। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक। विविध अनुपान से अष्टविधज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म, विषम ज्वर, कामला, शोथ, मेह, अरुचि, ग्रहणी, आमदोष, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार आदि रोग नष्ट होते हैं।

महाज्वरांकुश विषम ज्वर—शु० पारद, शु० वत्सनाग, शु० गन्धक, ३/३ माशे शु० धत्तूर बीज ६ माशा, चोक सबसे दूना, नीबू अथवा अदरख के रस में २/२ रत्ती देने से त्रिदोष ज्वर, नित्य आने वाला ज्वर, दो बार, इकतरा, तिजारी-चातुर्थिक, विषम ज्वरों को दूर करता है।

कर्पूरादि वटी रस--शिंगरफ, अफीम, नागरमोथा, इन्द्र जौ, जायफल, कापूर सम जल से १ रत्ती की गोली इसके सेवन से ज्वरातिसार, अतिसार, रक्तातिसार, ग्रहणी नष्ट होते हैं।

सिद्ध प्राणेश्वर—शु० गन्धक, पारद, अभ्रकभस्म ४।४ तोला, सज्जीक्षार, सुहागा, यवक्षार, सेंधा नमक, विड नमक, सांभर नमक, खारी नमक, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रजो, जीरा सफेद, काला जीरा, चित्रक, अजवायन, हींग भुनी हुई, विडंग, सोये बीज १।१ तोला, जल से पीस कर ४।४ रत्ती की गोली। ज्वरातिसार, अतिसार ज्वर, त्रिदोषज, ग्रहणी, रक्तपित्त, वात रोग मूल परिणाम शूल, शूल नष्ट होते हैं।

लोकनाथ रसः—रस सिन्दूर १ भाग, गन्धक ४ भाग इन्हे पीस कोडियों में डाल उसके मुँह को सुहागे से वन्द कर मिट्टी के पात्र में वन्द कर कपोत फुट दें। स्वांग शीतल होने पर पीसकर मात्रा ४ रत्ती सेवन करे। सब प्रकार के अतिसार दूर होते हैं।

अग्निकुमार रसः—पारद, गन्धक, सुहागा प्रत्येक १ तोला, शुद्ध विष ३ तोला, वराटिका भस्म ३ तोला, शंख भस्म ३ तोला, काली मिर्च ८ तोला जम्बीर के रस से मर्दन कर ४/४ रत्ती की गोली बनावें। इसको विसूचिका, अजीर्ण, वात व्यधि तथा ग्रहणी रोग में सेवन करना चाहिए।

अग्नितुण्डी रस—पारद, शु० विष, शु० गन्धक, अजमोद, त्रिफला, सज्जीखार, यवक्षार, चित्रक, सेंधानमक, वायविडंग, समुद्र नमक, सुहागा, प्रत्येक सम भाग सम्पूर्ण के समान कुचला इसे जम्वीर के रस से मर्दन कर काली मिर्च के वरावर गोली बनावें। इससे मन्दाग्नि नष्ट होती है।

रसपर्पटी—रस (पारद) गन्धक सम कज्जली कर पर्पटी विधान से सिद्ध करें। अर्श, ग्रहणी, शूल, अतिसार, कामला, पाण्डु, प्लीहा, गुल्म, जलोदर, आमवात, कुष्ठ, शोथ, अम्लपित्त को नष्ट करता है।

लोहपर्पटी—पारद, गन्धक, लोह भस्म, सम पर्पटी वनाकर देने से सूतिका रोग, ज्वर, ग्रहणी, आम, मूल, अतिसार, पाण्डु, कामला, प्लीहा, मन्दाग्नि, भस्मक, आमवात, उदावर्त्त को नष्ट करता है।

स्वर्ण पर्पटी—स्वर्ण भस्म ३ माशा, पारद १ तोला, गन्धक शुद्ध १ तोला, पर्पटी विधान से सिद्ध कर देने से ग्रहणी, अष्टविध शूल दूर करती है। वृष्य है।

पञ्चामृत पर्पटी—शुद्ध गन्धक ४ तोला, पारा २ तोला, लोह भस्म १ तोला, अभ्रक-भस्म ६ माशा, ताम्रभस्म ३ माशा, पर्पटी वनाकर सेवन से ग्रहणी, अरुचि, अर्श, वमन, पुरानातिसार, ज्वर, रक्तपित्त, वलीपलित नेत्र रोग दूर होजाते हैं।

विजय पर्पटी—शुद्ध गन्धक ४ तोला, पारद २ तोला, रौप्यभस्म १ तोला, स्वर्ण-भस्म ६ माशा, वैक्रान्तभस्म ३ माशा, मुक्ताभस्म ३ माशा, इसको पर्पटी विधान से तैयार कर देने से पुरातन ग्रहणी, आमशूल, आमातिसार, पक्वातिसार, अर्श, क्षय, शोथ,

कामला, पाण्डु, प्लीहा, जलोदर, आंत्रिकशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह, विषम ज्वर, वात ज्वर, पित्त ज्वर, कफ ज्वर, दूर होते हैं।

चौसठी पीपल—पत्थर के खरल में सोना लगवा कर पीपल को कपड़छन कर ६४ प्रहर निरन्तर घुटवाकर काम में लें।

प्रवाल पञ्चामृत—प्रवाल १ तोला, मुक्ता ६ माशा, शंख भस्म ६ माशा, वराटिका-भस्म, मुक्ताभस्म ६ माशा, इनको आक के दूध में घोट कर पाँच बार लघु गज पुट देकर पीसलें। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक आनाह, गुल्म, उदर, प्लीहा, कास, श्वास, अग्नि मांद्य, अजीर्ण, हृद ग्रहणी, अतिसार प्रमेह, मूत्ररोग, मूत्र कृच्छ, अश्मरी इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

राजमृगांकः—रस सिन्दूर ३ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, मनःशिला, हरताल, गन्धक शुद्ध, प्रत्येक २ भाग इन्हें पीस कौड़ी में भरकर बकरी के दूध से सुहागा पीसे कोड़ी का मुँह बन्द कर मृतपात्र में कौड़ी को सन्धि बन्धन कर गजपुट दें। स्वांगशीत हो जाने पर पीस कर मात्रा १ रत्ती अनुपान मधु तथा घृत पीपल, काली मिर्च, के साथ सेवन करने से सब प्रकार का राज यक्ष्मा नष्ट होता है।

रत्नगिरि रसः—पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म ६/६ माशा, लोहभस्म ३ माशा वैक्रान्त भस्म १॥ माशा, भांगरा सेहजना, अरडूसा, वचसिम्भालु, चित्रक, गोरखमुण्डी, कटेली, गिलोय, अरणी, गवार पाठा, ब्राह्मी की ३/३ भावना देकर शराव सम्पुट कर लघु गज पुट में फूँक दें। पीछे निकाल पीस कर मात्रा १ रत्ती। नवज्वर दूर करता है। योग वाही है।

कांचनाभ्र रस—स्वर्णभस्म, रस सिन्दूर, मुक्ताभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, हरड़, रजतभस्म, कस्तूरी, मनःशिला, प्रत्येक समभाग जल मे पीस आधी रत्ती की गोली बनाना, यथादोष अनुपान से क्षय कफपित्तज, कास, प्रमेह, ८० प्रकार के वातरोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह रस बल वृद्धि, वीर्य्य वृद्धि और ओज बढ़ाता है।

मुक्ता-पंचामृत—मोती ८ माशा, प्रवाल ४ माशा, वंगभस्म २ माशा, शंखभस्म १ माशा मुक्ताभस्म १ माशा सबको दूध, विदारीकंद, गवारपाठा, शतावर, तुलसी,

हंसराज के रस में खरल कर ५/५ पुट देना मात्रा २ से ४ रत्ती जीर्ण ज्वर और क्षय के लिये सर्वोत्तम है।

एकांगवीर—शुद्धगन्धक, चन्द्रोदय, वंगभस्म, नागभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म लोहभस्म सोंठ मिर्च पींपल सम। भावना त्रिकुटा, त्रिफला, निर्गुण्डी, चित्रक, भांगरा, सहजंना, कुचला, अकरकरा, अदरख, प्रत्येक की ३/३ देकर १ रत्ती देने से पक्षाघात अर्दित धनुर्वात अर्द्धांगवात, विश्वाची, वातव्याधि नष्ट होती है।

चन्द्रकला रस मेहे—छोटी इलायची, कापूर, शिलाजीत, आंवला, जायफल, नाग केशर, सेमल का मूसला, रस सिन्दूर अभ्रक भस्म, वंग भस्म, लोह भस्म, सम, गिलोय और सेमल के क्वाथ से भावित कर २/२ रत्ती की गोली बनालें। एक एक गोली दूध या शहद के सेवन से समस्त प्रमेह नष्ट होते हैं।

ग्रहणी कपाट—पारा, शुद्धगंधक, सोंठ, मिर्च, पीपल, जीरा काला, अजवायन, काला नमक, जीरा सफेद, सुहागा भुना, धनिया, हींग भुनी सब समान भाग और सबकी बराबर पीली कोडी की भस्म, मात्रा २ माशा अग्निमांद्य अतिसार ग्रहणी संग्रहणी में परमोत्तम योग हैं।

वंगेश्वर रस—पारद १ तोला वंगभस्म ३ तोला शुद्ध गन्धक ३ तोला गंवारपाठे में घोट गोला बनाकर हांडी में बन्द कर शराब रख सन्धि बन्धन कर वालुका यन्त्र से एक दिन तीक्ष्णग्नि द्वारा पकावें स्वांग शीतल होने पर मात्रा २ रत्ती पीपल मधु के साथ लेने से समस्त प्रमेह नष्ट होते हैं।

मालती कुसमाकर—स्वर्णभस्म १ भाग, कपूर २ भाग वंग भस्म, नागभस्म, लोहभस्म, प्रत्येक ३ भाग अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म प्रत्येक चार भाग इन्हें एकत्र मिश्रित कर गौ दूध, केले के फूल का रस, ईख, श्वेत कमल, गूलर के रस से पृथक पृथक सात बार भावना दें। मात्रा २ रत्ती यह सम्पूर्ण-प्रमेह बहुमूत्र सोमरोग इत्यादि को नष्ट करता है।

स्मृतिसागर—पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, तपकी, शुद्ध मनःशिला, स्वर्णमाक्षिक भस्म, ताम्र भस्म, सब समान भाग, तेल मालकाँगनी १ तोला डालकर, ब्राह्मी और वच

के काढ़े की भावना देकर मात्रा १ रत्ती मधु के साथ देने से समस्त मस्तिष्क रोग, उन्माद, अपस्मार, और मानस रोगों में उपयोगी है।

योगेन्द्र रस—रस सिन्दूर २ तोला, स्वर्ण भस्म १ तोला, कान्त लोह भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, मुक्ता भस्म १ तोला, वंग भस्म १ तोला, गवार के पाठे के रस में घोटकर गोला बना ३ दिन धान्य राशि में रख कर २।२ रत्ती की गोली बनाले। यह रस योगवाही है, सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है। वात, पित्तज रोग, प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, अर्श, मूर्च्छा, उन्माद, यक्ष्मा पक्षाघात, नष्टेन्द्रियता शूल, अम्लपित्त इनको दूर करता है।

स्वर्ण वंग—रांगा २ तोला, नवसादर २ तोला, पारा २ तोला, गन्धक २ तोला, कज्जली कर कपर मिट्टी की हुई आतशी में डालकर वालुका यन्त्र द्वारा ४ पहर तक पकावें, मात्रा ½ रत्ती रसायन बल वर्द्धक, प्रमेह को दूर कर श्वेत प्रदर तथा सब प्रकार के प्रदर सोम रोग दूर होते हैं।

लक्ष्मीनारायण रस—शुद्ध गन्धक, सुहागा, शुद्ध विष, शुद्ध हिंगुल, कुटकी, अतीस, पीपल, इन्द्रजौ, अभ्रक भस्म, सेन्धा नमक, सम, दन्तीमूल और मदनफल के क्वाथ से ३ दिन मर्दन कर १ रत्ती की गोली अनुपान, अदरख का रस वातादि दोषों से उत्पन्न ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, रक्तातिसार, आमातिसर, प्रमेह, प्रसूतवात आदि रोगों को नष्ट करता है।

सप्तामृत लोह नेत्र रोगे—हरड़, बहेड़ा, आँवला, लोह भस्म, मुलैठी सम, मधुघृत के साथ सुबह शाम सेवन से, तिमिर, क्षत, कण्डू, राड्यन्ध, अर्बुद, तोद, दाह, शूल, पटल, काँच, पित्त प्रभृति रोगों को नष्ट करता है। दन्त, कर्ण, कण्ठ, ऊर्ध्वभाग में जनित रोगों में लाभप्रद है। दीर्घ दृष्टि, अग्निवर्द्धक, बालों को काला कर पलित रोग को दूर करता है

वसन्त कुसुमाकर—सुवर्णभस्म ६ माशा, रौप्य भस्म ६ माशा, वंग भस्म ६ माशा, नाग भस्म ६ माशा, लोह भस्म ६ माशा, अभ्रक भस्म १ तोला, मकरध्वज १ तोला, प्रवाल पिष्टी १ तोला, मुक्तापिष्टी १ तोला। दूध, ईख, वासा, लाख, नेत्रवाला, कदली रस, कमल पत्र, मालती पुष्प, प्रत्येक की ७ भावना देकर पीछे कस्तूरी की देकर १।१

रत्ती की गोली बनाना। इसके सेवन से हृद, मेह वृष्य-रसायन सन्तानोत्पादक, क्षय, कास, तृषा, उन्माद, श्वास, रक्त, पित्त, विष रोग नष्ट होते हैं। मिश्री चन्दन के साथ अम्लपित्तादि रोगों में पाण्डु शूल मूत्राघात अश्मरी को नष्ट करता है।

वसन्त तिलक—स्वर्ण भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, लोह भस्म ३ तोला, पारद ४ तोला, गन्धक ४ तोला, वंग भस्म २ तोला, मुक्ता भस्म ४ तोला, प्रवाल भस्म ४ तोला, इसमें गोखरू, वासा, ईख रस से मर्दन कर मूषा में अवरुद्ध कर जंगली उपलों से वालुका यन्त्र में ७ पहर पचाकर स्वांग शीतल होने पर कस्तूरी तथा कपूर मिश्रित कर मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती कास, श्वास, पाण्डु, क्षय, शूल ग्रहणी, विषदोष, प्रमेह, अश्मरी, हृदरोग, तथा ज्वर आदि को नष्ट करता है, वृष्य आयुष्य पुष्टिकर है।

चन्द्रामृत रस—त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, धनियां, जीरा सैन्धव १।१ तोला पारद, गन्धक, लोह भस्म २।२ तोला, सुहागा भुना ८ तोला, काली मिर्च ४ तोला, बकरी के दूध से मर्दन कर ४ रत्ती की गोली बनाकर अनुपान नीलोत्पल रस, कुल्थी का रस, पीपल, मधु, अदरख का रस से सेवन करने से कास, रक्त निष्ठीवन, ज्वर, श्वास, तृष्णा, दाह भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदर, पानाह, कृमि, हृदरोग, पाण्डु, जीर्ण ज्वर दूर होते हैं।

नूतनलोह—लोहभस्म २० तोला इसमें संखियां १ तोला कपूर ३ माशा देकर गंवार पाठे के रस में घोट कर सुखा कर गज पुट दें। इसके बाद हरताल १ तोला कपूर ३ माशा डाल कर गंवार पाठे के रस में घोट कर टिकिया बना सुखा कर गज पुट दें। इसके बाद गन्धक १ तोला, कपूर ३ माशा डाल गंवार पाठे से घोट टिकिया बना सुखा गज पुट देना। इसके बाद शिगरफ १ तोला, कपूर ३ माशा, गंवार पाठे का रस घोट टिकिया बना सुखा गज पुट देना। इस प्रकार क्रमशः १२ पुट देना कुल १६ पुट होने के बाद इसको १ पोटली में बाँध हांडी में डालकर जहां गीली जगह रहती हो जैसे बगीचा, उस जमीन में १५, २० दिन के लिये गाड देना चाहिये। इसके बाद इसको काम में ले। इसकी आधा रत्ती बादाम की लुगदी में चालीस दिन तक सेवन से श्वास बिलकुल बन्द हो जाता है। इसके ऊपर दूध, घी, फल अच्छी मात्रा से सेवन करना चाहिये। गुड़, तेल, मिर्च, खटाई का परहेज रखना चाहिये।

कांचनाभ्र—स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म,

रौप्यभस्म, हरड, मनशल, सब बराबर जलमें पीस कर मात्रा १ रत्ती, क्षय, कास, कफ, प्रमेह, वात रोगी में उपयोगी है।

क्रव्याद्—पारा ५ तोला, गंधक १० तोला, लोहभस्म २ तोला, पीपल ८ तोला पींपलामूल २ तोला, चित्रक २ तोला, सोंठ २ तोला, लौंग २ तोला, काला नमक ५ तोला, कालीमिरच १० तोला, सुहागा १० तोला नीबू के रस में गोली ४ रत्ती की अग्निमांद्य ग्रहणी अम्लपित्त आदि में उत्तम।

अमृतार्णव—पारा, गंधक, लोहभस्म, सुहागा, कचूर, धनियां सुगन्धवाला, जीरा सफेद, अतीस सब समान बकरी के दूध में गोली झडबेर प्रमाण, सर्वातिसार, ग्रहणी शूल अम्लपित्त, कास, गुल्म, अग्निमांद्य में उपयोगी।

अमृत रस--पारद, गंधक, सोमलसफेद, कत्था, समान भाग लेकर जवासे के काढे की ७ भावना मात्रा बाजरा प्रमाण आमवात उपदंश जनित विकार अन्य वात रोगों में उपयोगी।

दग्द सिक्थ—एक चौड़े मुँह के मिट्टी के पात्र में पहिले १२ तोला आक के फूल बिछाकर-इनके ऊपर ६ तोला सांभर नमक छिड़के और नमक के ऊपर ३ तोला हिंगुल के टुकड़े रखे इनके ऊपर फिर १२ तोला आक के फूल और फूलों के ऊपर ६ तोला नमक रखदें-पात्र मुँह को दूसरे पात्र से ढककर कपड़ मिट्टी करें-सूखने पर १०० जंगली छानों से फूंक दें-ठंडा होने पर इसका द्रव्य निकाल कर एक चीनी के पात्र में रखें और उसको १० तोला जम्बीरी नींबू के रस में भिगोदें और १० तोला पीली चमेली के फूल डालकर ७ दिन रखें-आठवें दिन निकालकर मिट्टी के पात्र में चूल्हे पर चढ़ाकर जलालें-ठण्डा होने पर शीशी में भरदें।

कठिन श्वास और कास में ४ चावल प्रमाण, पान शहद वा अदरक के रस में सेवन करें।

प्रभाकर वटी—स्वर्णमाक्षिक भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन, शिलाजीत सब सम-अर्जुन के काढ़े की भावना देकर गोली २ रत्ती हृद रोग के लिये उपयोगी।

चतुर्मुख रस—हिंगुल, रस कपूर, संखिया, दाल चिकना चारों को समान लेकर (शराब) में घोटकर टिकिया बनाकर सुखाकर-डमरूयन्त्र से उड़ाकर-ऊपर लगे भाग को

उतार कर रखें-मात्रा २ चावल-मुनक्का के भीतर रख कर पानी से निगलना १ समय पथ्य-बिना नमक-पूरी-रोटी चावल-दूध-सेवन अवधि ७ से ६ दिन।

श्री जयमंगल—हिंगुल पारा गन्धक सुहागा ताम्र वंग भस्म स्वर्णमाक्षिक सैन्धव काली मिर्च ३।३ माशा स्वर्णभस्म ६ माशा कान्तलोह ३ माशा रौप्यभस्म ३ माशा धत्तूररस सिम्मालू दशमूल चिरायता कुटकी इनकी ३।३ भावना अनुपान जीरक चूर्ण मधु से देने पर ज्वर जीर्ण ज्वर अष्टविध साध्यासाध्य विषम धातु गत ज्वर बलकारक पुष्टिकारक है।

सर्वज्वरहर लोह—चित्रक त्रिकटु त्रिफला विडंग नागरमोथा गजपीपल पीपलामूल खस देवदारु चिरायता नेत्रवाला कुटकी छो० कटेली सहजने के बीज मुलैठी इन्द्रजो १।१ तोला लोहभस्म २० तोला घुटाई सर्वज्वर प्लीहा अग्रमांस यकृतरोग नष्ट होता है।

मकरध्वज—स्वर्ण पत्र १ तोला पारद ८ तोला शु० गन्धक १६ तोला इसकी कज्जलीकर काच कूपी में बालुका यन्त्र द्वारा सिद्ध करे। मात्रा १ रत्ती पान में रसायन अनुपान विशेषेण विविध रोग नाशक सन्निपाते अरुचि में।

कनक सुन्दर—हिगुल का० मिर्च शु० गन्धक पीपल टंकण शु० विष शु० कनक बीज सर्वसम विजया के पानी से एक पहर पीसकर चणक प्रमाण गोली बनाले। दही चावल, अथवा छाछ और चावल के पथ्य के साथ सेवन से ग्रहणी अग्निमांद्य ज्वरातिसार अतिसार दूर होते हैं।

रसामृत—त्रिकुटा त्रिफला नागरमोथा वायविडंग चित्रक छाल २।२ तोला गन्धक १ तोला पारा ६ माशा इनको घोटकर मात्रा ४ रत्ती घी शहद में लेने से अथवा वृद्धि क्रम से दूध सेवन से अम्लपित्त मन्दाग्नि कामला पाण्डू रोग दूर होते हैं।

सूतशेखर—पारद, गन्धक, सुवर्णभस्म, सुहागा, शु० विष, त्रिकटु, शु० धतूर बीज, ताम्रभस्म, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर, शँखभस्म बिल्वमज्जा कचूर ३।३ माशा भांगरे के रस में एक दिन मर्दन कर मात्रा १ रत्ती अनुपान मधू घी अम्लपित्त छर्दि शूल गुल्म कास ग्रहणी श्वास मन्दाग्नि उग्रहिक्का उदावर्त्त शरीर पर चकते राजयक्ष्मा नष्ट होते है।

सिद्धप्राणेश्वर—शुगन्धक, पारद, अभ्रक, प्रत्येक ४/४ तोला का० मिर्च, टंकण,

यवक्षार, पांचोनमक, त्रिफला, व्योप, इन्द्रजौ, दोनो जीरे, चित्रक, अजवायन, हींग वाय-विडंग, सौंफ, प्रत्येक १/१ तोला जल या पान के रस में घोट कर ४/४ रत्ती की गोली पान के रस अथवा शहद में १/१ गोली लेने से ज्वरातिसार, त्रिदोपज ग्रहणी. रक्तार्श शूल, परिणामशूल में लाभ करता है।

कल्पतरु रस—शु० पारद, शु० गन्धक, शु० विप, शु० मनःसिला, सनाय, सुहागा, १/१ तोला का० मिर्च ८ तोला, सोठ, पीपल २/२ तोला इनकी घुटाई कर १/१ रत्ती अदरख के रस में वातश्लेष्म रोग में, सोंठ मिला कर वात कफ ज्वर में, श्वास कास मुख प्रसेक, अंगशैत्य, अग्निमांद्य अरुचि इत्यादि में, नस्य देने से कफ वायु से उत्पन्न शिर-पीड़ा, घोर मोह, प्रलाप, छींक की रुकावट को नष्ट करता है।

जयमंगल रस—चन्द्रोदय, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, फौलादभस्म, मारडूर-भस्म, रक्तलोहभस्म, हरताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, त्रिकुटा, शु० विप, सुहागा, चित्रक सर्वसम, निर्गुण्डी, वेल, मुलैठी के रस से पीसकर वालुक यन्त्र से पकाकर दशमूल के काढे के साथ सन्निपात को नष्ट करता है।

अवलेह शार्कर

जवाहर मोहरा—जहर मोहरा १॥ तोला, मोती ६ माशा, प्रवाल शाख १॥ तोला संगेयशव २ तोला, अकीक २ तोला, माणक १ तोला, पन्ना ६ माशा, गोमेद ३ माशा, चाँदी के वर्क १ तोला, मस्तगी ७ माशा, वर्क सोना ३ माशा, निर्विषी १ तोला, दरयाई नारियल २ तोला, अम्बर १ तोला, कस्तूरी ३ माशा, आवरेशम जला हुआ १॥ तोला, हाथी दाँत की भस्म १ तोला, शंख भस्म १ तोला, कहरवा १॥ तोला, गुलाब जल से सात दिन तक घुटवा कर ४/४ रत्ती की गोली बनावें। हृदय और नाड़ी बल के लिये सर्वोत्तम, अनुपान गुलाब जल।

दवाउल मुश्क—मोती ७ माशा, कहरवा ७ माशा, आलरेशम वारीक कतरा हुआ जला कर १॥ तोला, वंशलोचन ६ माशा, सफेद चन्दन ६ माशा घिसा हुआ, गुलाब के

फूल ६ माशा, धनिया ६ माशा, गावजवा के फूल ६ माशा, कुरफे के बीज ६ माशा छोटी इलायची ६ माशा, वहमन सफेद ६ माशा, वहमन लाल ६ माशा, बालछड़ ६ माशा, लौंग ३ माशा, दरूनज अकरवी ६ माशा, दालचीनी ३ माशा, विजोरे का छिलका ६ माशा, अम्बर ६ माशा, मूंगे की पिष्टी ६ माशा, माणक पिष्टी ३ माशा, पन्ना पिष्टी ३ माशा, गोमेद पिष्टी ३ माशा, वर्क सोना ३ माशा, वर्क चाँदी ६ माशा, कस्तूरी १॥ माशा, केशर ६ माशा, मिश्री १॥ पाव, शहद २ छटांक, अर्क गुलाब २ छटांक, केवड़ा २ छटांक, वेद मुश्क २ छटाँक, काष्ठौषधि सब कपर छान कर केशर, कस्तूरी, अम्बर, इनको गुलाब जल में घोट कर, चाँदी सोने के वर्क भी केशर के साथ घोट कर, अर्कों में मिश्री शहद मिलाकर १ तार की चाशनी कर सब औषधि मिला देना, मात्रा ४ रत्ती से १ माशा तक शारीरिक और हृदय की निर्बलता, मृगी, अर्द्धांग, श्वास, और हृदय की रुकावट, मस्तिष्क निर्बलता में परमोत्तम है।

त्रायमाणा शार्कर—(शर्बत वनफशा) गुलवनफशा १ पाव, जल दो सेर में रात को भिगोकर पकाना शेष आधा रहने पर २ सेर चीनी डालकर १ तार की चाशनी कर रखना। २।२ तोला गरम जल या अर्क गावजवा ४।४ तोला मिला कर लेने से जुकाम, गले की खराबी, खुश्क खांसी, बुखार दूर होता है।

राज रसायन—चित्रक ऽ॥=, गिलोय ऽ॥=, आंवला ऽ॥=, दशमूल ऽ।=, हरड़ वकल ऽ।=, इनको २१॥ सेर जल में पकाकर शेष ५। सेर, गुड़ २॥ सेर, शहद ऽ।= डाल कर गुड़ पाक विधि से चाशनी कर नीचे लिखा प्रक्षेप मिलाना।

प्रक्षेप—बड़ी इलायची २ तो०, दालचीनी २ तो०, तेजपात २ तो०, सोंठ २ तो०, काली मिर्च २ तोला, पीपल २ तोला, यवक्षार १ तोला मिलाकर १ तोला मात्रा में सुबह शाम भोजन के बाद सेवन से तृण काष्ठादि भी पच जाते हैं। जो पीनस सैंकड़ों दवाइयों से नहीं जाता उसको यह निर्मूल कर देता है। आहार की यन्त्रणा को शीघ्र दूर करता है।

पिच्छावलेह—सुपिस्ता ८ तोला, उन्नाव ८ तोला, मुलैठी ४ तोला, खत्मी ४ तोला, हंसराज ४ तोला, खुब्बाजी १॥ तोला, बिहीदाना १ तोला, पोस्त डोडा ८ तोला, जल

४ सेर शेष १ सेर, मिसरी ३ सेर; चाशनी अवलेह की बनाकर नीचे लिखा प्रक्षेप मिलाना। प्रक्षेप—

यवक्षार ४ तोला, बादाम गिरी ४ तोला, पोस्त ४ तोला, गोंद कतीला १ तोला, गोंद बब्बूल १ तोला, मुलैठी १ तोला, जुकाम, खांसी, गले की खराबी को दूर करता है। कफ को हरा रखता है।

वासावलेह—अरडूसे के पत्तों का रस १ पाव, चीनी १ सेर चाशनी १ तार की कर रखना। मात्रा १ तोला, खांसी, श्वास शुष्क कास को लाभप्रद है। क्षतजकास और उरःक्षत में विशेष उपयोगी।

भार्गीगुड़—भार्गी २॥ सेर, दशमूल २॥ सेर, हरड़ बड़ी ।≈॥ जल २३ सेर, शेष ४॥ सेर, गुड़ २॥ सेर डाल गुड पाक विधि से पका कर चाशनी करना पश्चात् प्रक्षेप मिलाना। प्रक्षेप—त्रिकटु, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात २/२ तोला, यवक्षार १ तोला, शहद १२ तोला मिलाना मात्रा १ तोला इसके सेवन से श्वास कास हिक्का स्वरवर्ण जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

सौभाग्य शुण्ठि—त्रिकटु, त्रिफला, भांगरा, जीरा सफेद, जीरा स्याह, धनिया, कूठ मीठा, अजमोद, लोहभस्म अभ्रकभस्म कायफल, नागर मोथा, इलायची बड़ी, जायफल ,जटामांसी, तेजपात, तालीस पत्र, नाग केशर, काकड़ासिंगी कपूर मुलैठी लोंग, लाल चन्दन १/१ तोला, सोंठ २५ तोला, दूध २॥ सेर चीनी ऽ॥≈ छटांक। सोंठ को दूध में डालकर मावा बनावें, और घी से अच्छी प्रकार भूनकर सब प्रक्षेप मिलाकर चाशनी कर चकी जमा देना। इसमें से बलाबल के अनुसार जल या दूध के साथ देने से अम्लपित्त, अरुचि, हृद्रोग शूल, वमन, कण्ठदाह हृद्दाह शिरोवेदना, मन्दाग्नि, हृत्शूलपार्श्वशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, गुदरोग को दूर करती है

रक्तशार्कर—नागफनी थोहर पर लगने वाले लाल रंग के गोल फूलों को युक्ति से तुड़वा कर—और किसी लोहे की सलाई में चुभो कर-आग पर तपाकर फलों पर लगे बारीक रुवे को जलादें-और कपड़े में डालकर मसलकर रस निकाल लें, रस की बर मिश्री पीस कर डालें और कुछ पकाकर शीशी भरदें। १ वर्ष के बच्चों को मासा

मासा अन्दाज दिन में २/३ बार देना खांसी, सांस, और कूकर खांसी के लिये अत्युत्तम।

अतरीफल धनिया—हरड़ वक्कल ६ तोला, हरड़ छोटी ६ तोला; आंवला ४ तोला गुलाब के फूल ४ तोला, खसखस ४ तोला; गावजवा-के फूल ४ तोला; धनिये की गिरी २८ तोला; कपर छन कर ४० तोला चीनी मिलाकर शहद में अवलेह वनाकर मात्रा १/१ तोला। इसके सेवन से पागलपन नष्ट होता है, मेदे से मस्तिष्क की तरफ जाने वाले परमाणुओं को रोकता है। हृदय और आमाशय को वल देता है।

वटदुग्ध पाक—वट का दूध २ छ०, गूलर का दुध १ छटांक गोले में भरें उसका मुंह उसी के टुकड़े से वन्द करें और ७ तह कपर मिट्टी की चढ़ाकर भोभर (गरम राख में) इतने समय दवा कर रखे जिसमें कपर मिट्टी पर सुर्खी आजाय वाद में कपड़ मिट्टी उतार कर वारीक कुटाये, वाद में वंशलोचन, ४ तोला, छोटी इलायची २ तोला सतगिलोय १ तोला, शीतल चीनी २ तोला, शतावर ३ तोला, सालम ३ तोला, वहमन स० ३ तोला, गोंद ववूल ५ तोला, गोंद कतीरा ५ तोला, गोंद चूनियां ५ तोला, शिलाजीत २ तोला सव को वारीक कर शिलाजीत सहित कूटे हुवे गोले में डाल कर और कूट कर सबसे डेढी चीनी डाल कर पात्र में रखले—गोंद सव घी में तलकर डाले। मात्रा ६ माशा सोते समय दूध के साथ—धातु दौर्वल्य के लिये अनुपम है।

मुष्टिक लेह—शुद्ध कुचला १॥ तोला, काली मिर्च, दाल चीनी, जायफल, जावित्री, मस्तगी, नागरमोथा, लोंग, अगर, प्रत्येक ३/३ माशा आंवला १॥ तोला बालछड़ ३ माशा, तेजपात ३ माशा, केशर ४॥ माशा, चन्दन सफेद ६ माशा, पीपल ३ माशा, इलायची छोटी ६ माशा, सोंफ ३ माशा, सोंठ ३ माशा, वर्क चांदी ५० नग, कस्तूरी १॥ माशा सवसे दूना शहद मिलाकर मात्रा १।१ माशा दूध या जल के साथ लेने से गृद्धसी वातव्याधि समस्त वात रोग जिसमें वेदना अधिक हो उसे लाभदायक है।

चित्रक हरीतकी—चित्रक १। सेर, आंवला २॥ सेर, गिलोय २॥ सेर, दशमूल २॥ सेर इन सबको कूट कर आठ गुने जल में काढा कर चतुर्थांश वाकी रहे छान कर और गुड़ ५ सेर डालकर पकाये कुछ गाढा होने पर हड वडी २॥ सेर वारीक कूट कर भूनले और गुड़ की चाशनी डाले पाक सिद्ध होने पर उतारले, ठंडा होने पर सोंठ, मिरच,

पीपल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची ४-४ तोला, यवक्षार २ तोला और शहद आठ छटांक मिलादे। मात्रा १ तोला जुकाम, खांसी, सांस, पीनस, कृमि, अर्श, गुल्म, उदावर्त्त, अग्निमांद्य में उपयोगी।

विविध अर्क, लेप, मलहर और तैल

शंखद्राव—फिटकरी ४ तोला, सेन्धानमक ४ तोला, यवक्षार ८ तोला, नौसादर ८ तोला, कल्मीशोरा १६ तोला, कसीस २ तोला कूट कर छोटे घड़े में डाले, और घड़े के मुख पर चीनी की बरनी बिठाकर-कपर मिट्टी कर सुखादे। सूखने पर चूल्हे पर इस प्रकार चढ़ाये, घड़े से बरनी नीची रहे, बरनी पर गीला कपड़ा रखे। सन्धि से हवा निकले तो राख पानी में घोलकर लगाये। ३ घन्टे आँच देकर ठण्डा होने पर बरनी में से द्राव निकाल ले। मात्रा १ बूंद से ५ बूंद तक, ५ तोला जल मिलाकर देने से गुल्म, अश्मरी, यकृत्, प्लीहा में उपयोगी है।

क्षीरार्क—कासनी के बीज, फूल गावजवा, बीज खीरा, वंशलोचन, जहर मोहरा १।१ तोला, गुलाब के फूल, मकोय, गावजबा, कद्दू के बीज २।२ तोला, कुरफे के बीज ३ तोला, धनियां, सफेद चन्दन, लाल चन्दन ४।४ तोला, लौकी १० तोला, कासनी के बीज व पत्ते ४ तोला, कमल पुष्प ४ तोला, पित्तपापड़ा ४ तोला, अर्क बेदमुश्क १ सेर गंगाजल ५ सेर में १२ घंटे भिगोकर रखना बाद में १० सेर बकरी का दूध डाल कर भपके से अर्क निकालना, मात्रा ४ तोला क्षय के ज्वर, रक्त की छर्दि, बढ़ी हुई गर्मी और रक्त विकार में उपयोगी।

पार्श्वशूलारि लेप—राई ४ तोला, फिटकरी ४ तोला, मिर्गीमोहरा २ तोला, हिंगुल २ तोला, गूगल ४ तोला, अमल ६ माशा (अफीम), हींग १ तोला, हल्दी २ तोला चिरमी सफेद १ तोला, गोंद बब्बूल २ तोला, इसको पानी में पीस कर गरम कर कपड़े पर या वैसे ही लेप करने से वात-कफ ज्वर में, पसली का दर्द, न्यूमोनिया में, छाती का दर्द और वायु से उत्पन्न पार्श्वशूल और गुम चोट पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

रसाञ्जनादि लेप—रसौंत, चीनीया कपूर, निबोली की गिरी, इसको पानी में पीस कर और मक्खन मिलाकर गुदा के मस्सों पर लेप करने से मस्सों की पीड़ा हटकर शान्ति मिलती है।

गण्डमालारि लेप—दन्तीमूल, चित्रक छाल, भिलावा, कसीस, सेन्धा नमक, थोहर, इनको सम भाग लेकर आक के दूध में घोट कर १॥ माशा की गोली बनाले और पानी में घिस कर गण्डमाला पर लेप करने से गण्डमाला की ग्रन्थियाँ बैठ जाती हैं।

शीतपित्तान्तक लेप—हल्दी ५ तोला, अजवायन ५ तोला, गेरू ५ तोला, फिटकरी २ तोला, सरसों ५ तोला, पवाड़बीज ५ तोला, कल्मी शोरा २ तोला, कपरछन कर तैल में या घी में मिलाकर लेप करना—इससे शीतपित्त के चकत्ते दूर हो जाते हैं।

अपस्मारघ्न नस्य—अरीठे की गिरी, हिंगोट की गिरी, मगुदफल, जियापोता की गिरी—इनको बराबर लेकर पीस कर रखे। मृगी का दौरा पड़ने पर इसका नस्य देने से दौरा तत्काल दूर होता है।

बिडालक लेप—(नेत्र रोग) रसौत ५ तोला, फिटकरी सफेद १ तोला, गेरू २ तोला, हल्दी १ तोला, लोध ३ तोला, मकोय २ तोला, हरड़ छोटी २ तोला, कपर छन कर पानी या गुलाब जल में पीसकर आंख के पलकों पर लेप करने से आंख का दुखना और आँख की लाली दूर हो जाती है।

नासार्श मलहर—हल्दी, रसोई घर की दीवारों पर काला जमा हुवा धुवां, फटकरी, मुर्दासंग, सब औषधी बराबर-धुवां-पक से दूना बारीक पीस कर और दूने घी में मिलाकर रखे और नाक में सोते समय लगावे नाक से बढ़े हुवे मांस को ठीक रखता है।

निम्बमलहर—तिल का तेल १ पाव पात्र में चढ़ाकर शलजम ३ छटांक के टुकड़े डालकर कुछ जलने पर निकाल ले, इसी प्रकार नीम के ५ तोला पत्ते पीस कर टिकिया बनाकर तलले, बाद में मोम ३ तोला डाल कर गलाले और सिन्दूर ३ तोला, सफेदा काशगरी २ तोला डालकर पकने पर उतार कर रखले—प्रत्येक व्रण के लिये उपयोगी है।

मूर्च्छा आदि में सूंघने का नस्य—वर्गतिक्षन १ तोला, सिरस के बीज १ तोला,

गुलबनफशा २ रत्ती, उस्तखद्दूस १ तोला, केशर ३ माशा, छोटी इलायची ६ माशा, कायफल ४ तोला, कपरछन कर रखना—शिर का दर्द, जुकाम, हिचकी, मूर्छा में उपयोगी।

उपनाह—आम्बा हल्दी, साबुन, सुहागा, हींग, खारी नमक, (रेह) सज्जीखार, काला नमक, लस्सन, अरण्डी की मीजी, एलुवा २/२ तोला, तिल तेल ५ तोला, एरण्ड तेल ५ तोला, गोबर ऽ।।, गोमूत्र ऽ।। सबको कड़ाई में डाल पका कर गाढ़ा होने पर आक के पत्ते गरम कर घी लगाकर पेट पर रख ऊपर से इसका लेप फैलादे, ऊपर फिर आक के पत्ते रख पट्टी बांध देना। इसके बंधने से पेट की हवा बाहर निकलने की कोशिश करती है जिससे आंतो में उथल-पुथल होकर आंत की उलझन निकल जाती है। वायु की रुकावट से होने वाले आंत का दर्द गुल्म, आध्मान, उदावर्त्त में परमपयोगी है।

सिद्धार्थक तैल—शतावरी का रस २ सेर, तिल-तैल १ सेर, दूध ४ सेर प्रक्षेप–सोंफ १ तोला देवदारु १ तोला जटामांसी १ तोला छरीला १ तोला खरैंठी १ तोला चन्दन-लाल १ तोला तगर १ तोला कूठ १ तोला अगर १ तोला इलायची बड़ी १ तोला शालवर्णी १ तोला वच १ तोला एरन्ड १ तोला सेन्धा १ तोला सोंठ १ तोला अदरख का रस १ सेर इसको सिद्ध करने पर मात्रानुसार दूध में खाने से कुबड़ापन छोटापन पंगुत्व, अंगों का सिकुड़ना शुष्कांग, सन्निवात, चलने में असमर्थ, बधिर अज्ञानता के लिये उपयोगी है।

निर्गुन्ड्यादि तैल—सम्भालू, चमेली, आक, भाँगरा, लस्सन, केला, कपास, सेहंजना, तुलसी, अदरक, करेला इनके रस में तिल का तैल पकाकर कान में डालने से कान का बहरापन, कान का बहना, शब्द आना, कान के कृमि इत्यादि दूर हो जाते हैं।

मधुच्छिष्ट तैल—मोम १ सेर, खारीनमक १ सेर, संखिया काला १ तोला, घड़े में डालकर, घड़े के मुँह पर बरनी रखकर सन्धि बन्धन कर सूखने पर शंखद्राव की रीति से तैल निकाल ले। इसके लगाने से किसी प्रकार की भी चोट अथवा दर्द हो और अर्धांग तथा समस्त वात रोग नष्ट होते हैं। यह अति उत्तम प्रयोग है।

मल्लतैल—संखिया ३ तोला, हरताल ३ तोला, जावित्री ३ तोला, जायफल ३ तोला अजवायन ३ तोला, खुरासनी अजवायन ३ तोला, अजमोद ३ तोला, भांग बीज ३ तोला

लौंग ३ तोला, माल कांगनी ३ तोला, कस्तूरी १ माशा, केशर ६ तोला पाताल यन्त्र द्वारा तेल निकालना—इसकी १ बूंद खाना तथा लगाने से पक्षाघात अर्दित (लकवा) और समस्त वातव्याधि धनुर्वात आदि में परमोपयोगी है। विषम ज्वर के चढ़ने से पहिले इसको नख के अग्र भाग में लगाने से ज्वर का चढ़ना रुक जाता है।

षड्बिन्दु तैल—एरण्ड की जड़, तगर, शतावर, जीवन्ति, रास्ना, सेन्धा नमक, भांगरा, वायविडंग, मुलैठी, सोंठ ५/५ तोला, तिल तैल १ सेर, बकरी का दूध २ सेर, भांगरेका रस ५ सेर—औषधियों का काढ़ा बनाकर सब एक साथ डाल कर पकावे तैल सिद्ध होने पर ६ बूंद नासिका में डालने से सब प्रकार के शिरविकार नाश होते हैं।

रक्त तैल—लौंग १ तोला, मजीठ १ तोला, तज ४ तोला, जायफल ४ तोला, बालछड़ २ तोला, छरीला ४ तोला, कुचला नग २०, नागर मोथा २ तोला, कपूर ८ तोला, दालचीनी १ तोला, जावित्री ६ माशा, इलायची बड़ी २ तोला, चन्दन चूरा लाल २ तोला, हल्दी १ तोला, दारु हल्दी ७ तोला, अगर १ तोला, केशर ४ माशा, कस्तूरी २ माशा, मेदा लकड़ी २ तोला, अर्क गुलाब १ सेर, तिल तैल २ सेर, गंगाजल ४ सेर रात को सब गंगाजल में औषधी भिगो कर सुबह गुलाब जल और तैल डाल कर सिद्ध करे। इसके लगाने से पसली का दर्द, प्रसूत, रहम, लकवा, कमजोरी, कृशता, शोथ, दमा, पित्ती, कान का दर्द, अर्द्धांग, गठिया, लाठी आदि की चोट या जख्म में लाभ होता है।

ताम्बक तैल—लोबान कौड़िया १२ तोला, जायफल ५ तोला, लोंग ५ तोला, हरताल तबकी ५ तोला, जावित्री २ तोला, केशर ६ माशा—सब को कूट कर भारी तली और चौड़े मुँह के पात्र में भरकर बारीक तार का छींका बनाकर पात्र में भरी औषधियों के ऊपर लटकादे छींके के तार पात्र के गले में बांध दे। छींके के ऊपर एक कटोरी रख दूसरा पात्र ऊपर रखकर कपर मिट्टी करदे, सूखने पर जलती अंगीठी पर चढ़ाये ऊपर के पात्र में पानी भरदे, दो घन्टे की तेज आँच लगाये। जिधर से भाप निकले पानी में राख घोलकर लगादे, इसमें से उग्रगन्ध निकल कर सब में फैल जायगी, दो घन्टे बाद ठण्डा होने पर कपर मिट्टी खोलकर कटोरी में आया तैल निकाल ले, पानी का भाग पृथक् करदे। इसकी १ बूंद पान में लगाकर १० दिन खाने से पुरुषत्व बढ़ता

है। हिस्टीरिया की मूर्च्छा ऐंठन दूर हो जाती है, लकवे से या वायु से रुकी जबान पर लगाने से बोली खुल जाती है। सन्निपात की शीतांग अवस्था में, चोट लगे की गिरी अवस्था में, कफजन्य श्वास आदि अनेक शिकायतों और मुख्यतः वात जन्य रोगों के लिये अमोघ है।



श्री वैंकटेश आयुर्वैदिक चिकित्सालय के कार्यकर्त्ताओं का सामूहिक चित्र



परिशिष्ट प्रयोग

किरातादि क्वाथः—चिरायता, मोथा, गिलोय, नेत्रवाला, गोखरू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, सोंठ, सब समान मात्रा २ तोला काढाकर शहद डालकर देने से वातज्वर की निवृत्ती करता है।

पर्पटादि क्वाथः—पित्त पापड़ा, चन्दन चूरा लाल, नेत्रवाला, सोंठ सब समान मात्रा २ तोला काढा कर मिश्री डालकर देने से पित्त, ज्वर, दाह, उल्टी, वमन आदि को दूर करता है।

पुष्कर मूलादि क्वाथः—नीम की छाल, सोंठ, गिलोय, देवद्वार, कचूर, चिरायता, पोहकर मूल, पीपल, कटेली सब बराबर काढा कर देने से कफ जन्य ज्वर और खांसी पसली के दर्द को दूर करता है।

पंच भद्र क्वाथः—गिलोय, पित्त, पापड़ा, मोथा, चिरायता, सोंठ सब बराबर मात्रा २ तोला काढा कर देने से वात, पित्त, ज्वर के लिये उत्तम है।

कंटकार्यादि क्वाथः—कटेली, गिलोय, भारंगी, सोंठ, जवासा, चिरायता, चन्दन लाल, मोथा, पटोलपत्र, कुटकी सब बराबर मात्रा २ तोला काढा कर देने से कफ और पित्त से हुवे बुखार को दूर करता है।

लघुक्षुद्रादि क्वाथः—कटेली छोटी, गिलोय, सोंठ, पोहकर मूल सब समान, मात्रा २ तोला काढा कर देने से वायु और कफ के बुखार, खांसी, सांस, कफ, पसली और छाती की पीड़ा को दूर करता है।

षडङ्ग क्वाथः—मोथा, पित्त पापड़ा, खस, चन्दन लाल, नेत्रवाला सोंठ सब समान इनको पीने के जल में डालकर पकाकर देने से, पित्तज्वर की प्रबल प्यास और वमन, बेचैनी दुर हो जाती है।

भारंग्यादि चूर्णः—भारंगी, काकडा सींगी, चव्य, तालीसपत्र, मिरच, पीपला मूल, प्रत्येक ८ तोला, सोंठ २४ तोला, पीपल ८ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नाग केशर, खस, ४-४ तोला, वंसलोचन ४ तोला, खांड सब औषधियों के बराबर, मात्रा

आयु के अनुसार ४-६ माशा तक शहद के साथ, ज्वर, कास, श्वास, शूल, उदर और आफरे के लिये उत्तम।

कट फलादि चूर्णः—कायफल, पोहकर मूल, काकडा सींगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा, काला जीरा सब समान वारीक चूर्ण कर आयु के अनुसार मात्रा में शहद के साथ देने से बुखार, खांसी, सांस, हिचकी और गले की पीडा दूर हो जाती है।

आमलक्यादि चूर्णः—आवला, चित्रक छाल, हड़ वड़ी, पीपल, सेंधा नमक सब बराबर कूट छान कर मात्रा ४-६ माशा जल के साथ, दस्त को साफ लाकर बुखार को दूर करता और अग्नी को बढ़ाता है।

चातुर्भद्रावलेहिकाः—कायफल, पोहकर मूल, काकड़ा सींगी, पीपली, सब बराबर पीस छान कर मात्रा ३ माशा शहद के साथ, सब प्रकार के ज्वर, खांसी, कफ, सांस, हिचकी और गले की पीड़ा में उपयोगी है।

वैद्यनाथ वटीः—पारा, गंधक, ४-४ माशा कुटकी, ३ तोला पारे गन्धक की कजली कर कुटकी का बारीक चूर्ण कर मिला कर करेले के रस में खरल कर गोली मटर समान जलके साथ बुखार और दस्त की कमी के लिये उपयोगी।

सौभाग्य वटीः—सुहागा, शुद्ध शृंगीविष, जीरा, पंचो नमक, सोंठ, मिरच, पीपल, हड़, वहेड़ा, आंवला, अभ्रक भस्म, पारा, गंधक शुद्ध, सब समान लेकर नम्भालु, वासा, भंगरा और अपामार्ग के रस में खरल कर गोली छोटे झाड़ीवेर प्रमाण, अनुपान जल, ज्वर, मूर्च्छा, शूल, श्वास, कफ, सर्दी, पसीना, प्यास और जलन के लिये उपयोगी।

श्वविसादी वटीः—सिरस के बीज २ तोला, अपामार्ग पंचांग २ तोला, जमाल गोटा शुद्ध ६ माशा जल में बारीक पीस गोली चने प्रमाण बना कर कुत्ते के काटे को प्रतिदिन १ गोली सवेरे जल के साथ ५ दिन, इसके लेने से मल में कुत्ते के बाल जैसे निकलते हैं, और कुत्ते के विष के जागृत होने का भय नहीं रहता किन्तु लिखे अनुसार पथ्य से रहना अच्छा है।

ज्वर घ्नी गुटिका—पारा, गंधक, इलायची छोटी, पीपल, हड, अकरकरा, इन्द्रायन, सब बराबर इन्द्रायन के फल के रस में गोली ३ रत्ती की अनुपान गिलोय का रस या काढा, विविध ज्वरों में हितकर।

चन्द्रकला रस—अभ्रक भस्म ६ मासा, शुद्ध हिंगुल ६ मासा, शुद्ध पारद ६ मासा, शुद्ध गंधक ६ मासा, सब बराबर लेकर खरल में डालकर-मोथा, अनार, दूध, केवड़ा, सहदेवी, गवार पाठा, पित्त पापड़ा, शीतल चीनी, शतावरी इनके रस या काढे की भावना देकर बाद में कुटकी, सतगिलोय, पित्त पापड़ा, खस, पीपल, चन्दन, चूरा सफेद, सारिवा ६-६ मासा तोल में लेकर बारीक कपर छान कर-भावना दी गई औषधियों में डालकर मुनक्का के काढे में खरल कर गोली चना प्रमाण बनाकर रखना प्रत्येक ऋतु में प्रत्येक ज्वर में उपयोगी। दाह, मूर्च्छा, रक्त स्राव, अरुचि में हितकर।

मृत्युंजय—शुद्ध हिंगुलु, शुद्ध विष, पीपल, सुहागा, शुद्ध गंधक, सभी औषधी १-१ भाग। हिंगुलु २ भाग लेकर बारीक पीसकर खरल कर रखना। मात्रा मूंग प्रमाण अनुपान विशेष से सभी ज्वरों में उपयोगी।

त्रिभुवन कीर्ति—शुद्ध हिंगुलु, शुद्ध शृंगी विष, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा, तुलसी और अदरक के रस में खरल कर गोली १ रत्ती की अनुपान सोंठ के साथ देने से सभी प्रकार के ज्वरों में उपयोगी।

बेताल रस—पारद शुद्ध, गंधक शुद्ध, शुद्ध शृंगी विष, काली मिरच, तपकी हरताल, सबको बारीक पीस कर रखे मात्रा १ रत्ती मधु के साथ सब प्रकार के साधारण और कठिन ज्वरों में उपयोग के लिये उत्तम।

ज्वर कुञ्जर पारीन्द्र—शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, चाँदी की भस्म, हरताल, तपकी, रसौत, खपरिया, ताम्र भस्म, मोती, मूंगा भस्म, लोह भस्म, मनसल, गेरू, शिलाजीत, सुवर्ण भस्म इसको पान के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर खांसी, सांस, अग्निमांध, कामला, ग्रहणी और चय में पूर्ण हित करता है।

पुट पक्व विषम ज्वरान्तक लोह—पारद शुद्ध १ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला कज्जली कर, लोहे की कुरछी में पर्पटी के समान पकाकर लेना इसके साथ सुवर्ण भस्म २ मासा, लोह भस्म २ तोला, ताम्र भस्म २ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, वंग भस्म ४ मासा, सोना गेरू ४ मासा, प्रवाल भस्म ४ मासा, मुक्ता भस्म ४ मासा, शंख भस्म २ मासा, सीप भस्म २ मासा, जल में सबको बारीक पीस कर सीप में भर कर सन्धी

चन्धन कर कपोत पुट देकर रखना। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक अनेक अनुपान से आठ प्रकार के ज्वर, यकृत, पीहा, गुल्म, विषम ज्वर, पांडु, कामला, शोथ, मेह, अरुचि, ग्रहणी, आमदोष, श्वास, कास, अतीसार में हितकर है।

उद्‌धूलन--पारा १ भाग, शृंगीविष २ भाग, काली मिरच ४ भाग, धतूरे के फलों की राख ८ भाग, सबको बारीक पीस कर रखना, इसको सन्निपात ज्वर की शीतांग अवस्था में जब शरीर ठंडा पडने लगे पसीना विशेष हो मालिश करने से रक्त का चलना शुरू हो जाता है खून में गर्मी आजाती और पसीना रुक जाता है।

कर्ण मूल पर लेप—गेरू, कपड़े धोने का जमीन का खार, सोंठ, बच, कुटकी इनको सिरके में बारीक पीस कर लेप करने से कर्णमूल बैठ जाता अथवा जल्दी पचकर फूट जाता है।

अष्टांग धूप--गूगल, नीम के पत्ते, बच, कूठ, हड़, जौ, सरसों सब समान भाग लेकर कूट कर घी मिला कर रखना और ज्वरी पुरुष के स्थान में धूप देना, ज्वरी पुरुष व परिचारक जो पास में रहते हो हित कर है।

प्रतिसारण--सन्निपात ज्वर में जीभ के रूखी और खरदरी हो जाने पर मनुष्य बड़ा कष्ट पाता है इसको ठीक रखने के लिये पीपल ६ मासा, अकर करा ६ मासा, मुलेठी १ तोला, अनार दाना १ तोला, इनको बारीक पीस कर शहद में मिला कर जीभ से लगाते रहना अथवा २ तोला मुनक्का डाल कर ऊपर की औषधी सहित पीस कर गोला बना कर मुंह में रखना जीभ को नरम रखता है, सुरकी को दूर कर बोलने में सुविधा करता है।

